भारत की वित्तीय शासन-व्यवस्था

लेखक

हरि गोपाल परांजपे



केन्द्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा-मंत्रालय ● भारत सरकार
1963

प्रकाशन संख्या: **PED-336(N)**
2,000

मूल्य : (देश में) 8रु०   ११शिलिंग 10 पेन्स या 3डा

मुद्रक : प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक
प्रकाशक : प्रबन्धक प्रकाशन शाखा, सिविल लाईन्स, दिल्ली-।

प्रस्तावना

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इन में उच्च कोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किए जाएँ। शिक्षा-मंत्रालय ने यह काम अपने हाथ में लिया है और इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से आरंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य शिक्षा-मंत्रालय स्वयं अपने अधीन करा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग प्रदान कर रहे हैं। अनूदित और नए साहित्य में भारत सरकार की शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

'भारत की वित्तीय शासन व्यवस्था' नामक यह पुस्तक केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके लेखक श्री हरि गोपाल परांजपे लोक-वित्त के विशेषज्ञ हैं। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थों के प्रकाशन संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

हुमायुन कबिर

शिक्षा-मंत्री
भारत सरकार

नई दिल्ली, 1963

दो शब्द

विश्वविद्यालय स्तर के मानक ग्रंथों के अनुवाद तथा प्रकाशन की योजना के अंतर्गत केन्द्रीय हिंदी निदेशालय भी एक संस्था के रूप में अनुवाद, मौलिक लेखन तथा उनके प्रकाशन का काम कर रहा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत अब तक जो पुस्तकें तयार की गई हैं उनकी सूची इस पुस्तक के अन्त में दी जा रही है।

प्रस्तुत पुस्तक श्री हरि गोपाल परांजपे द्वारा लिखित हमारे देश की वित्तीय शासन व्यवस्था संबंधी मौलिक रचना है। इसमें भारत सरकार द्वारा निर्मित शब्दावलि का उपयोग करते हुए लेखक ने यह ध्यान रखा है कि पुस्तक की भाषा सरल और सुबोध हो।

आशा है हिंदी भाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान संबंधी जानकारी बढ़ाने और विश्वविद्यालय स्तर पर माध्यम-परिवर्तन में यह पुस्तक सहायक होगी।

पुस्तक का प्रकाशन निदेशालय के प्रकाशन एकक की देख-रेख में किया गया है।

संयुक्त सचिव
शिक्षा-मंत्रालय

लेखक की ओर से

प्रजातान्त्रिक राज्य की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जनता राज्य की विविध व्यवस्थाओं को भली भाँति जाने। इन व्यवस्थाओं पर हिंदी में पुस्तकें उपलब्ध है पर सरकारी वित्तीय व्यवस्था पर अभी तक कोई रचना देखने में नहीं आई है।

कई वर्ष हुए स्वर्गीय भगवान दास केला ने 'भारतीय राजस्व' नामक पुस्तक लिखी थी। वह राजस्व के आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से लिखी गई थी, शासन व्यवस्था की दृष्टि से नहीं।

कुछ वर्ष पूर्व बिहार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पटना ने रिज़र्व बैंक के बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स के भूतपूर्व सदस्य श्री गोरखनाथ सिंह के भाषणों का संग्रह 'राजकीय व्यय प्रबंध के सिद्धांत' प्रकाशित किया था। इसमें वित्तीय व्यवस्था के एक अंग व्यय-प्रबंध की ही चर्चा है।

मैंने अपनी पुस्तक में वित्त व्यवस्था के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। विशेष प्रकार की वित्त व्यवस्थाओं जैसे रेल वित्त व्यवस्था व संघ वित्त व्यवस्था का भी उल्लेख किया है जो इस विषय की अबतक प्रकाशित अंग्रेज़ी पुस्तकों में भी नहीं मिलता।

पुस्तक लिखने में केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के अधिकारियों से मुझे सहायता मिली है। मैं उनका आभारी हूँ। सरकारी सहयोग के बिना शासन की व्यवस्था के संबंध में कुछ लिख पाना असंभव-सा ही है। मैं अपनी पत्नी सौ०शोभना परांजपे व अनुज श्री शरद् गोपाल परांजपे का अनुगृहीत हूँ। उन्होंने पाण्डुलिपि तैयार करते समय मेरी सहायता की है। मैं कृतज्ञ हूँ कि शिक्षा-मंत्रालय ने पुस्तक को अपनी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निश्चय किया।

हरि गोपाल परांजपे

विषय-सूची

o o o

अनुक्रम

अध्याय 3

अध्याय 4

पृष्ठ

परिशिष्ट

सारिणी, प्रपत्र तथा चार्ट

सारिणियाँ

० ० ०

अध्याय 1

वित्तीय संस्थाएँ

एक प्रमुख अर्थशास्त्रविज्ञ ने कहा है कि वित्तीय सिद्धान्तों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उन वित्तीय प्रक्रियाओं को समझा जाए जो एक विशिष्ट प्रकार की वित्तीय संस्थाओं के कारण होती है। यदि वित्तीय संस्थाएँ मजबूत और कार्य-कुशल होंगी तो वित्तीय शासन भी कार्यकुशल होगा।

भारतीय वित्ताधिकारिणी संस्थाओं को स्थूल रूप से चार भागों में गिनाया जा सकता है

1. संसद् व संसदीय समितियाँ,
2. कार्यकारिणी (Executive),
3. स्वायत्त संस्थाएँ (Autonomous Bodies),
4. रिज़र्व बैंक।

संसद् के अन्तर्गत लोक सभा, राज्य सभा और इन दोनों सभाओं की वित्तीय समितियाँ उल्लेखनीय हैं। कार्यकारिणी के अन्तर्गत, सर्वप्रथम मंत्रिमण्डल वित्त-समिति, वित्त-मंत्रालय, और फिर शासकीय विभाग आते हैं। स्वायत्त संस्थाओं के अन्तर्गत लेखा तथा लेखा परीक्षा विभाग तथा योजना आयोग आते हैं। आगे इन विभिन्न संस्थाओं का महत्त्व, संगठन और उनके कार्य बतलाए गए हैं।

1. संसद् व संसदीय समितियाँ

संविधान ने वित्तीय मामलों में संसद् को सार्वभौम संस्था घोषित किया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 के अनुसार "विधि के अधिकार के सिवा कोई कर न तो आरोपित और न संगृहीत किया जाएगा"। यह अधिकार संसद् द्वारा दिया जाता है। कर के प्रस्ताव तो सरकारी विभागों द्वारा बनाए और प्रस्तुत किए जाते हैं पर उनको पारित करना या न करना संसद् के हाथ में होता है। इसी प्रकार व्यय के बारे में संसद् का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। संविधान के अनुच्छेद 266(3) में कहा गया है—"भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन विधि की अनुकूलता से तथा इस संविधान में प्रबंधित प्रयोजनों और रीति से अन्यथा विनियोजित नहीं किए जाएँगे"। यह विधि संसद् द्वारा ही बनाई जाती है। पुनः राज्य ऋण के सम्बन्ध में संविधान में व्यवस्था है कि संसद् समय समय पर नियम बना सकती है जिनके अन्तर्गत सरकार ऋण ले सकती है। आय, व्यय और ऋण के अधिकार देने से ही संसद् का काम समाप्त नहीं हो जाता। प्रथा के अनुसार राज्य के लेखे भी राष्ट्रपति द्वारा संसद् के सम्मुख उपस्थापित किए जाते हैं तथा संसद् की लोक लेखा समिति विस्तार से उसकी परीक्षा करती है। लोक लेखा समिति को संसद् का निरीक्षक कहा गया है। इसी प्रकार व्यय की विस्तृत जाँच के लिए

एक प्राक्कलन समिति होती है। इन समितियों का अध्याय 7 में विस्तार से उल्लेख किया गया है।

उक्त प्रमुख वित्त अधिकारों या कर्तव्यों का पालन करने वाली संसद् में लोक सभा को इस सम्बन्ध में राज्य सभा की अपेक्षा अधिक अधिकार हैं। लोक सभा को ही अनुदानों की माँगें पारित करने का अधिकार होता है। राज्य सभा वित्त विधेयकों को 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती। अतएव यह सिद्ध होता है कि संसद् की लोक सभा वित्त अधिकारिणी संस्थाओं में अपना स्थान रखती है। राज्यों में संसद् का कार्य संविधान के अन्तर्गत रहते हुए वहाँ के विधान-मंडल करते हैं। इनको वित्तीय मामलों में उसी प्रकार के अधिकार होते हैं जिस तरह के संसद् को। 1935 से पहले संसद् की तरह प्रान्तीय विधान-मंडलों को वित्तीय मामलों में वे अधिकार नहीं थे जो आज हैं।

2. कार्यकारिणी संस्थाएँ

(क) **मंत्रिमण्डल वित्त समितिः** (Cabinet Finance Committee) : मंत्रिमण्डल वित्त समिति, मंत्रिमण्डल की उच्चाधिकारी समितियों में से एक है। संसदीय राज्य प्रणाली में कोई एक मंत्री राज्य भर के लिए उत्तरदायी नहीं होता वरन् सारे मंत्रिमण्डल की सामूहिक ज़िम्मेदारी होती है। स्वाभाविक है कि ऐसी अवस्था में विभिन्न मंत्रालयों की प्रमुख समस्याओं का विचार-विमर्श सामूहिक रूप से मंत्रिमण्डल में ही होता है। समिति में वित्त मंत्री तथा पाँच अन्य मंत्री होते हैं जिनका वित्त से सम्बन्ध है। समिति का अध्यक्ष प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाता है। वित्त मंत्रालय का संयुक्त सचिव इस समिति का सचिव होता है। समिति की आज्ञाएँ अन्तिम होती हैं। समिति के कार्य स्थूल रूप से इस प्रकार हैं :

(1) आर्थिक क्षेत्र में सरकारी कार्यों पर आदेश देना, उन्हें समेकित करना तथा मोटे-तौर पर राष्ट्रीय अर्थ का संचालन करना।

(2) केन्द्र और राज्य विकास योजनाओं में परस्पर प्राथमिकता नियत करना।

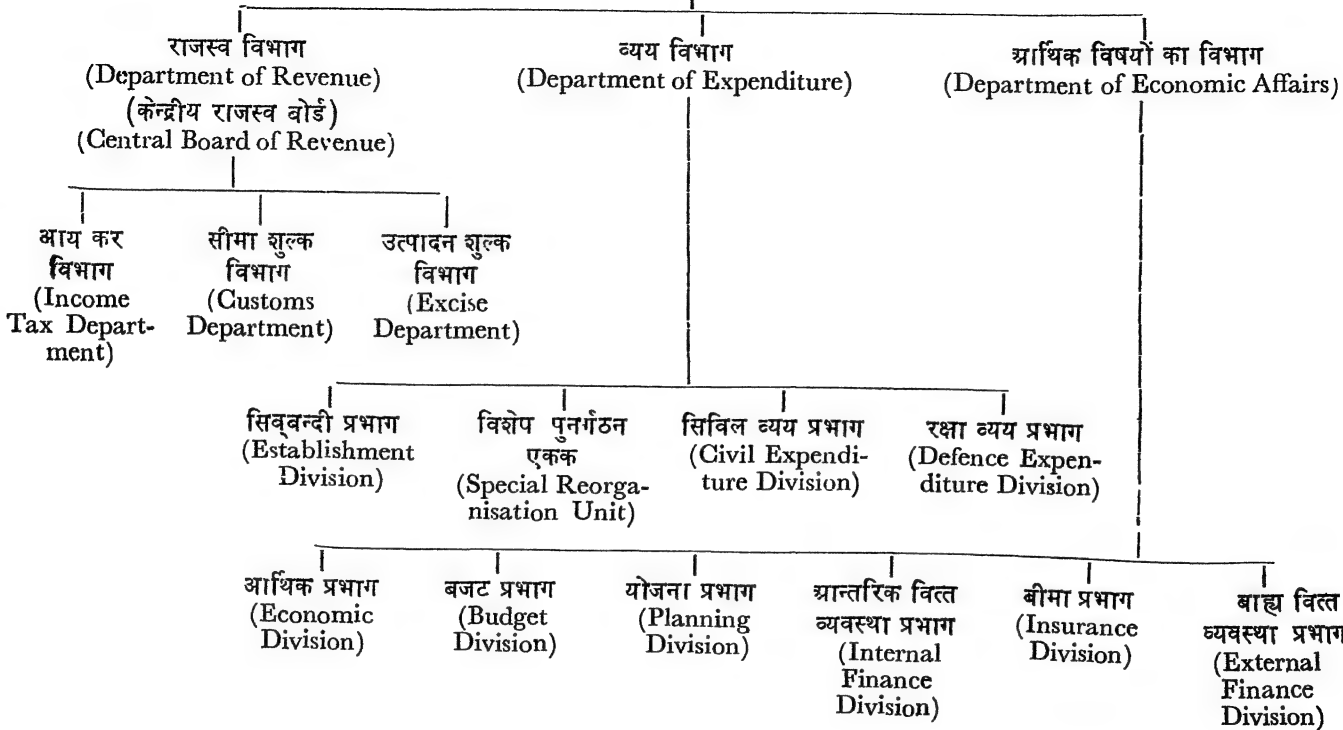
(3) विकास योजनाओं के लिए वित्तीय साधनों की वृद्धि के प्रश्नों पर विचार करना तथा उनका निर्धारण।

(ख) **वित्त मंत्रालयः** विस्तृत और वास्तविक व्यवस्था की दृष्टि से वित्त मंत्रालय वित्त अधिकारिणी संस्थाओं में अपना स्थान रखता है। जिस प्रकार संसद वित्त के घटने या बढ़ने तथा उनके उचित उपयोग पर नियंत्रण रखती है, उसी प्रकार मंत्रि-मण्डल (वित्त समिति के माध्यम से) वित्त खर्च किए जाने वाले आयोजनों पर भले ही विचार करता हो पर अनुमोदित व्यय को सीमोल्लंघन से रोकना, आय तथा व्यय सम्बन्धी नियम बनाना आदि वित्त मंत्रालय की ही जिम्मेदारी है। इसी प्रकार राष्ट्र की अर्थनीति का निर्माण और उसका संचालन भी वित्त मंत्रालय का ही काम है। वित्त मंत्रालय के इन महत्त्वपूर्ण कार्यों के कारण ही प्रायः सभी देशों में यह प्रथा है कि वित्त मंत्री एक प्रमुख मंत्री हुआ करता है और उसका पद प्रधानमंत्री के करीब बाद का होता है।

भारतीय वित्त मंत्रालय का संगठन और उसके विस्तृत कार्य अगले पृष्ठ पर चार्ट नं० 1 में दिए गए हैं।

चार्ट 1

भारत सरकार के वित्त मंत्रालय का संघटन



सर्वोपरि मंत्री और उसके अधीन तीन सचिवों के तीन विभाग—राजस्व, व्यय तथा आर्थिक। राजस्व विभाग के अन्तर्गत मुख्य तीन प्रभाग हैं (क) आय कर प्रभाग (ख) सीमा शुल्क प्रभाग व (ग) उत्पादन शुल्क प्रभाग । राजस्व विभाग का कार्य अकेले सचिव द्वारा न होकर एक बोर्ड द्वारा होता है, जो केन्द्रीय राजस्व बोर्ड कहलाता है ।

केन्द्रीय राजस्व बोर्ड का काम केन्द्रीय प्रत्यक्ष करों तथा अप्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में उनकी नीति तथा व्यवस्था की देखभाल करना है । यह बहिर्शुल्क तथा उत्पादन शुल्कों के विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत विहित नियमों के अधिनियमित (Statutory) अधिकारी का भी काम करता है । आय कर के सम्बन्ध में बोर्ड अधिनियमित समन्वय अधिकारी का भी काम करता है । इस सम्बन्ध में उसका काम आयकर विभाग की सुचारु व्यवस्था के लिए आदेश और आज्ञा लागू करना भी है । आय कर अधिनियम के अन्तर्गत किन्हीं-किन्हीं परिस्थितियों में बोर्ड प्रारम्भिक तथा अपीलीय संस्था का काम भी करता है। सम्पत्ति कर अधिनियम 1953 के अन्तर्गत बोर्ड का काम सम्पत्ति के मूल्यांकन और अधिनियम के अनुसार दायित्व के करार करने के सम्बन्ध में अपीलें सुनना भी है । पूर्वोक्त अपीलीय अधिकारों का उपभोग करने के अतिरिक्त बोर्ड का यह भी काम होता है कि वह पूर्वोक्त अपील से उत्पन्न होने वाले मामलों पर उच्च न्यायालय की सलाह ले ।

संगठन की दृष्टि से बोर्ड के अन्तर्गत छह निरीक्षण निदेशालय (Directorates of Inspection) हैं: दो आयकर के लिए ; तीसरा आयात-निर्यात शुल्क के लिए; चौथा राजस्व आसूचना (Revenue Intelligence) के लिए ; पाँचवा लागू कराने के काम के लिए व छठा अनुसंधान, सांख्यिकी आदि के लिए । आयकर के दो निदेशालयों में से एक निरीक्षण के लिए और दूसरा जाँच के लिए है।

व्यय विभाग के चार मुख्य प्रभाग हैं (1) सिब्बन्दी प्रभाग (2) विशेष पुनर्गठन एकक (Special Reorganization Unit) (3) सिविल व्यय प्रभाग तथा (4) रक्षा व्यय प्रभाग। सिब्बन्दी प्रभाग जो मुख्यतः नौकरी सम्बन्धी शर्तों और वित्तीय संहिताओं से संबंधित नियम विनियमों के परिचालन के लिए उत्तरदायी है, विभिन्न व्यय प्रभागों और प्रबन्धक मंत्रालयों आदि की ओर से जाने वाले उन निर्देशों के सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई करता है जिनकी संख्या बराबर बढ़ रही है । विशेष पुनर्गठन एकक का काम मंत्रालयों के संगठन की जाँच करना है। असैनिक व्यय प्रभाग का काम मंत्रालयों के उन समस्त प्रस्तावों पर विचार करना है जिनके लिए वित्त मंत्रालय द्वारा जाँच पड़ताल अथवा अनुमोदन आवश्यक है । सिविल व्यय प्रभाग के दस समूह हैं जो इस प्रकार हैं

(1) विदेश मंत्रालय, गृह मंत्रालय, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, न्याय मंत्रालय तथा श्रम मंत्रालय ।

(2) संचार तथा परिवहन मंत्रालय, वित्त मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय, तथा लोक लेखा तथा लेखा परीक्षा विभाग ।

(3) सिंचाई तथा विद्युत मंत्रालय, निर्माण तथा आवास मंत्रालय ।

(4) खनिज तथा इंधन मंत्रालय व भारी उद्योग विभाग ।

(5) वैज्ञानिक अनुसंधान तथा सांस्कृतिक मामलों का मंत्रालय व वित्तीय नियमावली ।

(6) खाद्य तथा कृषि मंत्रालय, सामुदायिक विकास, पंचायत तथा सहकारिता मंत्रालय, स्वास्थ्य मंत्रालय, शिक्षा-मंत्रालय तथा मंत्रिमंडल सचिवालय ।

(7) तेल के कारखाने तथा तेल और प्राकृतिक गैस आयोग ।

(8) व्यापार तथा उद्योग मंत्रालय, योजना आयोग ।

(9) लोहा तथा इस्पात विभाग, प्रायोजना समन्वय ।

(10) दिल्ली शासन तथा कार्य अध्ययन (Work studies) ।

रक्षा व्यय प्रभाग का काम रक्षा मंत्रालय (मुख्य), रक्षा मुख्यालय और इस मंत्रालय के अधीनस्थ अधिकारियों, उदाहरणार्थ सशस्त्र सेना चिकित्सा सेवा के मुख्य निदेशक, सैन्य सामग्री कारखानों के मुख्य निदेशक, आदि को वित्तीय मामलों में परामर्श देना है ।

आर्थिक विषयों के विभाग के अन्तर्गत मुख्य छह प्रभाग हैं : (1) बजट प्रभाग (2) आयोजना प्रभाग (3) आन्तरिक वित्त प्रभाग (4) बाह्य वित्त प्रभाग (5) बीमा प्रभाग (6) आर्थिक प्रभाग । बजट प्रभाग का मुख्य कार्य सामान्य बजट का निर्माण करना है । संसद् के सम्मुख पूरक अनुदान आदि प्रस्तुत करना भी इसी प्रभाग की ज़िम्मेदारी है । अब सीमोपरि व्यय (Excess Expenditure) की अवस्था में संसद् के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए अतिरिक्त अनुदान बनाना भी इसी प्रभाग की जिम्मेदारी है । प्रभाग के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) अर्थोपाय अग्रिम (Ways and Means Advances) के प्राक्कलन बनाना,

(2) अल्प बचत आन्दोलन,

(3) महिला बचत आन्दोलन,

(4) राजकीय ऋण की व्यवस्था,

(5) वित्त आयोग की सिफ़ारिशों को पूरा करना,

(6) आकस्मिकता निधि के नियमों का पालन,

(7) सरकारी लेखा सम्बन्धी नियम बनाना,

(8) राज्य ऋण के लिए व्याज की दर निश्चित करना,

(9) राज्यों तथा व्यापारिक विभागों को दिए गए कर्ज़ों पर व्याज की दर निर्धारित करना ।

इसके अतिरिक्त समय समय पर विभिन्न मंत्रालयों को व्यय पर नियंत्रण रखने के लिए आदेश देना भी बजट प्रभाग का काम है ।

योजना प्रभाग के मुख्य कार्य हैं

(1) (अ) राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता, जिसमें विकास कार्य के लिए दिए जाने वाले ऋण और अनुदान सम्मिलित हैं। (ब) संविधान के अनुच्छेद 275(1) के परन्तुकों (Provisos) के अधीन अनुसूचित क्षेत्रों और आदिम जातियों की प्रगति के लिए अनुदान, स्थानीय निर्माण कार्यो के लिए सहायता। (स) अभाव ग्रस्त क्षेत्रों में संकट निवारण के लिए सहायता, तथा (द) पंचवर्षीय योजना की सिफ़ारिशों के सम्बन्ध में राज्यों को दी जाने वाली संपूर्ण केन्द्रीय सहायता को सामान्यतः एक सूत्र में बाँधना।

(2) पूँजी बजट (जिससे पूँजी खाते में धन का बजट सम्मिलित हो) तथा पूँजीगत व्यय का नियन्त्रण।

(3) सांख्यिकी (Statistical) मामलों में सामान्यतः एक सूत्रता स्थापित करने और बहुप्रयोजनीय राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (Multi-purpose National Sample Survey) के प्रशासन से सम्बन्ध रखने वाले नीति सम्बन्धी विषय।

(4) भारत सरकार की टकसाल (Government of India Mint)।

(5) भारतीय सार्वजनिक प्रशासन संस्था (Indian Institute of Public Administration)।

(6) कर निर्धारण की कुछ महत्त्वपूर्ण मदों पर विनियमन और समन्वय, जैसे; माल और मुसाफ़िरों पर सीमाकर, केन्द्रीय सरकार की संपत्ति पर स्थानीय करों की अदायगी।

(7) राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले महत्त्वपूर्ण विषयों तथा आर्थिक महत्त्व रखने वाले राज्य-विधानों से संबंधित केन्द्रीय सरकार की नीति के विषय के प्रश्न।

(8) पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित नीतियाँ और सामान्य वित्तीय नियमावली।

(9) बेकारी, मूल्य सम्बन्धी नीति, लाभ के उचित स्तर, मुद्रास्फीति (Inflation), राष्ट्रीयकरण आदि।

(10) केन्द्रीय मंत्रालयों के विभिन्न वैधानिक और अन्य प्रस्तावों के सामान्य आर्थिक प्रभाव की जाँच।

(11) कर जाँच आयोग की सिफ़ारिशों के सम्बन्ध में समन्वय और बाद की कार्रवाई।

बाह्य वित्त प्रभाग का कार्य विदेशों के साथ भारत के सब प्रकार के वित्तीय और आर्थिक सम्बन्धों पर विचार करना है। यह मुद्रा विनिमय नियन्त्रण के प्रबन्ध, भुगतान तथा अन्य वित्तीय करार, विदेशी निवेश (Foreign investment) सम्बन्धी प्रस्तावों की जाँच, विदेशी ऋणों की प्राप्ति और आमतौर से भारत के बाह्य वित्तीय

और आर्थिक सम्बन्धों के लिए उत्तरदायी है। यह समय समय पर देश की विदेशी मुद्रा विनिमय स्थिति को ध्यान में रखते हुए आयात और निर्यात नीति के निर्धारण के समय वाणिज्य और उद्योग, खाद्य और कृषि आदि मंत्रालयों से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। पंचवर्षीय योजना के लिए मिलने वाली विदेशी सहायता और विभिन्न कार्यक्रमों के अधीन मिलने वाली तकनीकी सहायता का प्रबन्ध, सयुक्त राष्ट्र संघ और उसके विशिष्ट अभिकरणो के कार्यक्रम, अमरीकी सरकार का चतुस्सूत्रीय कार्यक्रम, कोलम्बो योजना की सहायता आदि सब इसी प्रभाग के काम हैं। आर्थिक प्रभाग, अर्थ विभाग के अन्य विभागों को परामर्श और सहायता देने के लिए होता है। इसका काम आर्थिक नीति को प्रभावित करने वाली समस्याओं के सम्बन्ध में गवेषणा करना भी है।

बीमा प्रभाग का काम जीवन बीमा से सम्बन्धित सभी मामलों तथा बीमा अधिनियम 1938 और जीवन बीमा निगम अधिनियम 1956 का परिचालन है।

(ग) **शासकीय विभाग :** वित्त विभाग की सलाह तथा समन्वय आदि के बावजूद भी यदि प्रत्येक मन्त्रालय अपने वित्तीय दायित्वों को न निभाए तो सारी शासन व्यवस्था ही डूब सकती है। वित्त का उचित ढंग से उपयोग हो रहा है या नहीं यह देखना शासकीय विभागों की ज़िम्मेदारी है। विभागों का कर्तव्य है कि वे अपने आय व्यय का लेखा रखें तथा लेखा परीक्षा की शर्तो को पूरा करें। विभागों का यह भी कर्तव्य है कि यदि व्यय सीमोपरि हुआ हो तो उसे भी नियमित कराएँ। अपने विभाग के सम्बन्ध में योग्य संस्था को आयव्ययक बना कर देना भी शासकीय मन्त्रालयों का ही काम है क्योंकि स्पष्ट है कि कोई अन्य संस्था इस कार्य को इतनी कुशलता से नही कर सकती। चूँकि हर समय वस्तुओं और सामग्री में सरकार का बहुत सा धन पड़ा रहता है इसलिए विभागों का यह भी कर्तव्य है कि वे देखें कि उन सामग्रियों के संचय के लिए भंडारों की समुचित व्यवस्था है या नही।

भारत सरकार की सामान्य वित्तीय नियमावली (General Financial Rules) में शासकीय विभागों के वित्तीय उत्तरदायित्व के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। इस चर्चा के अनुसार विभागों के प्रधान अधिकारी वित्तीय मामलों के लिए स्वयं ज़िम्मेदार होते हैं। चूँकि स्वयं सचिव हर एक आय व्यय पर निरीक्षण नहीं रख सकता इसलिए अधीनस्थ अधिकारियों (Subordinate Officers) को वित्तीय अधिकार दिए जाने की भी व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्था सार्वजनिक निर्माण विभाग (Public Works Department) में अक्सर पाई जाती है।

3. स्वायत्त संस्थाएँ

(क) **लेखा परीक्षा तथा लेखा विभाग** (Audit and Accounts Department): यद्यपि लेखा-निर्माण स्वयं व्यय या आय विभागों का कर्तव्य है फिर भी भारत सरकार के सभी विभागों द्वारा अभी तक इस सम्बन्ध में कोई निजी व्यवस्था न होने के कारण लेखा परीक्षा विभाग को यह काम करना पड़ता है। इसीलिए इसे "लेखा परीक्षा तथा लेखा विभाग" कहते हैं।

लेखा परीक्षा तथा लेखा विभाग का इतिहास बहुत पुराना है। इस विभाग की नींव 1913 में पड़ी थी। 1915 के एक्ट में (सेक्शन 96 डी) में पहली बार 'महालेखा परीक्षक' के पद का उल्लेख किया गया है पर इसमें उसके कार्यकलापों का वर्णन नहीं है। उसके कार्यकलाप सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा "महालेखा परीक्षक-नियमावली" (Auditor-General Rules) के नाम से लागू किए गए थे; इसके बाद 1935 के भारतीय शासन अधिनियम (Government of India Act) के अन्तर्गत "एकाउन्ट्स एण्ड आडिट आर्डर, 1936" ने इसकी नींव दृढ की। भारतीय संविधान द्वारा "नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक" (Comptroller and Auditor-General) को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

संविधान के अनुसार नियंत्रक, सर्वोच्च न्यायालय और लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) जैसी स्वतन्त्र संस्थाओं में से एक है। अब नियंत्रक के अधिकार भी बहुत हैं और उसे अनौपचारिक तौर पर 'संसद का अधिकारी' भी कहा जाता है। स्वतन्त्रता के पूर्व इंगलैण्ड में हुए व्यवहारों की लेखा परीक्षा महालेखापरीक्षक नहीं कर सकता था पर अब अपनी सरकार के सारे व्यवहारों (चाहे वे जहाँ भी हुए हों) की परीक्षा करने का अधिकार महालेखा-परीक्षक को है। एक और बात उल्लेखनीय यह है कि पहले नियंत्रक तथा महालेखा-परीक्षक केवल "महालेखापरीक्षक" के नाम से ही जाना जाता था पर संविधान ने इसे नियंत्रक और महालेखा परीक्षक का पद नाम दिया है। 'संसदीय अनुदान प्रथा' का आशय यह है कि जब तक वित्त उपलब्ध न कराया जाए व्यय न हो। पहले व्यय होने के बाद ही व्यय व्यवहारों की परीक्षा होती थी पर संविधान बनाने वालों का उद्देश्य ऐसी संस्था बनाना था जो कोष से वित्त निकलने से पहले देखे कि धन उपलब्ध है या नहीं। यह योजना इंगलैण्ड के "एक्सचेकर कन्ट्रोल" के आधार पर बनाई गई थी और इसीलिए संविधान ने इसे 'नियंत्रक' की पदवी दी।

नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के कर्तव्य

संविधान के अनुच्छेद 149 में महालेखापाल के कार्यो के बारे में नई विधि बनाई जाने की कल्पना है पर अभी तक ऐसी कोई विधि[1] न बनने के कारण उक्त अनुच्छेद के अनुसार ही 1936 का एकाऊन्टस् एण्ड ऑडिट ऑर्डर जो 1949 में इण्डिया प्रॉविजनल कॉन्स्टीट्यूशन ऑर्डर 1947 से मान्य कर लिया गया था अभी तक प्रयोग में हैं। इस नियम के अनुसार उसके वैधानिक कार्यकलाप इस प्रकार हैं:

(क) लेखा निर्माता के नाते—

(1) राष्ट्रपति की अनुमति से केन्द्र व राज्य सरकार के लेखों के स्वरूप को निर्धारित करना।

(2) केन्द्र तथा राज्य सरकारों के लेखों का निर्माण (केन्द्र में रक्षा तथा रेल और कुछ अन्य विभागों को छोड़ कर जहाँ पृथक्करण हो चुका है)

[1] तृतीय लोक सभा की सार्वजनिक लेखा समिति ने अपनी चौथी रिपोर्ट में सरकार से इस सम्बन्ध में शीघ्र नियम बनाने का आग्रह किया है।

भण्डार, व्यापारिक विभागों के लाभ-हानि तथा अन्य लेखों का निर्माण; तथा खजानों और विभागों में रखे गए प्रारम्भिक लेखों का निर्माण भी उसकी ज़िम्मेदारी है।

(3) प्रत्येक सरकार के प्राप्ति तथा व्यय व्यवहारों के बारे में प्रति वर्ष एक बृहद् लेखा बनाना। यह लेखा जैसा कि अध्याय चार में विस्तार से बतलाया जाएगा 'वित्त लेखा' कहलाता है। इसके अतिरिक्त महालेखापाल को एक 'सामान्य वित्तीय विवरण' (General Financial Statement) भी बनाना पड़ता है जिसे 'संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखा' (Combined Finance and Revenue Account) कहते हैं इसमें केन्द्रीय और राज्य सरकारों की संपत्ति और दायित्वों के अवशिष्ट (Balance of assets and liabilities) का लेखा होता है।

(ख) लेखा परीक्षक के नाते—

(1) केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के सभी व्यय व्यवहारों की जाँच करना चाहे वह व्यवहार भारत में हुआ हो या बाहर। इसमें यह देखा जाता है कि जिस प्रयोजन के लिए व्यय किया गया है वह विधि विहित था और उसके लिए विधि के अनुसार धन भी उपलब्ध था या नहीं। इस में केवल 'गुप्त सेवा व्यय' (Secret Service Expenditure) अपवाद है जिसके व्यय की परीक्षा का लेखा परीक्षक को अधिकार नहीं।

(2) केन्द्र तथा राज्य सरकारों के ऋण, निक्षेप (Deposits), अग्रिम राशियों (Advances) तथा अवर्गित लेखों व विप्रेषण व्यवहारों की लेखा परीक्षा करना।

(3) राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के आदेश से ऐसे व्यापारिक विभागों के व्यावसायिक, उत्पादन लेखे तथा लाभ-हानि लेखों तथा संतुलन पत्रों (Balance Sheets) की लेखा परीक्षा करना जैसा कि कहा जाए।

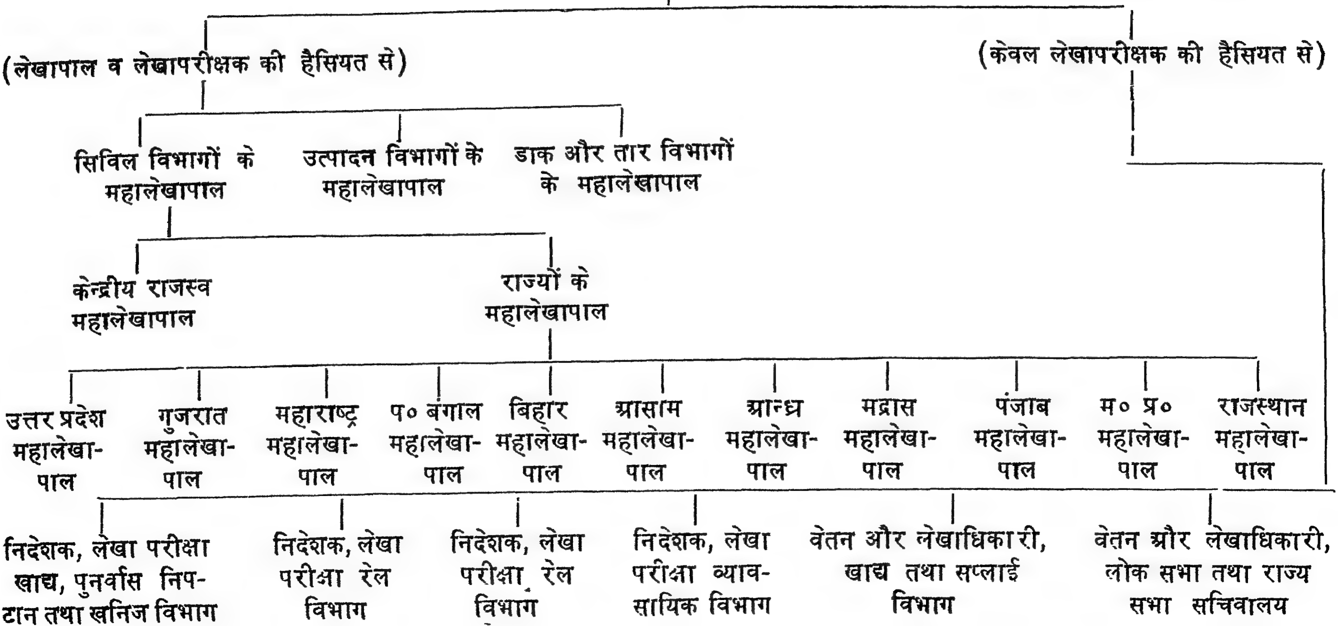
(4) राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के आदेश से भण्डार लेखों तथा स्कन्धों की लेखा परीक्षा करना।

(5) विधान मंडल और संसद के सम्मुख प्रस्थापन के हेतु विनियोग लेखों तथा वित्त लेखों पर—'लेखा परीक्षा प्रतिवेदन' (Audit Report) बनाकर उन्हें राष्ट्रपति और राज्यपाल को पेश करना।

इन कार्यों के अतिरिक्त अब महालेखापरीक्षक की यह भी ज़िम्मेवारी है कि वह स्वायत्त संस्थाओं के सम्बन्ध में पारित कानून के अनुसार उनकी भी लेखा परीक्षा करे, जैसे दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) अथवा औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) के विषय में।

लेखा परीक्षा और लेखा विभाग का संघटन इस प्रकार है :

कृपया अगले पृष्ठ पर चार्ट नं० 2 देखिए।


चार्ट 2
भारतीय लेखा परीक्षा तथा लेखा विभाग का संघटन
नियंत्रक व महालेखापरीक्षक
(लेखापाल व लेखापरीक्षक की हैसियत से)
(केवल लेखापरीक्षक की हैसियत से)
सिविल विभागों के महालेखापाल
उत्पादन विभागों के महालेखापाल
डाक और तार विभागों के महालेखापाल
केन्द्रीय राजस्व महालेखापाल
राज्यों के महालेखापाल
उत्तर प्रदेश महालेखा-पाल
गुजरात महालेखा-पाल
महाराष्ट्र महालेखा-पाल
प० बंगाल महालेखा-पाल
बिहार महालेखा-पाल
आसाम महालेखा-पाल
आन्ध्र महालेखा-पाल
मद्रास महालेखा-पाल
पंजाब महालेखा-पाल
म० प्र० महालेखा-पाल
राजस्थान महालेखा-पाल
निदेशक, लेखा परीक्षा खाद्य, पुनर्वास निप-टान तथा खनिज विभाग
निदेशक, लेखा परीक्षा रेल विभाग
निदेशक, लेखा परीक्षा रेल विभाग
निदेशक, लेखा परीक्षा व्याव-सायिक विभाग
वेतन और लेखाधिकारी, खाद्य तथा सप्लाई विभाग
वेतन और लेखाधिकारी, लोक सभा तथा राज्य सभा सचिवालय

जैसा कि सामने के चार्ट से प्रगट होता है, विभाग में सर्वोपरि नियंत्रक और महालेखा परीक्षक तथा उसका कार्यालय होता है जिसके अधीन सामान्य लेखा परीक्षा और सम्मिलित लेखा तथा लेखा परीक्षा दोनों की शाखाएँ होती हैं। सम्मिलित लेखापालन और लेखापरीक्षा के तीन प्रकार हैं:–(1) सिविल विभाग, (2) डाक और तार विभाग और (3) उत्पादन विभाग। सिविल विभागों के लेखापालों में पुनः दो प्रकार हैं.—(1) केन्द्रीय राजस्व के लेखापाल और (2) राज्यीय लेखों के लेखापाल। केन्द्रीय राजस्व के लेखापाल व राज्यीय लेखापाल लेखा निर्माण तो करते ही हैं साथ ही वे लेखा परीक्षा के लिए भी उत्तरदायी हैं। सिर्फ़ लेखा परीक्षा की दृष्टि से निदेशक, लेखा परीक्षा रेल विभाग, निदेशक, लेखा परीक्षा रक्षा विभाग आदि महालेखापरीक्षक के अधीनस्थ अधिकारी हैं। इन विभागों में महालेखापरीक्षक का दायित्व केवल लेखा परीक्षा करना है क्योंकि इन में विभागीय लेखा निर्माण की व्यवस्था पहले से ही है। इनके अतिरिक्त दो अन्य विभागों में अर्थात् लोक सभा और राज्य सभा सचिवालय जिनमें अब लेखा निर्माण, लेखा परीक्षा से अलग कर दिया गया है, लेखा परीक्षा की ज़िम्मेदारी महालेखापरीक्षक की है। चूँकि ये विभाग छोटे हैं और इनके लिए स्वतंत्र 'निदेशक लेखा परीक्षा' नियुक्त करना उपयुक्त नहीं अतएव इनकी लेखा परीक्षा महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व द्वारा की जाती है।

वित्त व्यवस्था के सम्बन्ध में लेखा परीक्षा विभाग इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह यह देखता है कि राष्ट्र का व्यय उचित तौर पर किया गया है या नहीं। यह स्वाभाविक है कि जो विभाग व्यय करते हों वे स्वयं उस के औचित्य या अनौचित्य पर उतनी अच्छी तरह ध्यान न दे सकें, जितनी कि एक अन्य संस्था। लेखा परीक्षा विभाग का यह भी कर्तव्य है कि वह वित्त विभाग को आयव्ययक निर्माण में मदद दे। इसके सिवा लेखा परीक्षा के परिणामों के बारे में सूचित करना भी लेखा परीक्षा विभाग का ही काम है।

(ख) **योजना आयोग** : किसी बड़े पैमाने पर आर्थिक रचना करने वाले देश में योजना बनाने वाली संस्था के बिना काम नहीं चल सकता। रूस, और अमेरिका जैसे देशों में योजना नियोजक संस्थाएँ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में ही स्थापित हो चुकी थीं। भारत में योजना के प्रति द्वितीय महायुद्ध के बाद सक्रिय रूप से विचार शुरू हुआ और तभी से कोई न कोई संस्था इस दिशा में निर्मित होती रही है। विद्यमान योजना आयोग की स्थापना सन् 1950 में हुई थी।

योजना आयोग के काम इस प्रकार हैं

(1) देश के भौतिक साधनों (Physical Resources) और तकनीकी कर्मचारियों (Technical Personnel) का अन्दाज़ लगाना और उनमें से ऐसे साधनों की वृद्धि की संभावनाओं का अध्ययन करना जो देश की आवश्यकताओं की तुलना में कम हैं।

(2) देश के साधनों के उपयुक्त और संतुलित उपयोग की योजना बनाना।

(3) अग्रताओं को ध्यान में रखते हुए उन अवस्थाओं को तय करना जिनमें योजना पूरी होगी तथा प्रत्येक अवस्था की पूर्ति के लिए साधन निर्धारित करना।

(4) देश के आर्थिक विकास में रुकावट डालने वाले कारणों पर प्रकाश डालना तथा ऐसी परिस्थितियाँ निर्माण करना जो देश की विद्यमान सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए योजना के सफल संपादन के लिए आवश्यक हैं।

(5) योजना की प्रत्येक अवस्था में सफलता पूर्वक कार्य करने के लिए आवश्यक साधन बतलाना ।

(6) योजना की प्रत्येक अवस्था की प्रगति को सूचित करना तथा उस प्रगति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक नीति और साधन परिवर्तन पर राय देना ।

(7) विद्यमान आर्थिक और राजनैतिक अवस्थाओं तथा विकास कार्यक्रमों की प्रगति को ध्यान में रखते हुए सरकार को अन्तरिम तथा वैकल्पिक सलाह देना। इसी प्रकार यदि केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों ने योजना के संपादन के सम्बन्ध में कोई विशेष प्रश्न पूछा हो तो भी सलाह देना।

योजना आयोग के नौ सदस्य हैं तथा एक अंशकालिक सदस्य है । नौ सदस्यों में चार मंत्रिमंडल के लोग हैं और पाँच विशेषज्ञ । मंत्रिमंडल के सदस्यों में प्रधान मंत्री भी होता है जो योजना आयोग का अध्यक्ष होता है । अन्य मंत्रियों में वित्त मंत्री, योजना मंत्री व आर्थिक समन्वय मंत्री हैं । योजना आयोग का काम केवल सलाह देना है, यह आवश्यक नहीं कि राज्य अथवा केन्द्र सरकारें उन्हें कार्यान्वित करें । सलाह की उपयुक्तता के कारण उसे प्रायः सभी सरकारें मान्यता देती हैं । जहाँ मतभेद होता है वहाँ यह सुझाव राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) के सामने रखा जाता है और फिर सरकारें परिषद् के निर्णय कार्यान्वित करती हैं । यह आवश्यक है कि पंचवर्षीय योजनाएँ राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित हों । पर अन्तरिम और समस्या विशेष पर दिए सुझावों के लिए यह आवश्यक नहीं । परिषद् में राज्यों के सभी मुख्य मंत्री सदस्य हैं ओर प्रधान मंत्री उसका अध्यक्ष होता है । केन्द्रीय वित्त और योजना मंत्री भी उसके सदस्य हैं । वित्तीय शासन की दृष्टि से पूँजीव्यय (Capital Expenditure) का निर्धारण और आयव्ययक में बड़ी योजनाओं के शामिल होने के पूर्व योजना आयोग की सलाह लिया जाना आवश्यक है । प्रायः सभी विषयों पर चाहे वह वित्तीय नियंत्रण का प्रश्न हो अथवा रेल वित्त व्यवस्था का, योजना आयोग की सलाह ली जाती है ।

योजना आयोग ने अपने कार्य को सरल बनाने के लिए कई समितियाँ, परिषदें अथवा अन्य संस्थाएँ नियुक्त की हैं जिनमें वित्तीय मामलों की दृष्टि से चार मुख्य हैं :—

(1) योजना-प्रायोजना समिति (Committee on Plan Projects)

(2) कार्यक्रम मूल्यांकन संस्था (Programme Evaluation Organization)

(3) योजना आयोग के लिए संसद् सदस्यों की अनौपचारिक सलाह समिति (Informal Consultative Committee of the Members of Parliament for the Planning Commission)
(4) योजना आयोग के विशेषज्ञों का समूह (Panel of Planning Commission)

योजना-प्रायोजना समिति की स्थापना 1956 में हुई थी । इसका उद्देश्य योजना को पूरा करने में अधिक से अधिक मितव्ययता और कार्यकुशलता लाना है। प्रधान मंत्री इस समिति के अध्यक्ष हैं और दो मुख्य मंत्रियों के अतिरिक्त केन्द्रीय गृह-मंत्री, वित्त मंत्री आदि इसके सदस्य हैं । कार्यक्रम मूल्यांकन संस्था का उद्देश्य समय समय पर सामुदायिक विकास योजना के कार्यक्रम के परिणामों का मूल्यांकन* करना है । अनौपचारिक सलाह समिति संसद् के सदस्यों की एक सलाहकार समिति है जो योजना के सम्बन्ध में योजना आयोग को सलाह देती है। विशेषज्ञों के समूह में सरकारी और ग़ैर-सरकारी दोनों ही तरह के सदस्य होते हैं । योजना आयोग ने यें समूह बनाए हैं—(क) अर्थशास्त्रज्ञो का समूह (ख) शिक्षा विशेषज्ञों का समूह (ग) स्वास्थ्य-विशेषज्ञों का समूह (घ) मज़दूर समस्याओं के विशेषज्ञों का समूह (च) कृषि विशेषज्ञों का सपूह तथा (छ) वैज्ञानिकों का समूह ।

4. रिजर्व बैंक

अन्त में वित्त अधिकारिणी संस्थाओं में रिजर्व बैंक का उल्लेख करना आवश्यक है । यद्यपि यह सरकार का ऐसा अंग नहीं, जैसा कि वित्त मंत्रालय या लेखा विभाग आदि हैं, पर यह सरकारी वित्त संस्था के बराबर है क्योंकि अनेक महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्य इसको सौंपे गए है ।

रिज़र्व बैंक की स्थापना 1934 में रिज़र्व बैंक एक्ट के अनुसार हुई थी । एक्ट के अनुसार बैंक के निम्नलिखित कार्य हैं :—

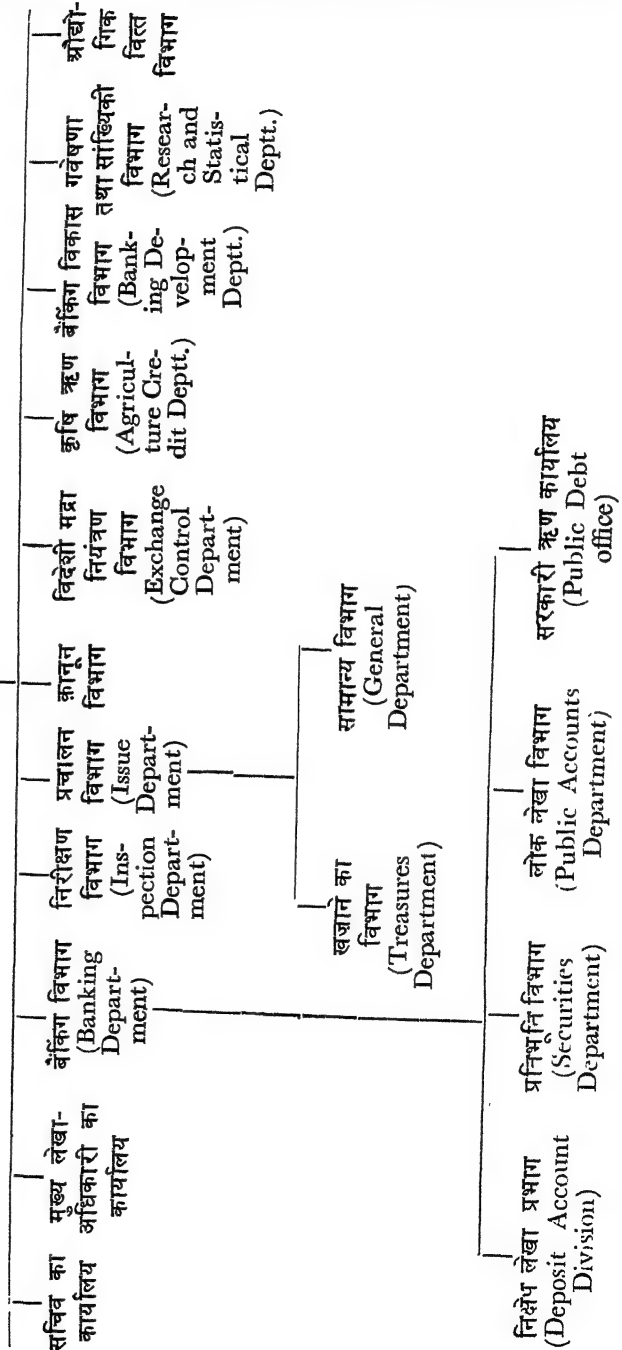
(1) सरकारी बैंक नोटों के प्रचालन (Issue) की व्यवस्था करना ।
(2) भारत में मुद्रा-दृढ़ता (Monetary Stability) की स्थापना करना।
(3) सामान्य तौर पर देश की मुद्रा तथा ऋण पद्धति को देश के हित में चलाना ।

मुद्रा व ऋण पद्धति को देश के हित में चलाने के लिए रिज़र्व बैंक, सरकार तथा बैंकों के वित्तीय मामलों में सलाहकार के रूप में काम करता है । इन्हीं प्रयोजनों के लिए विभिन्न मुद्राओं को चलाना, प्रेषण सुविधाओं का निर्माण और सरकार के लिए हुण्डियों को खरीदना और बेचना रिज़र्व बैंक की ज़िम्मेदारी है । मुद्रा-दृढ़ता की दृष्टि से बैंक को विनिमय कार्य भी करना पड़ता है । इसमें यह देखना होता है कि रुपए के विदेशी मूल्य में अस्थिरता न आ जाए । बैंक को केन्द्रीय बैंक अर्थात् बैंकों के बैंक का काम भी करना पड़ता है।

*सामुदायिक विकास योजना के अतिरिक्त कार्यक्रम मूल्यांकन संस्था ने इधर अब कुछ अन्य कृषि विषयक कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी आरम्भ किया है।

चार्ट 3

रिज़र्व बैंक का संघटन



बैंक की व्यवस्था एक केन्द्रीय बोर्ड द्वारा होती है। प्रशासनिक कार्य करने के लिए एक गवर्नर व तीन डिप्टी गवर्नर होते हैं।

बैंक का संघटन इस प्रकार है :

कृपया पिछले पृष्ठ पर चार्ट न० 3 देखिए।

जैसा कि चार्ट से प्रकट होता है एक मुख्य कार्यालय के अन्तर्गत निम्नलिखित विभाग होते हैं :—

(1) सचिव कार्यालय
(2) मुख्य लेखाधिकारी कार्यालय
(3) बैंकिंग विभाग
(4) अन्वेषण विभाग
(5) प्रचालन विभाग
(6) क़ानून विभाग
(7) विदेशी मुद्रा विनिमय नियंत्रक विभाग
(8) कृषि ऋण विभाग
(9) बैंकिंग विकास विभाग
(10) गवेषणा तथा सांख्यिकी विभाग
(11) औद्योगिक वित्त विभाग

बैंकिंग विभाग के पुनः चार उपविभाग* है :—

(1) निक्षेप लेखा विभाग
(2) प्रतिभूति विभाग
(3) लोक लेखा विभाग
(4) सरकारी ऋण कार्यालय (Public Debt Office)

निक्षेप लेखा विभाग के मुख्य काम इस प्रकार हैं :—(1) अनुसूचित बैंकों के कुछ लेखों की व्यवस्था, (2) स्टर्लिंग के क्रय का काम, (3) सरकारी हुण्डियों को निविदा देना, (4) बैंकों के बिलों को भुनाना, तथा (5) अनुसूचित बैंकों को अग्रिम धन देना आदि। कुछ शाखाओं में इस प्रभाग का काम स्थानीय शोधन गृहों (Clearing Houses) द्वारा किया जाता है।

प्रतिभूति विभाग के मुख्य काम इस प्रकार हैं :—(1) स्थानीय संस्थाओं तथा सरकारी अफ़सरों द्वारा खरीदी गई प्रतिभूतियों की खरीद, रखवाली, विक्रय आदि तथा (2) भारतीय बीमा अधिनियम के अन्तर्गत बैंकों के साथ स्थापित प्रतिभूतियों के लिए प्रतिनिधि का काम। इस के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक द्वारा प्रचालित तथा बैंकिंग विभाग की नियोजित प्रतिभूतियों का निरीक्षण करना।

लोक लेखा विभाग का काम केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के लेखे को संभालना है। इसी प्रभाग द्वारा राज हुंडियाँ बेची व प्रतिशोधित की जाती है।

*1949 में राष्ट्रीयकरण के पूर्व बैंकिंग विभाग में एक और प्रभाग हुआ करता था जिसका नाम था 'शेयर ट्रांसफर प्रभाग'। इस प्रभाग का काम बैंक के नियमों के अनुसार शेयर रजिस्टर रखना, शेयर सर्टिफ़िकेट्स जारी करना, लाभांशों का वितरण आदि था।

सरकारी ऋण कार्यालय का काम केन्द्रीय सरकार के रुपए के ऋण की व्यवस्था करना तथा उसका लेखा रखना है। इसके अतिरिक्त ऋण कार्यालय का काम (1) प्रतिभूतियों पर छमाही ब्याज देना, (2) खज़ाने से ब्याज मिल सकने के चिह्न लगाना (3) ऋणपत्रों की बदली, (4) विभिन्न प्रकार की सरकारी प्रतिभूतियों का समेकीकरण, तथा (5) भुगतान के लिए सूचित सरकारी ऋणों का प्रतिशोधन आदि है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के नवीन ऋणों को जारी करना व इस सम्बन्ध में आवश्यक व्यवस्था करना भी सरकारी ऋण कार्यालय का काम है।

प्रचालन विभाग के दो प्रभाग हैं :—(1) खजाना विभाग तथा (2) सामान्य विभाग। खजाने के विभाग का काम :—(1) नोटों की प्राप्ति, रखवाली, परीक्षा व नए नोटों को छापना, (2) नक़दी तिजोरी (Currency Chest) व्यवस्था, (3) जनता व बैंक द्वारा लाए गए विभिन्न अभिधान के नोटों को सिक्कों में परिवर्तित करना। सामान्य विभाग का काम :—(1) शोधित तथा प्रतिसंहृत नोटों को वापिस लेना, उनकी सांख्यिक तथा मुद्रागत परीक्षा करना व उनके रद्द करने की आज्ञा देना, (2) खोए, चुराए गए, बदले तथा किसी अन्य रूप से अपूर्ण नोटों के मूल्य चुकाए जाने के बारे में की गई दरख्वास्तों की परीक्षा करना, (3) विभिन्न क्षेत्रों की नक़दी तिजोरी में योग्य मात्रा में कोष का प्रदाय करना।

कृषि-ऋण विभाग के मुख्य कार्य हैं :—

(1) कृषि-ऋण सम्बन्धी सभी प्रश्नों को विशेषज्ञ की दृष्टि से जानते रहना,
(2) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा सहकारी बैंकों को इस सम्बन्ध में सलाह देना, तथा
(3) बैंकों के कृषि ऋण सम्बन्धी कार्यों में समन्वय करना।

1939 के भारत रक्षा अधिनियम के अनुसार विदेशी मुद्रा के नियंत्रण का काम विशेष रूप से रिज़र्व बैंक को सौंपा गया था। विदेशी मुद्रा नियंत्रण विभाग यह काम करता है। विभाग के मुख्य काम हैं :—

(1) निर्यात नियन्त्रण,
(2) मुद्रा परिवर्तन की अनुज्ञप्ति,
(3) अन्य देशों की मुद्रा परिवर्तन की गतिविधि का अध्ययन आदि।

बैंकिंग कार्य व विकास विभाग का कार्य अनुसूचित बैंकों तथा अन्य पूँजी संस्थाओं जैसे प्राइवेट अथवा पब्लिक कम्पनियों पर नियंत्रण रखना है। नियंत्रण में वे सारी बातें देखी जाती हैं जो कम्पनी अधिनियम और विभिन्न बैंकिंग अधिनियमों में निर्धारित हैं। इस नियंत्रण की क्रिया में इस प्रभाग को बैंकों की नियमित जाँच करनी पड़ती है। बैंकों की पूँजी में वृद्धि या ह्रास करना हो तो उसके लिए भी इस विभाग की अनुमति आवश्यक होती है। विभाग का काम राज्य और केन्द्रीय सरकार की सलाह से बैंकों का विकास करना भी है। विभाग राजकीय औद्योगिक वित्त निगमों के मामलों को भी देखता है।

गवेषणा तथा सांख्यिकी विभाग का काम बैंक के नियत कालिक प्रकाशनों तथा रिपोर्टों जैसे मुद्रा व वित्त रिपोर्ट (Currency and Finance Report), भारत का भुगतान शेष (India's Balance of Payments) तथा मासिक बुलेटिन आदि का संपादन करना है। इसके अतिरिक्त इस विभाग में आर्थिक मामलों पर गवेषणा का कार्य भी होता है। ० ० ०

अध्याय 2

खजाना प्रणाली और धन परिचालन

खज़ाना प्रणाली का प्रारम्भ कब हुआ यह कहना कठिन है । भारत में हिन्दू काल में और बाद में मुस्लिम काल में खज़ानों के अस्तित्व और उनकी प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख मिलता है । पर यह सच है कि खज़ानों का वर्तमान रूप ब्रिटिश काल की देन है । पहले खज़ाने सरकारी वित्त-संचालन के एकमात्र साधन थे पर अब बैंकों की अधिकाधिक स्थापना से वित्त व्यवहार सरकारी बैंक अर्थात् स्टेट बैंक और रिजर्व बैंक की शाखाओं के माध्यम से भी होता है । इंग्लैण्ड में खज़ाने नहीं होते वहाँ सारे व्यवहार बैंक आफ इंग्लैण्ड (जिसे 'पब्लिक एक्सचेकर कहते हैं) की शाखाओं के माध्यम से होता है । भारत जैसे विस्तृत देश में खासकर जब कि यातायात के साधन और आर्थिक समस्याएँ और आवश्यकताएँ न तो जटिल हैं न पूर्ण रूप से विकसित ही, विद्वानों का मत* है कि खज़ानों की प्रथा आवश्यक है ।

1. खज़ानों का संघटन

विभिन्न सरकारी नियमों के अनुसार यह आवश्यक है कि प्रत्येक ज़िले में एक खज़ाना हो । ज़िले के बड़े होने पर कहीं-कहीं मुख्य खज़ाने के अन्तर्गत तहसीलों में उपखज़ाने भी होते हैं ।

खज़ानों के मुख्य दो प्रकार हैं । बैंकिंग खजाने तथा ग़ैर-बैंकिंग खज़ाने । बैंकिंग खज़ाने वे हैं जिनमें सरकारी वित्तीय व्यवहार का कार्य बैंक द्वारा होता है अर्थात् रुपए जमा कराना या निकालना बैंक में होता है और खज़ाने केवल उसका लेखा

---

*खज़ाने में रुपया जमा करने की इस व्यवस्था पर इधर कुछ राज्यों में असन्तोष प्रकट किया जाने लगा है। इस बात पर विचार हो रहा है कि क्या इस व्यवस्था को बदल कर कोई ऐसी व्यवस्था हो सकती है जो अधिक सुगम हो। कारण यह है कि इस प्रक्रिया में रुपया जमा करने वाले का बहुत सा समय नष्ट होता है। रसीद प्राप्त करने में घंटों लग सकते हैं। किसी व्यवसायी मनुष्य के लिए इतना समय लगाना उसके व्यवसाय के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। अतएव यह सोचा जा रहा है कि क्यों न ऐसी व्यवस्था की जाए कि रुपया जमा कराने वाले सीधे बैंक में रुपया जमा कर सकें और उन्हें चालान कहीं भी 'पास' न करना पड़े। चालान सीधा-सादा हो । इस सम्बन्ध में नेशनल रजिस्टर्स या विशिष्ट प्रकार की मशीनों द्वारा रसीद दिलाने की व्यवस्था का भी विचार हो रहा है। वर्तमान अवस्था में दोष होते हुए भी सुरक्षा की दृष्टि से बहुत गुण भी हैं जो अपना महत्त्व दीर्घकाल के प्रयोग से सिद्ध कर चुके हैं ।

उत्तर प्रदेश में 1958 से पुनर्संगठन कमिश्नर (Reorganization Commissioner) की सिफ़ारिशों को ध्यान में रखते हुए खज़ाना प्रणाली में काफ़ी परिवर्तन किए गए हैं ।

रखने के लिए चालान आदि तैयार करना तथा अन्य गौण कार्य जैसे स्टैम्प रखना आदि करते हैं। ग़ैर-बैंकिग खज़ाने वे हैं जहाँ केवल व्यवहारों का लेखा ही नहीं रहता वरन् वास्तविक कोष भी रहता है। 1934 में रिज़र्व बैंक से भारतीय सरकार का क़रार होने के पूर्व सरकारी वित्त के सारे व्यवहार खज़ानों द्वारा ही होते थे पर उस क़रार से जहाँ-जहाँ रिज़र्व बैंक की शाखाएँ थीं वहाँ सरकारी वित्त का लेनदेन उन शाखाओं पर होने लगा। बाद में रिजर्व बैंक ने तत्कालीन इम्पीरियल बैंक (आजकल स्टेट बैंक) से भी करार किया और इम्पीरियल बैंक की शाखाओं द्वारा भी व्यवहार होने लगा। वित्तीय व्यवहार स्टेट बैंक द्वारा परिचालित होने पर भी खजाने का अलग से अस्तित्व रखना इसलिए ज़रूरी समझा गया क्योंकि पहले इम्पीरियल बैंक पूरी तरह सरकारी बैंक नहीं था इसलिए प्रारम्भिक लेखा अधिकारी होने के नाते सरकारी बिलों की जाँच जो कि उसके कार्य का एक आवश्यक अंग थी, उसे सौंपी नहीं जा सकती थी। खज़ाना अफ़सर (कोषाधिकारी) को एक पूर्ण सरकारी अधिकारी होने के नाते यह काम सौंपा जा सकता था। अब यद्यपि बैंक एक तरह से पूर्ण सरकारी हो गया है किंतु सुविधा की दृष्टि से बैंकों के साथ खज़ाने का होना आवश्यक माना जाता है।

बैंक वाले तथा ग़ैर-बैंक वाले दोनों प्रकार के खज़ानों का प्रधान अधिकारी वहाँ का ज़िला मजिस्ट्रेट होता है। ज़िला मजिस्ट्रेट को इसलिए खज़ानों का प्रधान अधिकारी बनाया जाता है कि ज़िले में सुरक्षा की ज़िम्मेदारी उसी की होती है और इसीलिए सरकारी सम्पत्ति की पूरी ज़िम्मेदारी उसे ही सौपी जा सकती है। पर वास्तव में दिन प्रतिदिन की देखभाल के लिए उसके अधीन खजाना अधिकारी होते हैं। खज़ाना अधिकारी के अधीन उप-खज़ाना अधिकारी होते हैं जिनका काम तहसीलों के उप-खज़ानों की देखभाल करना है। उप-खज़ानो में सरकारी वित्तीय व्यवहार की वही प्रथा होती है जैसी कि खज़ानों में। लेखापाल की दृष्टि से उप-खज़ाना अधिकारी का कोई अस्तित्व नहीं। खजाना अधिकारी द्वारा समय-समय पर उप-खज़ाने की जाँच की जाती है।

ज़िला मजिस्ट्रेट तथा खज़ाना अधिकारी के सिवा खज़ाने के कार्यों का संपादन करने वाले दो अन्य अधिकारियों—(1) खज़ांची व (2) लेखापाल (Accountant) का उल्लेख करना भी समीचीन होगा। खज़ांची वह व्यक्ति है जो सरकारी पैसे की वास्तविक जमा कराई या देनगी करता है और लेखापाल खज़ाने पर किए गए वित्तीय व्यवहारों का लेखा रखता है। दोनों व्यक्ति अपने द्वारा परिचालित व्यवहार अलग-अलग दर्ज करते हैं। एक बिल, चालान, चैक करते समय, दूसरा कोष जमा करते या देते समय। अन्त में उनका मिलान कर लिया जाता है। इस प्रकार रोज़ाना के व्यवहारों का सही लेखा तैयार होने में मदद मिलती है।

2. खज़ाने का जमा होना व निकासी

केन्द्रीय खज़ाना-नियमावली* (Compilation of Treasury Rules) के नियम में बताया गया है :

"भारत सरकार की प्राप्ति के निमित्त सरकारी अधिकारियों द्वारा जो धन प्राप्त किया जाए वह तुरन्त खजाने या बैंक में जमा किया जाना चाहिए।

*नियमावली में इधर कुछ परिवर्तन किए गए हैं।

इस प्राप्त राशि का उपयोग विभागों के दिन प्रतिदिन के खर्च के लिए नहीं किया जा सकता और न उसे आवश्यकता से अधिक समय तक राज्य लेखे के बाहर ही रखा जा सकता है।"

इस नियम में कुछ अपवाद हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं

(1) डाक तार विभाग के नियमों के अधीन अधिकारियों द्वारा सरकारी प्राप्ति के रूप में प्राप्त धन का उपयोग किया जा सकता है।

(2) सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा प्राप्त सरकारी प्राप्तियाँ जिन्हें चालू निर्माण कार्यों के लिए अथवा विशिष्ट परिस्थितियों में महालेखापाल (Accountant-General) द्वारा अनुमति दिए जाने पर भत्ते आदि के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

(3) जंगल विभाग से प्राप्त आय—जिसे स्थानीय व्यय के लिए खर्च किया जा सकता है।

(4) रेलवे विभाग में प्राप्त आय—जिसे विभागीय नियमों के अनुसार विभाग के व्यय के लिए ख़र्च किया जा सकता है।

(5) सरकारी पुस्तकालयों में निक्षेप धन के रूप में प्राप्त आय किसी सदस्य द्वारा पुस्तक न लौटाए जाने पर यदि आवश्यक हो तो उसी पुस्तक की खरीद के लिए।

(6) विदेश स्थित राजदूतावासों में शुल्क आदि से प्राप्त धन का आवश्यकतानुसार व्यय।

(7) मिलिट्री डेरी फार्मों से प्राप्त आय का वहाँ के चालू खर्च के लिए उपयोग—यदि फार्म ऐसी जगह पर हो जहाँ कोई खज़ाना या बैंक की शाखा या सैन्य नक़दी तिजोरी (Military Treasury Chest) न हो।

जिस प्रकार सरकारी वित्त को खज़ाने में जमा कराने के नियम हैं उसी प्रकार खज़ाने या बैंक की शाखा से धन निकालने के भी नियम है। केंद्रीय खज़ाना नियमावली के नियम 15 में निम्नलिखित उद्देश्य अथवा परिस्थितियाँ बताई गई हैं जिनमें सरकारी कोष से पैसे निकाले जा सकते हैं :

(1) आहरण अधिकारी (Drawing Officer) को सरकार से यदि कोई राशि मिलने वाली हो तो वह देने के लिए। आहरण अधिकारी प्रत्येक विभाग के वे अधिकारी हैं जो कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य भत्तों के लिए खज़ानों से पैसे लेते हैं।

(2) आहरण अधिकारी अन्य सरकारी कर्मचारियों को तथा ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों को अदायगी के लिए वित्त की व्यवस्था करता है।

(3) (1) और (2) की माँगों को पूरा करने के लिए अन्य सरकारी अधिकारियों को आहरण अधिकारी द्वारा धन दिए जाने के लिए।

(4) सरकार से यदि किसी को कुछ मिलने वाला हो तो उसके लिए ।

(5) यदि किसी सरकारी अधिकारी को सरकार के माध्यम से वित्त विनिमय करना हो तो उस उद्देश्य के लिए।

किन्तु एक सामान्य नियम यह है कि सरकारी खज़ाने से तब तक पैसे नहीं निकाले जा सकते जब तक कि खज़ाना अधिकारी ने अथवा लोक लेखा विभाग के उपयुक्त अधिकारी ने पैसे निकालने की अनुमति न दे दी हो। उपरोक्त नियमों में एक अपवाद है और वह यह कि अत्यधिक अविलम्बनीय परिस्थिति में ज़िला मजिस्ट्रेट की आज्ञा से खज़ाने से पैसे निकाले जा सकते हैं। किन्तु पेन्शन के बारे में यह नियम लागू नहीं होता। पेन्शन के अपने नियम हैं और कितनी भी अविलम्बनीय परिस्थिति क्यों न हो जब तक पेन्शन दिए जाने के सम्बन्ध में महालेखापाल के स्पष्ट व आपत्तिरहित आदेश न हों, पेन्शन नहीं दी जा सकती। इससे यह बात सिद्ध होती है कि सरकारी खज़ाने से कोई अवांछित राशि न निकाली जा सकती है और न जमा हो सकती है। जनता के वित्त को दुरुपयोग से बचाने के लिए इन नियमों का पालन आवश्यक है।

3. खजाने में सरकारी प्राप्ति को जमा कराने की प्रक्रिया

चालान शब्द से प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे । चालान सरकारी प्राप्ति—अर्थात् वह राशि जो सरकार को प्राप्त होने वाली है— को जमा कराने का माध्यम है। मान लीजिए आपको अपना इनकम टैक्स जमा कराना है। आप खज़ाने में जाएँ वहाँ आपको पहले एक चालान भरना होगा। चालान वह निवेदन पत्र है जिसमें जमा की जाने वाली राशि और उसका उद्देश्य बतलाया जाता है। केवल उद्देश्य से आपके चालान की जाँच बाद में नहीं हो सकती अतएव उद्देश्य के साथ एक लेखा शीर्षक भी देना पड़ता है। लेखा शीर्षक (Head of Account) वास्तव में उद्देश्य का एक संक्षिप्त और सुविधाजनक रूप है। अगले अध्याय में लेखा शीर्षकों के बारे में विस्तार से बताया जाएगा। लेखा शीर्षक भर देने के बाद चालान लेखापाल को दे दिया जाता है—जो उसके विवरणों को देखकर—यदि वे ठीक हों तो अपने हस्ताक्षर कर देता है। लेखापाल के बाद आप निवेदन पत्र को पैसों के साथ खज़ान्ची के पास ले जाएँ । खज़ांची उपयुक्त राशि को स्वीकार कर विवरण में हस्ताक्षर कर देगा और अपनी बही में राशि जमा खाते में लिख लेगा। इसके बाद चालान पुनः लेखापाल के पास ले जाना पड़ेगा जो अपनी रोकड़ बही में उसे दर्ज कर लेता है और चालान के दोनों भागों पर हस्ताक्षर कर देता है। यही जमा कराने की प्रक्रिया है। चालान का एक हिस्सा आपको रसीद के रूप में वापस मिल जाएगा।

बैंकिग खज़ानों में लेखापाल के हस्ताक्षर के बाद निवेदन पत्र अर्थात् चालान के साथ उपयुक्त राशि खज़ान्ची के पास न ले जाकर बैंक में ले जानी पड़ती है वहाँ पैसे जमा करने के बाद बैंक सीधे रसीद दे देता है। फिर उसे खज़ाने में लेखापाल के हस्ताक्षर के लिए नहीं ले जाना पड़ता। यह काम बैंक के अधिकारी ही कर लेते हैं जिन्हें प्रतिदिन अपनी प्राप्तियों (Receipts) तथा वितरण-राशि की सूची (Scrawls) खज़ाने में भेजनी पड़ती है।

जमा कराने के सम्बन्ध में यह एक सामान्य नियम है कि वह नक़द ही होना चाहिए। किन्तु स्थानीय ग़ैर-सरकारी बैंकों के चेक भी मंजूर कर लिए जाते हैं। लेकिन इसमें जब तक चेक भुना कर रुपया नहीं मिल जाता, रसीद नहीं मिलती। यदि चेक को भुनाने में कोई कमीशन लगता हो तो वह भी जमा कराने वाले से वसूल किया जाता है। चेकों की तरह "बैंक अदायगी आदेश" (Bank Pay Order) तथा "बैंक जमा चालान" (Bank Credit Chalan) भी खज़ाने में जमा कर लिए जाते हैं।

एक नियम और है। जब 500 रुपए या उससे अधिक की राशि जमा करानी होती है तो लेखापाल के पास जाने के पहले स्वयं खज़ाना अधिकारी से उक्त आशय का आदेश प्राप्त करना आवश्यक होता है।

4. खजाने से सरकारी दायित्व निकाले जाने की प्रक्रिया

सरकारी दायित्व खज़ाने से निकाले जाने की प्रक्रिया का पहला नियम यह है कि ऐसा दायित्व केवल अदायगी आदेश (Pay Order) के प्रस्तुत किए जाने पर ही चुकाया जा सकता है। अदायगी आदेश वह पत्रक है जिसमें दायित्व की राशि तथा प्रयोजन लिखा होता है। दायित्व के भुगतान के बाद देयक पर 'पेड' अर्थात् 'चुकता' लिख दिया जाता है और वह रसीद का रूप ग्रहण कर लेता है।

मान लीजिए आप एक ठेकेदार हैं और आपने सरकार को बड़ी संख्या में फ़र्नीचर दिया है। चूँकि सरकार के सभी कार्य किसी न किसी विभाग द्वारा किए जाते हैं अतएव आपके इस फ़र्नीचर सप्लाई करने के लिए भी कोई न कोई विभाग ज़िम्मेदार होगा। आप सबसे पहले उस विभाग से अपने फ़र्नीचर की क़ीमत माँगेंगे। इस पर वह विभाग आपके कार्य का ब्योरा देते हुए एक देयक बनाएगा। देयक में योग्य अधिकारी द्वारा मूल्य देने के सम्बन्ध में आदेश होंगे। यह देयक लेकर आप ख़ज़ाने जाँए। खजाने में पहले लेखापाल इसकी परीक्षा करेगा, वह देखेगा कि कहीं देयक जाली तो नहीं है, या कहीं ग़ैर व्यक्ति तो उसे भुना नहीं रहा है आदि। साथ ही लेखापाल उसे अपने लेख में दर्ज भी कर लेगा। बाद में आपको एक टोकन दे दिया जाएगा। इसी बीच बिल पर खज़ाना अधिकारी के हस्ताक्षर होंगे। जमा कराते समय यदि राशि 500 से अधिक न हो तो खज़ाना अधिकारी के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं होती पर खज़ाने से कोई राशि बाहर निकलते समय न्यूनतम राशि के लिए भी खज़ाना अधिकारी या सक्षम उप अधिकारी के हस्ताक्षर की आवश्यकता होती है। खज़ाना अधिकारी के हस्ताक्षर का उद्देश्य केवल इन अदायगियों की जाँच कर लेना है। खज़ाना अधिकारी के हस्ताक्षर होने पर आपको अपने फ़र्नीचर का मूल्य मिल जाएगा। चूँकि खज़ांची के सामने अदायगी आदेशों पर वसूली के समय हस्ताक्षर लेना कठिन है अत: प्रत्येक अदायगी आदेश पाने वाला अपने हस्ताक्षर पहले ही से कर देता है। भुगतान के बाद उस अदायगी आदेश पर 'पेड' यानी 'चुकता' की मुहर लग जाती है और वह अदायगी आदेश एक रसीद बन जाता है। बैंकिंग खज़ानों में खज़ाना अधिकारी के हस्ताक्षर के बाद अदायगी आदेश को बैंक में ले जाना पड़ता है और वहाँ अदायगी आदेश का भुगतान होता है।

कभी कभी ऐसा होता है कि सरकारी विभाग चेक के माध्यम से भुगतान करते हैं। इन स्थितियों में चेक का भुगतान भी खज़ाने द्वारा किया जाता है। अध्याय 10 में लेखा परीक्षा से लेखा निर्माण के पृथक्करण के सम्बन्ध में कुछ विभागों में

वेतन तथा लेखा कार्यालय (Pay and Accounts Office) खोले जाने का उल्लेख किया गया है। जहाँ ऐसे कार्यालय खोले जा चुके हैं वहाँ भुगतान सीधे चेक* से होता है और अदायगी आदेश की आवश्यकता नहीं होती। चेक का भुगतान भी बिना किसी जाँच के खज़ाने या बैंक से हो जाता है।

खज़ानों से भुगतान के बारे में कुछ अन्य नियम भी हैं जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं :

(1) यदि कोई माँग निर्धारित समय से छ: महीने बाद सरकारी खजाने में की जाए तो उसका भुगतान सिवा महालेखापाल की आज्ञा के नहीं हो सकता। इस नियम का उद्देश्य जालसाज़ी को रोकना है। ज्यादा समय मिलने से हर तरह की दिक्कतें होने की सभावना रहती है। विद्यमान व्यवस्था में चूंकि खज़ाने में प्रारम्भिक लेखा भी तैयार किया जाता है अत: लेखा-निर्माण के लिए खज़ाने पर यह व्यवहार शीघ्र हो जाना भी आवश्यक है। इसमें पाँच रुपये से कम के भुगतान अपवाद है। इसी प्रकार इसमें पेंशन और सरकारी ऋण के बदले में मिलने वाले भुगतान अपवाद हैं।

(2) अदायगी आदेश विहित स्वरूप में होना चाहिए। केन्द्रीय खजाना नियमावली में इस सम्बन्ध में प्रपत्र दिए हुए है।

(3) ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों को भुगतान करते समय खज़ाना अधिकारी का यह भी कर्तव्य है कि वह यदि भुगतान 250 रुपये से अधिक का हो तो इसकी सूचना आयकर अधिकारियों को भी दे। सरकारी कर्मचारियों के अदायगी आदेशों के बारे में ऐसी सूचना की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि उनके भुगतान का अदायगी आदेश बनते समय आयकर पहले ही जमा कर लिया जाता है।

(4) यदि किसी विशेष प्रकार की राशि के विवरण के लिए महालेखापाल की पूर्व जाँच आवश्यक हो तो वह भुगतान जाँच के बिना खजाने से नहीं किया जा सकता।

5. विशिष्ट विभागों में खजानों के बारे में प्रक्रिया

प्रारम्भ में यह बतलाया गया था कि कुछ विभाग ऐसे हैं जहाँ हर प्राप्ति की जमा कराई अथवा भुगतान केवल खज़ाने के माध्यम से नहीं होता अर्थात् विभाग स्वयं ही सरकार की प्राप्तियों को स्वीकार करते है और इसी प्रकार छोटे से छोटे शोधन के लिये प्राप्त करने वाले व्यक्ति को खज़ाने में न भेज कर स्वयं ही भुगतान करते हैं। ये विभाग हैं : रक्षा विभाग, रेल विभाग, डाक व तार विभाग, निर्माण विभाग व जंगल विभाग। इन विभागों में उपयुक्त मात्रा में राशियाँ एकत्रित होने पर वे खज़ाने में जमा कर दी जाती हैं। पहले बतलाई गई परिस्थितियों में उन्हें अपनी आय से व्यय करने का भी अधिकार होता है। कभी कभी भुगतानों

*प्रयोग के तौर पर महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व के अधीन सारे लेखा परीक्षा अधिकारियों का वेतन चेक द्वारा दिए जाने की व्यवस्था 1 अक्टूबर 1962 से लागू की गई है।

की मात्रा उनकी आय से अधिक हो जाती है ऐसी परिस्थिति में भुगतान के लिए व्यक्तियों को सीधे खज़ाने भेजना पड़ता है। छोटे मोटे व्यवहार विभाग में ही होने के कारण उनको प्रारम्भिक लेखा विभाग ही रखते हैं। शुद्ध प्राप्तियाँ या भुगतान खजानों से होते हैं। उनके सम्बन्ध में वही प्रक्रिया होती है जैसी कि अन्य विभागों में।

(क) रक्षा विभाग में सरकारी प्राप्ति व भुगतान : रक्षा विभाग में सरकारी प्राप्तियों व भुगतान को विभागीय तौर पर रहने देने का यह कारण है कि युद्धकाल में व यद्धक्षेत्रों में सर्वदा खजानों का उपयोग नहीं किया जा सकता। अतएव उन्हें ऐसी व्यवस्था रखनी पड़ती है जिससे उन्हें खजानों पर अवलम्बित न रहना पड़े। दूसरे, खज़ाने से हर अवसर पर जमा या निकासी कर उस व्यवहार के उद्देश्य का अन्दाजा लगाया जा सकता है और यह बात खतरे से खाली नहीं। रक्षा विभाग के बारे में इसलिए यह प्रथा है कि वहाँ के अधिकारियों के नाम कुछ राशि वर्ष भर के लिए निर्धारित कर दी जाती है। खज़ाना अधिकारी बिना पूछताछ के (जब तक भुगतान इस राशि के अन्दर होते हैं) रक्षा विभाग के उपयुक्त अधिकारी की आज्ञा से भुगतान करते हैं। खज़ाना अधिकारी को केवल एक बात का ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं भुगतान, समय की दृष्टि से विषम अनुपात में तो नहीं हो रहे हैं। चूँकि खजांची की जाँच की आवश्यकता नहीं पड़ती अतएव भुगतान चेक के द्वारा होते हैं। चेक पर हस्ताक्षर निर्धारित अधिकारी के ही होने चाहिएँ। कभी-कभी ऐसी परिस्थिति आती है कि वर्ष भर के लिए निर्धारित राशि से अधिक भुगतानों की जरूरत पड़ती है। उस स्थिति में रक्षा विभाग में 'आकस्मिक धन अधियाचन' (Emergency Cash Requisition) नामक पद्धति का प्रयोग किया जाता है जिसके अनुसार पूर्वोक्त निर्धारित राशि से अधिक के शोधन भी खज़ाने से किए जा सकते हैं।

(ख) रेल विभाग में सरकारी प्राप्ति व भुगतान : रेल विभाग की प्राप्तियाँ साधारणतया हर एक खज़ाने में जमा नहीं की जाती। वहाँ यह तरीका है कि प्रत्येक स्टेशन—जो आमदनी के केन्द्र हैं, अपनी आय रोज़मर्रा मुख्य कार्यालय के लेखा विभाग को भेजते हैं। सभी स्टेशनों से ये दैनिक आय प्राप्त होने पर लेखा अधिकारी उन्हें मुख्यालय के खज़ाने में जमा कर देता है। प्रत्येक माह के अन्त में खजाना अधिकारी लेखा अधिकारी को एक सामूहिक रसीद दे देता है। प्राप्तियों को मुख्यालय में न भेजकर सीधे खज़ाने में जमा कराने का अधिकार कुछ बड़े स्टेशनों को होता है।

खजानों से रेल विभागों के लिए भुगतान चेक प्रथा से होते हैं। लेखा अधिकारी प्रत्येक भुगतान के लिए एक चेक देते हैं जिसे किसी खज़ाने पर भुनाया जा सकता है।

(ग) डाक व तार विभाग में सरकारी प्राप्ति व भुगतान : अनेक विभागों की प्रथा को विपरीत डाक तार विभाग में सारी विभागीय प्राप्ति को तुरन्त खज़ानों में जमा कराने की आवश्यकता नहीं होती। वे उसका उपयोग विभागीय भुगतान के लिए कर सकते हैं। इस उपयोग के बाद जो अवशिष्ट राशि रह जाती है उसे खज़ानों में जमा किया जाता है। खज़ाने में जमा कराने का तरीक़ा साधारण प्राप्तियों को जमा कराने की तरह चालान द्वारा है।

भुगतानों के लिए खज़ानों से वित्त निकालने की यह व्यवस्था है कि जहाँ बैंकिंग खज़ाने है वहाँ 250 रुपये से अधिक की भुगतानें बैंक के नाम जारी हुए चेक द्वारा की जाती हैं। बड़ी राशियों में भुगतान के लिए साखपत्रों (Letters of Credit) का उपयोग किया जाता है। साख पत्र लेखापाल डाक-तार विभाग द्वारा जारी किए जाते हैं। महीने के अन्त में खज़ाने, डाक-तार विभाग को जमा की गई तथा निकाली गई सारी राशियों का व्योरा दे देते हैं।

(घ) **निर्माण विभाग में सरकारी प्राप्ति व भुगतान** : निर्माण विभाग में यह नियम है कि विभाग की प्राप्तियाँ यथाशीघ्र निकटतम खज़ाने में जमा कर देनी पड़ती हैं। प्रत्येक प्राप्ति के साथ उपयुक्त चालान तथा विप्रेषण पुस्तिका (Remittance Book) भेजी जाती है जिस पर खज़ाने से प्राप्ति के हस्ताक्षर हो जाते हैं।

निर्माण विभाग में खजाने पर भुगतान दो तरह के होते हैं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष, जैसे निर्माण विभाग के अधिकारियों की तनख्वाह, अप्रत्यक्ष, जैसे किसी ठेकेदार का बिल। ये भुगतान चेक द्वारा होते हैं। चेक कार्यकारी इंजीनियर द्वारा दिए जाते हैं। कार्यकारी इंजीनियरों को चेक जारी करने का अधिकार महालेखापाल द्वारा दिया जाता है।

(च) **जंगल विभाग में सरकारी प्राप्ति व भुगतान** : जंगल विभाग में सरकारी प्राप्ति व भुगतान की व्यवस्था प्राय: वैसी ही है जैसी कि निर्माण विभाग में। जंगल विभाग में भी डाक तार विभाग की भाँति रोज़मर्रा के खर्च के लिए सरकारी प्राप्ति का प्रयोग किया जा सकता है। पर इन भुगतानों के लिए उन अधिकारियों को स्वयं अपने नाम जारी किए गए चेक के रूप में खज़ाने के चेक भेजने पड़ते हैं। जमा की गई प्राप्ति के सम्बन्ध में खज़ाने से महीने के अन्त में महीने भर की जमा की एक सामूहिक रसीद भेज दी जाती है।

* * *

धन परिचालन (Resource Operation) खज़ाने की प्रथा द्वारा जनता का पैसा सरकार तक और सरकार का पैसा जनता तक पहुँचता है। पर इसके लिए केवल खज़ांची और कोष या कौन अधिकारी किस प्रकार धन जमा कराएगा या निकालेगा इतना ही निर्धारित करना पर्याप्त नहीं होता। यह तो व्यवस्था का सिर्फ़ एक अंग है, दूसरा अंग वह है जिससे खज़ाने में सदैव कम से कम पर यथेष्ट राशियाँ हों क्योंकि यह तो सभी को पता होगा कि सरकारी खज़ानों में प्राप्ति हमेशा भुगतान के बराबर नहीं होतीं। कभी कभी भुगतान बहुत अधिक होते हैं। अतएव धन परिचालन खज़ाना प्रणाली के समान ही एक महत्त्वपूर्ण और अनुपूरक व्यवस्था है।

6. धन परिचालन सम्बन्धी सामान्य नियम

धन परिचालन के सम्बन्ध में तीन सामान्य नियम हैं :

(1) विभिन्न खज़ानों में धन का वितरण इतनी ही मात्रा में हो जितना कि वे उसे सुरक्षासहित रख सकें।

(2) धन वितरण जितनी मितव्ययता से किया जाए उतना अच्छा।

(3) खज़ानों के पास यथेष्ट धन भी होना चाहिए।

बैंकों की विभिन्न शाखाओं और खज़ानों में कितना धन सुरक्षा से रखा जा सकता है यह प्राय: स्थानीय ज़िला मजिस्ट्रेट निश्चित करता है। जब तक ज़िले में कोई विशेष प्रकार की अशान्ति या लूट खसोट न हो उपरोक्त राशियों में पर्याप्त फेर बदल किया जा सकता है।

राजस्व का यह एक मूल सिद्धान्त है कि व्यय के लिए नक़दी धन जितनी अल्प परन्तु पर्याप्त मात्रा में रखा जाए उतना ही अच्छा है क्योंकि यदि अधिक नकदी धन खज़ानों और बैंकों में पड़ा रहे तो इसका अर्थ यह होता है कि उधारी और अन्य व्ययों के लिए उतना ही कम धन उपलब्ध होगा। दूसरी ओर ये राशियाँ कम मात्रा में होने से व्यवसाय और अन्य आवश्यक सरकारी व्ययों को नुकसान पहुँच सकता है। अतएव सरकारी वित्त व्यवस्था की कुशलता इसमें समझी जाती है कि वह नक़दी धन का प्रयोग संभालकर करे। चूँकि खज़ानों और सरकारी बैंकों की विभिन्न शाखाओं में पड़ा धन राष्ट्रीय नकदी धन का ही अंश है इसलिए खज़ाना प्रणाली के सम्बन्ध में मितव्ययता से नक़दी धन का प्रयोग बहुत आवश्यक है।

रक्षा और मितव्ययता आवश्यक है पर सरकार के विभिन्न वित्त उद्गम स्रोतों में धन की कमी होना भी वांछित नहीं। सरकारें युद्धकाल में भी अपना दायित्व निभाती हैं। फिर साधारण समय में ऐसा न कर पाने का तो कोई कारण नही। यदि सरकार अपने दायित्व को न निभा सके तो दूसरे दिन सरकार में जनता का विश्वास जाता रहेगा। अतएव खजानों में यथेष्ट धन भी रखना पड़ता है। व्यापार की प्रवृत्तियों से यह हमेशा जाना जा सकता है कि सरकार को अपने दायित्व कैसे निभाने पड़ेंगे। फ़सल की हालत आदि से भी अन्दाज़ लगता है। लेकिन यह सच है कि यह बड़ी कुशलता का काम है जिसे विशेषज्ञ ही कर सकते हैं। 1934 के रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 20 व 21 के अनुसार रिजर्व बैंक केन्द्रीय और राज्य सरकारों के मार्फ़त धन परिचालन के लिए ज़िम्मेदार है।

7. धन परिचालन सम्बन्धी प्रक्रिया

(क) **नक़दी धन की आवश्यकता का अनुमान :** धन परिचालन के लिए यह सबसे आवश्यक है कि खज़ानों की अपनी तिजोरी तथा नक़दी तिजोरी में रखने वाली राशियों का निकटतम अनुमान हो। सर्वप्रथम जनवरी के शुरू में हर वर्ष मुद्रा अधिकारी (Currency Officer) राज्य व केन्द्रीय सरकारों के वित्त विभागों को ख़जानों के साप्ताहिक व मासिक अवशेषों का एक विवरण भेजते हैं। इसके आधार पर वित्त विभाग प्रत्येक खज़ाने के लिए एक 'सामान्य शेष' (Normal Balance) निर्धारित करते हैं अर्थात् यह निर्धारित किया जाता है कि प्रत्येक खज़ाने पर सामान्य हालत में कितने धन परिचालन की ज़रूरत पड़ती है। इस राशि के अनुपात में ही उन ख़ज़ानों में मुद्रा कोष में नक़दी धन रखा जाता है। लेकिन नक़दी धन की आवश्यकता बदलती रहती है। इसलिए यह भी व्यवस्था है कि प्रत्येक मास की 7, 14 तथा 21 तारीख को खजाना अधिकारी खजाने की अवशिष्ट नकदी राशियों को सूचित करे। इसके सिवा बैंक वालों को खज़ाना अधिकारी को बैंक के एजेन्ट या मैनेजर के माध्यम से हर शनिवार को आगामी सप्ताह में होने वाले सरकारी लेन देन का अनुमानित ब्योरा देना पड़ता है। इन आँकड़ों से रिज़र्व बैंक का प्रचालन विभाग (Issue Department) जो धन परिचालन के लिए

ज़िम्मेदार है हमेशा अन्दाज़ लगाता रहता है कि धन परिचालन की कुल आवश्यकता कितनी है और कहाँ पर है। प्रचालन विभाग में इस कार्य के लिए संगठन इस प्रकार है ।

प्रचालन विभाग के अन्तर्गत सात मुद्रा अधिकारी हैं–ये (1) कलकत्ता (2) बम्बई (3) मद्रास (4) दिल्ली (5) बंगलौर (6) नागपुर तथा (7) कानपुर में हैं। मुद्रा अधिकारी, कलकत्ते के अन्तर्गत बंगाल, बिहार, आसाम तथा उड़ीसा के खज़ाने; मुद्रा अधिकारी, बम्बई के अन्तर्गत बम्बई के खज़ाने; मुद्रा अधिकारी, मद्रास के अन्तर्गत मद्रास और केरल के खज़ाने; मुद्रा अधिकारी, दिल्ली के अन्तर्गत दिल्ली, राजस्थान और पंजाब के खज़ाने, मुद्रा अधिकारी, कानपुर के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के खज़ाने; मुद्रा अधिकारी, नागपुर के अन्तर्गत मध्यप्रदेश के खज़ाने तथा मुद्रा अधिकारी बंगलौर के अन्तर्गत आन्ध्र तथा मैसूर के खज़ाने हैं ।

(ख) **नक़दी सिक्कों और नोटों का निर्माण :** रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया एक्ट 1934 की धारा 33 के अनुसार बैंक एक विशेष राशि से अधिक सिक्के, नोट आदि का निर्माण नहीं कर सकता। इस नियम का आशय यह है कि बैंक सरकार के मार्फ़त जो कुछ नोट अथवा सिक्के छापे उनके पीछे कुछ संपत्ति (assets) का आधार हो अन्यथा सरकार दिवालिया हो सकती है। यह संपत्ति आजकल इस प्रकार हैं

(1) स्वर्ण मुद्राएँ
(2) स्वर्ण-पिण्ड (गोल्ड बुलियन)
(3) विदेशी प्रतिभूतियाँ
(4) एक रुपए के सिक्के
(5) रुपयों की प्रतिभूतियाँ

जब नक़दी धन अर्थात् सिक्के और नोटों की आवश्यकता का अनुमान लग जाता है तब उपरोक्त संपत्ति की सीमा के अन्तर्गत रहते हुए रिज़र्व बैंक का प्रचालन विभाग सरकारी टकसाल और नासिक के सरकारी नोट प्रेस को सिक्के और नोट छापने का आदेश देता है ।

यह आदेश छमाही दिए जाते हैं पर आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बीच में भी दिया जा सकता है। आदेश में आगामी तीन महीनों में कितने नोट या सिक्कों की आवश्यकता पड़ेगी इसका भी अंदाज़ दिया रहता है ताकि प्रेस व टकसाल पहले से उन्हें तैयार रख सके और आकस्मिक परिस्थिति के लिए उनकी कमी न पड़े। आदेश में कौन से सिक्के कितनी मात्रा में (इसी प्रकार कितने मूल्य के नोट कितनी संख्या में) छापे जाएँगे इसका विवरण होता है। कभी-कभी नोट या सिक्के नवीन रूप से नहीं छापे जाते व ऐसे नोट अथवा सिक्के जिन्हें रद्द कर दिया गया है उन्हें फिर चालू कर दिया जाता है ।

सिक्के दशमलव प्रणाली के अनुसार इस प्रकार है

100 नए पैसे अर्थात् 1 रुपया (धातु-निकेल)

50 नए पैसे
25 नए पैसे } ये पुरानी अठन्नी और चवन्नी के बराबर हैं (धातु-निकेल)

10 नए पैसे
5 नए पैसे } (धातु-क्युप्रो निकेल)
2 नए पैसे

1 नया पैसा

जब कभी किसी सिक्के को व्यवहार से निकाल लेने का निश्चय किया जाता है तो एक बार खज़ाने में आने पर उन्हें सरकारी टकसालों में भज दिया जाता है। उन्हें फिर चालू नहीं किया जाता। इसी प्रकार नोटों का संचार या अवरोध होता है। आजकल 1, 2, 5, 10, 100 तथा 1,000 के नोट चलन में हैं।

टकसाल और नासिक प्रेस दोनों ही प्रचालन विभाग के आदेश के अनुसार आदिष्ट मुद्रा अधिकारियों को आवश्यक मात्रा में नोट व सिक्के भेजते है। छोटे सिक्कों की आवश्यकताओं में ज्यादह घटती-बढ़ती होने के कारण उन्हें मुद्रा अधिकारी के अधीन एक "छोटे सिक्कों का सग्रह" में भेजा जाता है। मुद्रा अधिकारी उन्हें फिर अपने क्षेत्र में स्थित खजानों की आवश्यकताओं के अनुसार वितरित करते हैं। इस प्रकार नकदी धन सारे देश में संचलित होता है।

(ग) **नकदी तिजोरी :** यथार्थ अनुमान और पर्याप्त निर्माण के बाद उनका तत्परता के साथ संचलन भी महत्त्वपूर्ण है। इस संचलन के लिए प्रचालन विभाग ने एक विशेष पद्धति निकाली है जिसे नक़दी तिजोरी की प्रथा कहते हैं। नक़दी तिजोरी से कितनी ही बड़ी मात्रा में नक़दी धन की आवश्यकता सहज ही मे रिज़र्व बैंक द्वारा पूर्ण की जाती है। इसमें समय की भी बचत होती है।

नक़दी तिजोरी प्रत्येक खजाने में रखी होती हैं। नक़दी तिजोरी विभिन्न खज़ानों में भले ही रखी हुई हों पर वह रिज़र्व बैंक का अंग मानी जाती हैं अतएव उसमें से कहीं पर जमा करने या उससे निकालने का असर समस्त सरकारी कोष में जमा करने या उससे निकालने के असर के बराबर होता है। इसे 'स्थानीय विनिमय' (Local Exchange) कहते हैं। इससे धन परिचालन में बड़ी मदद मिलती है। उससे कोष को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मान लीजिए कानपुर स्थित खज़ाने ने नक़दी तिजोरी में दो लाख रुपए डाले हों। दूसरी ओर इलाहाबाद के खज़ाने से सरकारी दायित्व को निभाने के लिए सहसा एक लाख रुपए की आवश्यकता है अब नकदी तिजोरी प्रथा के कारण कानपुर से उठाकर इलाहाबाद वित्त ले जाने की आवश्यकता नहीं। इलाहाबाद के खज़ाने में भी नक़दी तिजोरी होगी। इसी कोष से निकालकर इलाहाबाद के खज़ाने को रुपए दे दिए जाएँगे। इससे राष्ट्रीय नक़दी धन की आवश्यकता में कोई वृद्धि नहीं होती क्योंकि कानपुर के नक़दी तिजोरी में जो दो लाख रुपए जमा हुए थे वे सिर्फ़ कानपुर के लिए ही उपलब्ध राशि नहीं थे वरन सारे देश के लिए थे। यह नक़दी तिजोरी खज़ाने के साधारण व अपने कोष से अलग होती है। दोनों की अपनी अपनी राशियाँ होती हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि नक़दी तिजोरी का सारा संचय इस्तेमाल करने के बावजूद सरकारी दायित्व को निभाने के लिए अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसी हालत में एक नक़दी तिजोरी से दूसरी नक़दी तिजोरी में धन भेजना पड़ता है जिसे स्थानीय अन्तरण कहते हैं। एक विशिष्ट प्रकार के धन परिचालन के लिए सरकार विप्रेषण पत्रों (Remittance Drafts) का भी प्रयोग करती है।...

अध्याय 3

लेखा पद्धति

भारत की वर्तमान लोक लेखा पद्धति का प्रारम्भ लगभग सन् 1858 से माना जाता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य काल में सरकारी लेखे नही रखे जाते थे पर उनका कोई नियमित सिद्धान्त न था। सन् 1865 के करीब सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सरकारी लेखे को पहली बार क्रमबद्ध किया। 1865 से लेखा पद्धति में जो परिवर्तन होते आए हैं वे प्रधानतया लेखा निर्माण की ज़िम्मेदारियों के बारे में हैं। अर्थात् जैसे-जैसे इंग्लैण्ड की सरकार से भारत की सरकार को अधिकार मिलते गए वैसे वैसे लेखा पद्धति में परिवर्तन होता गया। प्रान्तीय स्वराज्य की कल्पना के विकास के साथ साथ लोक लेखा पद्धति में भी विकास हुआ। पहले आय के इतने लेखा शीर्षक ही न थे पर जब प्रान्तीय स्वराज्य के फलस्वरूप प्रान्तों को कुछ खास आय स्रोत दिए गए तो उनके लिए लेखे में स्थान भी बनाना पड़ा। गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया (आडिट एण्ड एकाउन्ट) आर्डर, 1936 में हम लेखा पद्धति का पूर्ण विकसित रूप देखते हैं। अर्थात् लेखा पद्धति में लेखा अधिकारी से क्या अपेक्षित है यह सब दिया हुआ है। स्वतन्त्रता के बाद से कल्याणकारी राज्य की कल्पना के उदय के कारण लेखापद्धति में कुछ परिवर्तन हुए हैं जैसे पूंजी तथा राजस्व का नवीन भेद। लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) के आदेशानुसार समय-समय पर लेखा पद्धति में परिवर्तन किए गए हैं।

1. लोक लेखा पद्धति के कुछ सिद्धांत

भारतीय लोक लेखा पद्धति के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं

(1) लोक लेखा वित्तीय वर्ष वास्तविक आय तथा व्यय का लेखा होता है इसमें उधारी (Credit) राशि को शामिल नहीं किया जाता।

(2) लोक लेखे में आय तथा व्यय को निश्चित विभागीय आधार पर अंकित किया जाता है, उद्देश्य के आधार पर नहीं। उदाहरणार्थ यदि स्कूल बिल्डिंग के लिए निर्माण विभाग ने व्यय किया हो तो उसका अंकन निर्माण विभाग के अन्तर्गत किया जाएगा न कि शिक्षा विभाग के अन्तर्गत।

(3) लोक लेखे में आय तथा व्यय सकल (Gross) दर्ज होते हैं न कि निवल (Net) अर्थात् जितनी आय होती है उतनी रोकड़ आय दिखलाई जाती है और जितना व्यय होता है उतना रोकड़ व्यय दिखलाया जाता है न कि उसका अवशिष्ट। इनमें वसूलियों से प्राप्त आय (Recoveries) अपवाद हैं अन्यथा आय तथा व्यय दोनों के आँकड़े अनावश्यक तौर पर बढ़े-चढ़े होने का भय होता है।

(4) लोक लेखा पद्धति में व्यवहार केवल एक ही बार दर्ज किए जाते हैं।

2. लोक लेखा और व्यापारिक लेखा पद्धति में अन्तर

उपरोक्त सिद्धान्तों को पढ़कर लोक लेखा पद्धति और व्यापारिक लेखा पद्धति के अन्तर का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। प्रायः प्रत्येक विषय में व्यापारिक लेखे के अपने नियम हैं :

(1) लोक लेखा में जहाँ वास्तविक आय अथवा व्यय को दर्ज किया जाता वहाँ व्यापारिक लेखे में उधारी को भी शामिल करते हैं।

(2) लोक लेखे में जहाँ वर्गीकरण सरकारी विभाग के अनुरूप होता है वहाँ व्यापारिक लेखे में उन्हें व्यय के उद्देश्य के अनुसार किया जाता है।

(3) लोक लेखे में सकल राशि (Gross amount) लिखी जाती है व्यापारिक लेखे में निवल राशि (Net amount) लिखते हैं।

(4) लोक लेखा में व्यवहार एक ही बार दर्ज किए जाते हैं व्यापारिक लेखे में वे दो बार दर्ज होते हैं।

इस अन्तर का कारण क्या है ? कुछ हद तक तो सरकारी लेखे व्यापारिक लेखे से स्वभावतः भिन्न हैं और कुछ हद तक भारत की नवीन राजनैतिक पद्धति (अर्थात प्रजातंत्रात्मक प्रणाली) के कारण यह अन्तर आ गया है। कुछ हद तक लेखा विकास का विगत इतिहास इस अन्तर के लिए ज़िम्मेदार है। यदि लेखा पद्धति का विकास दूसरी परिस्थितियों में हुआ होता तो कदाचित उसका रूप दूसरा होता। उदाहरणार्थ फ्रांस में आय तथा व्यय की वास्तविक राशियाँ ही नहीं दर्ज होती वरन् अपेक्षित प्राप्ति को भी शामिल कर लिया जाता है (भले ही उनकी प्राप्ति अगले वित्तीय वर्ष में हो)। भारत में कम्पनी के काल में लेखे व्यापारिक ढंग से ही रखे जाते थे। पर जब 1858 में इंगलैण्ड की सरकार ने भारत के शासन का भार ग्रहण कर लिया तब उसे अपने कार्यो के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रति ज़िम्मेदार होना पड़ा। ज़िम्मेदार होने का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट वर्ष विशेष के लिए भारतीय सरकार को धन उपलब्ध कराती और यदि उसमें से कुछ बच जाता तो वह भारत की संचित राशि में लौट जाता। इस व्यवस्था का एक आनुषंगिक परिणाम यह हुआ कि सरकार केवल उन्हीं व्ययों को दर्ज कर सकती थी जो वास्तव में किए गए थे। विदेशी शासन का दूसरा अर्थ यह था कि सरकार यथासंभव खतरा कम मोल लेती अर्थात् आय के मामलों में उन्हीं प्राप्तियों पर विश्वास किया जाता जो वस्तुतः प्राप्त होतीं थीं। इसी प्रकार व्यय के विषय में जनता को विश्वास दिलाने के लिए यह आवश्यक था कि केवल उसी को भुगतान समझा जाए जो नक़दी में हो। इस प्रकार भारतीय लोक लेखे में नक़द पद्धति का समावेश हुआ।

स्वरूप की दृष्टि से देखा जाए तो व्यवसाय में एक खरीदार और दूसरा बेचने वाला यह संबंध होता है, पर शासन में ऐसी कोई बात नहीं, यहाँ व्यय करना ही है चाहे वह आयप्रद हो या नहीं। इसीलिए भारतीय लोकलेखा पद्धति में व्यवहार एक ही बार दर्ज किए जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद आज भी लोक लेखा पद्धति में वे सिद्धान्त बने हुए हैं क्योंकि उन्हें आवश्यक समझा गया है। भारत ने भी संसदीय राज्य प्रणाली स्वीकार की है अतएव सरकारी विभागों को वर्ष भर के लिए आय या व्यय की अनुमति मिलना आदि लेखा पद्धति के आवश्यक अंग माने गए है। इस पद्धति में कुछ परिवर्तन

की चर्चा भी चल रही है। उदाहरणार्थ व्यवहारों का विभागों के आधार पर वर्गीकरण न करके उद्देश्यों के आधार पर किया जाना चाहिए (जिसे आप अध्याय 10 में पढ़ेंगे)।

3. लोक लेखा पद्धति की रूपरेखा

संक्षेप में भारतीय लोक लेखा पद्धति इस प्रकार है

कोई भी वित्तीय व्यवहार सर्वप्रथम खज़ानों और बैंकों की शाखाओं में अथवा (जैसा कि अध्याय 2 में बतलाया जा चुका है) कुछ विशिष्ट विभागों में ही दर्ज होता है। इन्हें दर्ज करते समय लोक लेखे के साधारण नियम बरते जाते हैं। बाद में उन्हें उपयुक्त लेखा विभाग (अर्थात् यदि रेल के व्यवहार हों तो रेल लेखा विभाग को अथवा सिविल व्यवहार होते हुए भी यदि केन्द्रीय खजाने पर हुआ व्यवहार हो तो महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व को और यदि उत्तर प्रदेश के खज़ाने पर हुआ हो तो महालेखापाल, उत्तर प्रदेश) को भेज दिया जाता है। लेखा विभागों में उनका और भी सूक्ष्म रीति से वर्गीकरण किया जाता है ताकि व्यवहारों को उनके प्रयोजन के अनुसार जाना जा सके। वर्गीकरण के साथ ही साथ उनका समेकन (अर्थात् समय समय से उनका अद्यावधि जोड़ आदि) होता रहता है। आँकड़े, समय समय पर विभाग विशेष या सरकार विशेष को भेज दिए जाते हैं ताकि वे अपनी आय या व्यय की प्रगति जोड़ सकें। वैसे विभागों में भी मोटे तौर पर ये आँकड़े एकत्रित होते रहते हैं, पर उनके आँकड़े हमेशा शुद्ध नहीं होते क्योंकि विभाग की दृष्टि से तो बिल बनाते ही व्यवहार लिख लिया जाता है पर उस बिल के खज़ाने में जमा होने में विलम्ब हो सकता है। दूसरी ओर लेखा विभाग में वे ही आँकड़े स्थान पाते हैं जो वास्तविक वित्तीय व्यवहार के आँकड़े हों। लेखा विभाग द्वारा प्रेषित आँकड़ों से अपने आँकड़ों का मिलान कर लेने पर प्रशासकीय विभागों को वास्तविक आय तथा व्यय का पता चलता है।

जहाँ-जहाँ समेकन के साथ लेखा और लेखा परीक्षा मिले हुए हैं वहाँ व्यवहारों की लेखा परीक्षा भी साथ ही साथ होती है—जैसा कि अध्याय 1 में बतलाया गया था। रेल, रक्षा तथा कुछ ऐसे विभाग जहाँ वेतन तथा लेखाधिकारी नियुक्त किए गए हैं उन्हें छोड़कर शेष विभागों के व्यवहारों के चाहे वे केन्द्रीय सरकार के विभागों के हों अथवा राज्य सरकार के लेखा परीक्षा साथ ही साथ होती है। एक विशेष तरह की लेखा परीक्षा होती है जिसे 'विनियोग लेखा परीक्षा' (Appropriation Audit) कहते हैं। यह भी समेकन के साथ चालू रहती है। एक और प्रक्रिया है जिससे लेखे ठीक तरह से व्यवस्थित किए जाते हैं। इसे 'विनिमय लेखा' (Exchange Account) कहते हैं। यह भी समेकन के साथ साथ चलता रहता है।

वित्तीय वर्ष समाप्त होने पर सारे लेखे को एकत्रित कर लिया जाता है और उसे वित्त लेखे (Finance Account) के रूप में प्रकाशित किया जाता है। राज्य सरकार के सारे लेखे राज्य वित्त लेखे के रूप में प्रकाशित होते हैं और भारत सरकार के सारे लेखे, भारत सरकार के वित्त लेखे के रूप में प्रकाशित होते हैं। मार्च में वित्तीय वर्ष समाप्त होता है। लेखा विभाग की चेष्टा होती है कि वित्तीय वर्ष का लेखा अगले अक्टूबर तक पूर्ण हो सके।

मुख्य लेखे से तात्पर्य वित्तीय लेखे से ही है पर संसदीय कार्य प्रणाली के अनुरूप जहाँ अनुदानों के रूप में विभागों को व्यय करना पड़ता है वहाँ एक और लेखा तैयार

करना पड़ता है जिसे 'विनियोग लेखा' (Appropriation Account) कहते हैं। विनियोग लेखे के अन्तर्गत लेखा परीक्षा में दृष्टिगत त्रुटियाँ बतलाई जाती हैं। डाक व तार विभाग तथा रेल विभाग के लिए विनियोग लेखे अलग से बनाए जाते हैं क्योंकि ये व्यापारिक* विभाग माने जाते हैं।

एक लेखा और तैयार किया जाता है जिसे 'सयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखा (Combined Finance and Revenue Account) कहते हैं। इसमें राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय सरकारों के वित्तीय व्यवहारों की एक स्थान पर चर्चा होती है। संयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखे का उद्देश्य दोनों सरकारों के वित्तीय व्यवहारों का एक तुलनात्मक रूप प्रस्तुत करना है।

व्यापारिक विभाग होने के कारण डाक, तार और रेल विभागों में कुछ 'सहायक लेखे' (Ancilliary Accounts) भी बनाने की पद्धति है। अर्थात् इन वित्त लेखों में डाक, तार तथा रेल विभागों के सामान्य व्यवहार तो शामिल होते हैं पर उनके अतिरिक्त विभागीय उत्पादकता या लाभ हानि जानने के लिए अलग से कुछ लेखे भी दिए जाते हैं। डाक व तार विभाग में इन सहायक लेखों के उदाहरण ये हैं।

(1) संपत्ति का मूल्य दर्शित करने के लिए पूँजी लेखा (Capital Accounts showing the value of assets)

(2) विभाग की आय से प्राप्त सहायता से निर्मित पुनर्नवन आरक्षित निधि (Renewals Reserve Fund) लेखा

(3) उचंत लेखे (Suspense Accounts) जिसमें भंडार लेखे (Stores Accounts) शामिल हैं

(4) डाक, तार, टेलीफ़ोन आदि की शाखाओं के अलग-अलग लेखे।

रेल विभाग में सहायक लेखों के उदाहरण ये है :

(1) पूँजी तथा राजस्व लेखा (Capital and Revenue Account),

(2) रेल विकास निधि का लेखा,

(3) रेल मूल्यह्रास आरक्षित निधि का लेखा,

(4) रेल राजस्व आरक्षित निधि का लेखा।

आइए! अब इस पद्धति का विस्तार से अध्ययन करें।

4. लेखे की प्रारम्भिक अवस्था

अध्याय 2 में बतलाया जा चुका है कि सरकारी आय तथा व्यय के व्यवहार खज़ानों के माध्यम से ही होते हैं। अतएव खज़ाना ही लोक लेखा की संस्थाओं में पहली संस्था है। खज़ाने में लोक लेखें का प्रारम्भ होता है। इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक खज़ाना हर महीने की दस व अन्तिम तारीख को उपयुक्त लेखापाल को भुगतानों की सूची तथा रोकड़ खाता (Cash Account) भेजता है। केन्द्रीय खज़ानों को

*विभाग तथा व्यवसाय ज़िन्हें केन्द्रीय सरकार ने व्यापारिक होना स्वीकार किया है उनकी सची परिशिष्ट 1 में दी हुई है

छोड़कर बाकी खज़ानों के महालेखापाल राज्यानुसार होते हैं । यानी उत्तर प्रदेश स्थित खज़ाने अपने लेखे उत्तर प्रदेश के महालेखापाल को भजेंगे व उड़ीसा स्थित खजाने उड़ीसा के महालेखापाल को । भुगतान सूची तथा रोकड़ खाता रोज की रोकड़ बही के आधार पर बनाए जाते हैं । भुगतान सूची में जैसा कि उसके नाम से ही प्रगट है सारे भुगतान का लेखा होता है । रोकड़ खाते में सारी प्राप्तियों का लेखा होता है । दोनों में व्यवहार के आगे संक्षिप्त वर्गीकरण होता है और जहाँ तक प्राप्तियों का सम्बन्ध है उसके चालान में दर्शित उद्देश्य के अनुसार दिया रहता है । जिन विभागों में वित्त की प्राप्ति तथा भुगतान विभागीय कोषों से होता है वहाँ प्रारम्भिक लेखे की ज़िम्मेदारी उन विभागों पर ही होती है । उदाहरणार्थ जैसा कि अध्याय 2 में बतलाया गया था डाक, तार विभाग, जंगल विभाग, निर्माण विभाग तथा रक्षा विभाग अपने प्रारम्भिक लेखे स्वयं बनाते हैं । कुछ हद तक विदेशी दूतावास भी प्रारम्भिक लेखे बनाते हैं क्योंकि उनके व्यवहार किसी भारतीय खज़ाने पर नहीं होते, जहाँ उनके द्वारा की गई प्राप्तियों या भुगतानों का लेखा रखा जा सके ।

प्रारम्भिक लेखे (Initial Accounts) साधारण हो सकते हैं और सहायक लेखों के साथ भी । सिविल विभागों में प्रारम्भिक लेखा वही है जो खज़ाने प्रतिमास महालेखापालों को भेजते हैं पर निर्माण, जंगल आदि विभागों में कई सहायक लेखे भी होते हैं, जैसे निर्माण विभाग में :—

(1) रोकड़ बही (Cash Book),
(2) उपस्थिति नामावली (Muster Roll),
(3) नापजोख पुस्तिका (Measurement Book),
(4) निर्माण कार्यों का सार पत्र (Works Abstract),
(5) ठेकेदारों का खाता (Contractors' Ledgers),
(6) निर्माण कार्यों के ब्योरे का रजिस्टर (Register of Works), तथा
(7) हस्तांतरण पुस्तिका (Transfer Entry Book) ।

जंगल विभाग में

(1) रोकड़ खाता,
(2) आय तथा व्यय का वर्गीकृत लेखा,
(3) ठेकेदारों व राशि वितरकों का सार पत्र (Abstracts of Contractors and Disbursers) आदि ।

निर्माण विभाग में ये लेखे उनकी सुविधा के लिए कार्यकारी इंजीनियर द्वारा व जंगल विभाग में बन-पाल द्वारा प्रतिमास महालेखापाल को भेजे जाते हैं । चूँकि इन विभागों के लेखे विस्तार से भेजे जाते हैं अतएव खजानों में उनके बारे में केवल मोटे तौर पर उल्लेख होता है ।

जहाँ लेखा विभाग, लेखा परीक्षा विभाग से अलग हैं वहाँ प्रारम्भिक लेखें की व्यवस्था इस प्रकार है ।

रेल विभाग में सारी रेलों के लिए लेखा एक जगह नहीं बनता वरन् प्रत्येक डिवीज़न के अनुसार (जहाँ रेल के लेखाधिकारी हैं) तैयार होता है । दूसरी ओर प्रत्येक स्टेशन पर रेल की आय होती है पर वहाँ भी लेखा निर्माण नहीं होता। स्टेशन मास्टर केवल एक सहायक लेखा रखते है जिसे रोकड़ बही (Cash Book) कहते है। इनका समेकन महीने के अन्त में डिवीज़न के लेखा कार्यालय में किया जाता है।

डाक, तार विभाग में प्रारम्भिक लेखे की शुरूआत मुख्य डाक-घर (Head Post Office) से होती है। वहाँ इस सम्बन्ध में—

(1) खज़ांचियों का रोकड़ खाता,
(2) मुख्य डाक-घर का सारांश (Summary), तथा
(3) मुख्य डाक-घर का रोकड़ खाता

आदि सहायक लेखे रखे जाते है । महीने के अन्त में प्रत्येक मुख्य डाक-घर अपने लेखे उपमहालेखापाल डाक, तार विभाग के कार्यालय को भेज देता हैं ।

रक्षा विभाग में विभिन्न व्यवहारों के लिए प्रारम्भिक लेखे विभिन्न लेखा अधिकारियों के कार्यालय में तैयार किए जाते है। विभिन्न लेखा अधिकारी हैं : स्थल सेना के विभिन्न कमाण्ड के लेखा अधिकारी, वायु सेना के लेखा अधिकारी, रक्षा पेन्शन के लेखा अधिकारी, जलसेना के लेखा अधिकारी, सैन्य फैक्टरियों के लेखा अधिकारी तथा क्षेत्रीय नियन्त्रक, सैन्यलेखा आदि। स्थल सेना के विभिन्न कमानों के लेखा अधिकारी भंडार लेखे तथा अपने क्षेत्र के सिविल कर्मचारियों के वेतन आदि तथा अन्य व्यवहारों का लेखा रखते हैं । वायु सेना के लेखा अधिकारी वायु सेना सम्बन्धी सारे भुगतानों और प्राप्तियों का चाहे वे कहीं हुई हों, लेखा रखते हैं । इसी प्रकार रक्षा विभाग के अन्य लेखा अधिकारी भी अपने अपने क्षेत्र का प्रारंभिक लेखा रखते हैं। रक्षा विभाग के इन लेखों की यह विशेषता है कि वे व्यवहार के कार्यस्थल के आधार पर निर्मित नहीं होते, वरन् विषयों के अनुसार होते हैं । इस प्रकार देश के किसी भाग में कोई सेना अधिकारी पेन्शन क्यों न पाता हो उसका लेखा केवल इलाहाबाद स्थित सैन्य लेखों के नियन्त्रक (पेन्शन) के कार्यालय में ही रखा जाएगा ।

रक्षा विभाग के प्रारम्भिक लेखे के निर्माण में एक और बात उल्लेखनीय है और वह यह कि वहाँ प्रारंभिक लेखा मशीन से रखा जाता है जिसे "हॉलरिथ" कहते हैं। रक्षा पर व्यय इतना अधिक होता है और व्यवहारों की स्थिति भी अविलम्व जाननी होती है कि लेखा निर्माण व सिविल विभागों की तरह हाथ से धीरे-धीरे लेखों के वर्गीकरण का सहारा नही लिया जा सकता । हॉलरिथ प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक लेखा शीर्षक के लिए एक कोड नम्बर होता है, जिससे पहले सारे बिल और रसीदों में छेद कर लिया जाता है तथा बाद में उन्हें मशीन पर रखने से तुरन्त एक किस्म के व्यवहारों का जोड़ मालूम कर लिया जाता है।

5. लेखे का वर्गीकरण

लेखा विभाग में प्रारम्भिक लेखे आने पर पहला काम उनका वर्गीकरण है। लोक लेखे में यह गुण होना आवश्यक है कि उसको पढ़ने वाला राज्य की वित्तीय स्थिति तथा राजकीय कोष की हालत जान सके । यह तभी सम्भव है जब लेखा अच्छी तरह वर्गीकृत हो। वर्गीकरण की पहली अवस्था स्वयं संविधान में निर्धारित की हुई है ।

संविधान में तीन निधियों की कल्पना की गई है :

(1) भारत की समेकित निधि (Consolidated Fund),

(2) भारत का सार्वजनिक खाता (Public Account), और

(3) भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund) ।

समेकित निधि के अन्तर्गत लेखे की दृष्टि से वे सारे व्यवहार आते हैं जो कर आदि प्राप्तियों से व्यय या जमा किए गए हों। बाज़ार ऋण (Market Loan) के व्यवहार अर्थात् उनसे प्राप्ति और उस प्राप्ति के भुगतान भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। "भारत का सार्वजनिक खाता" इस वर्ग के अन्तर्गत प्राविडेण्ड फण्ड और निक्षेप निधियों के व्यवहार आते हैं। जैसा कि आगे स्पष्ट होगा लोक लेखा, समेकित निधि से इसलिए अलग है कि ये वास्तविक शुद्ध सरकारी व्यवहार नहीं। सार्वजनिक पैसा सरकार के पास कुछ परिस्थितियों में रखा जाता है और सरकार इनका उपयोग भी करती है, इसलिए शुद्ध लेखे की दृष्टि से वह एक वर्ग है । इससे हुए व्यवहारों (जमा या खर्च) के लिए संसद् की अनुमति नहीं ली जाती जैसे कि समेकित निधि और आकस्मिकता निधि के लिए ली जाती है। आकस्मिकता निधि के अन्तर्गत वे व्यवहार आते हैं जो आकस्मिकता निधि नियमावली (देखिए परिशिष्ट 2) के अन्तर्गत जमा और खर्च के लिए बतलाए गए हैं।

संविधान के इन तीन वर्गों के अन्तर्गत लेखे का स्थूल वर्गीकरण आता है जिसे अनुभाग (Section) कहते हैं। लेखा-संहिता (Account Code) में जो अनुभाग गिनाए गए हैं वे इस प्रकार हैं :—

भाग 1.—समेकित निधि

I.—राजस्व प्राप्तियाँ (Revenue Receipts)

ए. कर, शुल्क तथा अन्य राजस्व प्राप्तियों के मुख्य शीर्षक

(A. Taxes, Duties and other Principal Heads of Revenue)

बी. ऋण भार

(B. Debt Services)

सी. प्रशासनिक सेवाएं

(C. Administrative Services)

डी. सामाजिक तथा विकास सेवाएं

(D. Social and Developmental Services)

इ. बहूद्देश्यीय नदी घाटी योजनाएँ तथा सिंचाई व विद्युत योजनाएं

(E. Multipurpose River Schemes, Irrigation and Electricity Schemes)

एफ. सार्वजनिक निर्माण (जिसमें सड़कें शामिल हैं) तथा अन्य विविध सार्वजनिक सुधार

[F. Public Works (including Roads) and Schemes of Miscellaneous Public Improvements]

जी. परिवहन तथा संचार (सड़कों के अतिरिक्त)

[G. Transport and Communications (other than Roads)]

एच. सिक्के तथा टकसाल

(H. Currency and Mint)

आई. विविध

(I. Miscellaneous)

जे. अंशदान तथा विविध समंजन

(J. Contributions and Miscellaneous Adjustments)

के. असाधारण मद

(K. Extraordinary Items)

एल. रक्षा सेवाएँ

(L. Defence Services)

एम. रेलें

(M. Railways)

एन. डाक व तार

(N. Posts and Telegraphs)

II.—राजस्व से हुआ व्यय (Expenditure met from Revenue)

ए. कर, शुल्क तथा अन्य प्रमुख राजस्वों की वसूली

(A. Collection of Taxes, Duties and Other Principal Revenues)

बी. ऋण भार

(B. Debt Services)

सी. प्रशासनिक सेवाएँ

(C. Administrative Services)

डी. सामाजिक तथा विकास सेवाएँ

(D. Social and Develo pment Services)

डीडी. राजस्व लेखे के अन्तर्गत सामाजिक तथा विकास सेवाओं पर किए गए पूँजी व्यय का लेखा

(DD. Capital account of Social and Developmental Services within the Revenue Account)

ई. बहूद्देश्यीय नदी योजनाएँ तथा सिंचाई व विद्युत योजनाएँ

(E. Multipurpose River Schemes, Irrigation and Electricity Schemes)

ईई. राजस्व लेखे के अन्तर्गत बहूद्देश्यीय नदी योजनाओं तथा सिंचाई व विद्युत योजनाओं पर किए गए पूँजी व्यय का लेखा

(EE. Capital Account of Multipurpose River Schemes, Irrigation and Electricity Schemes within the Revenue Account)

एफ. सार्वजनिक निर्माण (जिनमें सड़कें शामिल हैं) तथा विविध सार्वजनिक सुधार योजनाएँ

[F. Public Works (including Roads) and Schemes of Miscellaneous Public Improvements]

एफएफ. राजस्व लेखे के अ्रतर्गत बहूद्देश्यीय नदी योजनाओं तथा सिंचाई व विद्युत योजनाओं पर किया गया पूँजी व्यय का लेखा

[FF. Capital Account of Public Works (including Roads) and Schemes of Miscellaneous Public Improvements within the Revenue Account]

जी. परिवहन संचार (सड़कों के अतिरिक्त)

[G. Transport and Communications (other than Roads)]

जीजी. राजस्व लेखे के अन्तर्गत परिवहन व संचार (सड़कों के अतिरिक्त) पर किया गया पूँजी व्यय का लेखा

[GG. Capital Account of Transport and Communication (other than Roads) within the Revenue Account]

एच. सिक्के तथा टकसाल

(H. Currency and Mint)

आई. विविध

(I. Miscellaneous)

आईआई. राजस्व लेखे के अन्तर्गत विविध पूंजी व्यय का लेखा

(II. Miscellaneous Capital Account within the Revenue Account)

जे. अंशदान तथा विविध समंजन

(J. Contributions and Miscellaneous Adjustments)

के. असाधारण मद

(K. Extraordinary Items)

एल. रक्षा सेवाएँ

(L. Defence Services)

एम. रेलें

(M. Railways)

एन. डाक व तार

(N. Posts and Telegraphs)

एनएन. राजस्व लेखे के अन्तर्गत डाक व तार का पूंजी लेखा

(NN. Capital Account of Posts and Telegraphs within the Revenue Account)

III.—राजस्व लेखे के बाहर का पूँजी लेखा (Capital Account outside the Revenue Account)

एए. राजस्व लेखे के बाहर का सुरक्षा मुद्रणालय तथा जमींदारी उन्मूलन के मुआवजे का पूँजी लेखा

(AA. Capital Account of Security Printing Press and Compensation on the Abolition of Zamindari System outside the Revenue Account)

डीडी. राजस्व लेखे के बाहर का सामाजिक तथा विकास सेवाओं का पूँजी लेखा

(DD. Capital Account of Social and Development services outside the Revenue Account)

ईई. राजस्व लेखे के बाहर का बहुद्देश्यीय नदी योजनाओं तथा सिंचाई और विद्युत योजनाओं का पूँजी लेखा

(EE. Capital Account of Multipurpose River Schemes, Irrigation and Electricity Schemes outside the Revenue Account)

एफएफ. राजस्व लेखे के बाहर का सार्वजनिक निर्माण (जिनमें सड़कें शामिल हैं) तथा विविध सार्वजनिक सुधार का पूंजी लेखा

[FF. Capital Account of Public Works (including Roads) and Schemes of Miscellaneous Public Improvements outside the Revenue Account]

जीजी. राजस्व लेखे के बाहर का परिवहन तथा संचार (सड़कों को छोड़कर) का पूंजी लेखा

[GG. Capital Account of Transport and Communication (other than Roads) outside the Revenue Account]

एचएच. राजस्व लेखे के बाहर के सिक्के तथा टकसाल का पूंजी लेखा

(HH. Capital Account of Currency and Mint outside the Revenue Account)

आईआई. राजस्व लेखे के बाहर का विविध पूंजी लेखा

(II. Miscellaneous Capital Account outside the Revenue Account)

एलएल. राजस्व लेखे के बाहर का रक्षा पूंजी लेखा

(LL. Defence Capital Account outside the Revenue Account)

एमएम. राजस्व लेख के बाहर का रेलों का पूंजी लेखा

(MM. Capital Account of Railways outside of the Revenue Account)

एनएन. राजस्व लेखे के बाहर का डाक व तार का पूंजी लेखा

(NN. Capital Account of Posts and Telegraphs outside the Revenue Account)

भाग 2.—आकस्मिकता निधि

भाग 3.—सार्वजनिक खाता

ओ. सरकारी ऋण

(O. Public Debt)

पी. केन्द्रीय सरकार के ऋण व अदायगियाँ

(P. Loans and Advances by the Central Government)

क्यू. राज्य सरकारों के ऋण व अदायगियाँ

(Q. Loans and Advances by the State Governments)

आर. अन्तर राज्यीय निबटारा
(R. Inter-State Settlements)

एस. अनिधिक ऋण
(S. Unfunded Debt)

टी. निक्षेप व अदायगियाँ
(T. Deposits and Advances)

यू. प्रेषण
(U. Remittances)

वी. भारत तथा इंगलैण्ड के बीच रोकड़ की बदली
(V. Transfer of Cash between England and India)

डब्ल्यू. रिज़र्व बैंक के निक्षेप
(W. Reserve Bank Deposits)

एक्स. रोकड़ बाकी
(X. Cash Balances).

अनुभाग बहुत कम बदले* जाते हैं और इनको बदलने के लिए नियंत्रक तथा महा लेखा परीक्षक की अनुमति लेनी पड़ती है। अनुभाग में इस बात पर ध्यान किया गया होगा कि इसमें आकस्मिकता निधि का कोई अनुभाग नहीं है। इसका कारण यह है कि, जैसा परिशिष्ट 2 में आकस्मिकता निधि के नियमों में बतलाया गया है, इसमें कोई व्यवहार स्थाई रूप से नहीं होता—अत: व्यवहार के सूक्ष्म शीर्ष जानने की आवश्यकता ही नहीं होती। एक और बात पर ध्यान गया होगा और वह यह कि इन शीर्षों में कुछ एक अक्षर के हैं और कुछ दो अक्षरों के। दो अक्षर पूंजी व्यवहारों को सूचित करने के लिए, तथा एक अक्षर राजस्व व्यवहारों के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

कौन से व्यवहार पूंजी व्यवहार हैं और कौन से राजस्व यह समझना सामान्य पाठक के लिए जटिल होता है। जहाँ तक प्राप्तियों का सम्बन्ध है—ऋण से प्राप्त सभी प्राप्तियाँ पूंजी प्राप्तियाँ हैं और कर, शुल्क आदि से प्राप्त प्राप्तियाँ राजस्व प्राप्तियाँ हैं। जहाँ तक व्यय का सम्बन्ध है साधारणतया ऐसे व्यय जिससे आवर्ती दायित्व में ह्रास और संपत्ति में वृद्धि हो वह पूंजी† व्यय

*विद्यमान अनुभाग बहुत वर्षों के बाद संविधानिक परिवर्तनों तथा सरकारी विकास व्यय की उत्तरोत्तर वृद्धि को ध्यान में रखते हुए 1961 में जारी किए गए थे।

†इसके अतिरिक्त शिक्षा संस्थाओं, सिंचाई व सड़कों की योजनाओं में जिनके एक भेद के निर्माण पर 20,000 रुपये से अधिक व्यय होता है और सारी योजना एक लाख रुपये से अधिक खर्च की होती है उस अवस्था में वह व्यय पूंजी व्यय माना जाता है।

कहलाता है और अन्य, राजस्व व्यय—अर्थात् राजस्व से किया जाने वाला व्यय*। पर कभी कभी व्यय "पूँजी व्यय" होते हुए भी उसे राजस्व प्राप्तियों से खर्च किया जा सकता है। ऐसे व्ययों को "राजस्व लेखे का पूँजी व्यय" (Capital expenditure from Revenue Account) माना जाता है। जब पूँजी व्यय पूँजी आय से ही खर्च किए जाते है तो इन्हें "राजस्व लखे के बाहर का पूँजी व्यय" (Capital Expenditure outside the Revenue Account) कहते हैं। उपरोक्त अनुभागों में एचएच, जेजे इसी प्रकार के व्यय हैं ।

इन अनुभागों को पुनः विषयों के अनुसार मुख्य व गौण शीर्षो में वर्गीकृत किया जाता है। इस प्रकार सी 'प्रशासनिक सेवाएँ' तथा ए. कर, शुल्क व राजस्व के अन्य मुख्य शीर्षों के अन्तर्गत निम्न लिखित मुख्य वर्गो के उदाहरण में हैं।

अनुभाग	प्रधान शीर्षक
ए—कर, शुल्क राजस्व के अन्य मुख्य शीर्षक	I सीमा शुल्क
	II केन्द्रीय उत्पादन कर
	III निगम कर
	IV आय कर (निगम कर के अतिरिक्त)
	V सम्पत्ति शुल्क (Estate Duty) इत्यादि ।
सी—प्रशासनिक सेवाएँ . .	XVII न्याय शासन
	XVIII जेल
	XIX पुलिस
	XX आभरण तथा निपटान
	XXI विविध विभाग

गौण शीर्षो के उदाहरण हैं :—

अनुभाग	प्रधान शीर्षक	गौण शीर्षक
सी—प्रशासनिक सेवाएँ .	XXIII जेल	(1) जेल
		(2) जेलों की बनी वस्तुएँ
		(3) अधिक पेशगी रकमों की वसूली
		(4) सेवाओं के निमित्त वसूली, इत्यादि ।

*इस सम्बन्ध में विभिन्न विभागों के अपने अपने नियम हैं पर साधारणतया यदि सुधार के लिए व्यय किया जा रहा हो तो वह राजस्व पर भारित किया जाता है। इसी प्रकार साधारण तथा पुनर्नवन का व्यय भी राजस्व पर ही भारित होता है। दूसरी ओर प्रारम्भ का पूंजी व्यय पूंजी से किया जाता है। प्रारम्भ के पूंजी व्यय के उदाहरण हैं—ज़मीन की कीमत, योजना के बनाने में नियुक्त कर्मचारियों पर किया गया व्यय आदि ।

इन मुख्य तथा गौण शीर्षों में बार बार हेर-फेर नहीं होता और वे नियंत्रक तथा महालेखापाल द्वारा किए जाते हैं। प्रधान व गौण शीर्षकों की निर्धारित सूची समय समय पर "केन्द्रीय तथा राज्यों की प्राप्तियों तथा राशि-वितरण के मुख्य तथा गौण लेखा शीर्षों की सूची" (List of Major and Minor Heads of Accounts of Central and States Receipts and Disbursements) के रूप में प्रकाशित की जाती है।

6. लेखे का समेकीकरण

खजानों और विभागीय अधिकारियों से प्राप्त प्रारंभिक लेखे वर्गीकरण के बाद एकत्रित किए जाते हैं। वर्गीकरण के अनुसार लेखा विभाग में लेखापाल प्रत्येक व्यवहार को प्रथम "वर्गीकृत विभागीय सारपत्र" (Departmental classified Abstract) में दर्ज करते हैं। सबसे पहले भुगतान सूची आदि से ऋण, निक्षेप आदि को दर्ज कर लिया जाता है। बाद में राजस्व और पूँजी के आय और व्यय व्यवहारों को विस्तार से दर्ज किया जाता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ लेखा शीर्षों के अनुसार व्यवहारों की प्रगति सरकार को जाननी आवश्यक है वहाँ विभागों के अनुसार व्यवहारों की गति जाननी भी आवश्यक है। इससे विभागों की आय या व्यय में वृद्धि हो रही है या ह्रास इसका पता चलता है। इसका महत्तव अध्याय 7 में वित्त नियंत्रण के अन्तर्गत और भी स्पष्ट किया जाएगा। तात्पर्य यह कि लेखा निर्माण की तृतीय अवस्था में लेखे को इस प्रकार दिखलाना पड़ता है कि उक्त दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हो। लेखा विभागों के वर्गीकृत विभागीय सार पत्र इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। एक ओर तो उनमें मुख्य और गौण शीर्षक आदि होते हैं, दूसरी ओर अनुदान और उस अनुदान विशेष से सम्बन्धित विभाग विशेष का नाम होता है।

प्रत्येक वर्गीकृत विभागीय सार पत्र के सात भाग होते हैं :

आय के अन्तर्गत . .	1. राजस्व का विस्तृत वर्णन
	2. ऋण निक्षेप तथा प्रेषण राशियों का विस्तृत वर्णन
	3. भुगतान प्रमाणकों से प्रकट वसूलियों का वर्णन
व्यय के अन्तर्गत . .	4. व्यय का विस्तृत वर्णन
	5. विभागीय सार पत्र से अनुगृहीत ऋण निक्षेप तथा प्रेषण व्यय की राशियाँ
	6 व 7. प्रूफ़ शीट्स।

इन विभागीय वर्गीकृत सार पत्रों के बारे में यह स्मरण रखना चाहिए कि वे लेखा क्षेत्र के आधार पर बनते हैं अर्थात् उनमें केवल उसी आय या व्यय का लेखन होता है जो उस लेखा क्षेत्र के अधीन कार्यालयों के व्यवहार हों। उदाहरणार्थ महा-लेखापाल, केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय में केवल केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों के व्यवहारों का विस्तारपूर्वक उल्लेख आएगा न कि राज्य के किसी विभाग का। जहाँ तक उसी क्षेत्र के व्यवहारों से तात्पर्य है इन सारपत्रों

का सबसे बड़ा काम यह है कि ये सारे व्यवहारों को एकत्रित करते हैं। इसका महत्त्व और उपादेयता केन्द्रीय राजस्व महालेखापाल के कार्यालय में भले ही ख्याल में न आती हो पर राज्य लेखापाल के कार्यालय में अवश्य प्रकट होती है जहाँ राज्य के दर्जनों खज़ाने अपना-अपना अलग प्रारम्भिक लेखा भेजते हैं। यदि उन्हें इस प्रकार सार पत्र में न उतारा जाए तो राज्य भर के व्यवहारों की क्या स्थिति है इसका एक जगह पता ही न चले।

"विभागीय वर्गीकृत सार पत्रों" के बनने के बाद उनके आधार पर एक "समेकित वर्गीकृत सारपत्र" बनाया जाता है। इस प्रकार "समेकित वर्गीकृत सार पत्रों" से आय तथा व्यय की प्रत्येक लेखा शीर्षक के अंतर्गत वर्ष भर में कैसी प्रगति होती रही है इसका अन्दाज़ लगता रहता है। "समेकित वर्गीकृत सार पत्र" में "वर्गीकृत सारपत्र" के सारे लेखा शीर्षक रहते हैं। इसके सिवा इसमें अलग से अनुदानों के अनुसार राशियों का जोड़ भी होता है। यहीं आँकड़े बाद में विनि-योग लेखे के निर्माण में काम आते हैं। जिस प्रकार अन्य लेखा शीर्षकों के लिए "समेकित वर्गीकृत सार पत्र" बनाया जाता है उसी प्रकार ऋण प्रेषण तथा निक्षेप व्यवहारों के लिए भी एक समेकित सारपत्र बनाया जाता है।

समेकित सारपत्र से महीने के अंत में राशियाँ उपयुक्त रूप में "ब्योरा पुस्तक" (Details Book) में उतारी जाती हैं। "ब्योरा पुस्तक" का उद्देश्य एक लेखा क्षेत्र के अन्तर्गत किए गए विभिन्न वित्तीय व्यवहारों को संकलित करना है। यदि ब्योरा पुस्तक न हो तो विभागों के अनुसार या खजानों के अनुसार दर्ज किए गए लेखों से सारे लेखा क्षेत्र की समग्र स्थिति क्या है इसका अन्दाज़ नहीं लग सकता। ब्योरा पुस्तक में गौण शीर्षों के अनुसार संकलन होता है अर्थात् व्यवहार यथासम्भव विस्तार से अंकित किए जाते हैं। पुस्तक के तीन भाग होते हैं। पहला भारत की समेकित निधि के व्यवहारों के लिए, दूसरा आकस्मिकता निधि के लिए और तीसरा लोक लेखा के लिए।

इसी अवस्था में एक और विवरण रखा जाता है जिसे "राशि-वितरण लेखों का विवरण" (Statement of Disbursement Account) कहते हैं। इस विवरण से यह पता चलता है कि सभी वित्तीय व्यवहार लेखांकित हो गए हैं या नहीं। इसमें एक ओर तो खज़ानों से प्राप्त आँकड़े दर्ज किए जाते हैं व दूसरी ओर विभागीय वर्गीकृत लेखों से प्राप्त आँकडे। सिद्धान्ततः यदि सभी आँकड़े लेखां-कित किए गए हैं तो इस विवरण पत्र में दोनों ओर के आँकड़ों का योग बराबर होगा।

लेखा समेकीकरण की श्रृंखला में अन्तिम अवस्था "प्रधान शीर्षकों के योगों का सार पत्र" (Abstract of total Major Heads) बनाना है। इस सार पत्र में प्रधान लेखा शीर्षों के आंकड़े दिए रहते हैं। यह पूर्वोक्त "राशि-वितरण लेखों का विवरण" के आधार पर बनाया जाता है।

लेखा विभागों में ब्योरा पुस्तक, समेकित सार पत्र, आदि को पूरा करने की तारीखें नियत होती हैं और इन तारीखों के बीत जाने के बाद साधारणतया लेखे में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

सरकारी लेखा पूरा होने के लिए अब एक और प्रक्रिया रह जाती है जिसे दैनिकी (Journal) तथा खाता (Ledger) कहते हैं। लेकिन वास्तव में यह लेखा निर्माण का भाग नहीं। वह लेखे की शुद्धता की जाँच का एक तरीका है। उसके बारे में इसी अध्याय में आगे बतलाया जाएगा।

7. विनिमय लेखा

उपरोक्त लेखा निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में एक प्रक्रिया जिसके बिना शुद्ध आँकड़े जानना असम्भव है—अछूती रह गयी थी। इसे "विनिमय लेखा" कहते हैं। यह सदैव सभव नहीं कि मद्रास सरकार की प्राप्ति केवल मद्रास राज्य के खज़ानों में ही हो। मान लीजिए, मद्रास सरकार को होने वाली यह आय दिल्ली के खज़ाने में जमा कराई गई है, लेकिन इसका मद्रास के लेखे में अंकित होना आवश्यक है। दिल्ली का खजाना पूर्वोक्त व्यवस्था के अनुसार अपना ब्योरा केन्द्रीय राजस्व के महालेखापाल (Accountant-General Central Revenues) को ही भेजेगा। महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व का यह कर्तव्य है कि वह उस प्राप्ति की सूचना मद्रास के महालेखापाल को दे। इसी व्यवस्था को लेखा विनिमय कहत हैं। ऊपर केवल एक उदाहरण दिया गया है। इस तरह के विनिमय के लिए कितनी ही परिस्थितियाँ हो सकती हैं। एक लेखा क्षेत्र से दूसरे लेखा क्षेत्र में एक विभाग से दूसरे विभाग में लेखे भेजे जा सकत है। रिज़र्व बैंक से अपना अलग खाता रखने वाले दो विभागों के बीच भी विनिमय हो सकता है। जहाँ चेक द्वारा भुगतान करने की प्रथा प्रयोग में है वहाँ लेखा विनियम की आवश्यकता नहीं पड़ती। अर्थात् यदि केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकार को कुछ दिया जाना हो तो जहाँ तक इस विभाग विशेष के व्यवहार का प्रश्न है भुगतान चेक द्वारा कर दिया जाएगा।

विनिमय लेखा के मुख्य दो प्रकार है :

(1) विनिमय लेखा
(2) समायोजन लेखा (Settlement Account)।

विनिमय लेखा वह लेखा है जिसके माध्यम से (क) रक्षा, डाक व तार विभागों के लेखे में होने वाले व्यवहार (रेल को छोड़कर) अन्य लेखों में समायोजित किए जाते हों और (ख) भारत सरकार के वित्तीय व्यवहार जो एक सिविल महालेखापाल के लेखे से (रेल को छोड़कर) अन्य महालेखापाल के लेखे में समायोजित किए जाते हों। इन विनिमय लेखों के नाम स्थाई रूप से निर्धारित होते हैं और वह चाहे किसी ओर से प्रारंभ क्यों न हो उनकी संज्ञा में परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार दो सिविल महालेखापालों, उदाहरणार्थ बंबई और केन्द्रीय राजस्व के महालेखापाल के बीच जो विनिमय होगा वह केवल "केन्द्रीय राजस्व और बंबई के बीच विनिमय लेखा" (Exchange Account between Central Revenue and Bombay) नाम से ज्ञात होगा न कि किसी अन्य नाम से चाहे फिर ये भुगतान बंबई के लेखापाल ने प्रारंभ किए हों या केन्द्रीय राजस्व द्वारा हुए हों।

उपरोक्त (क) के अन्तर्गत निम्नलिखित विनिमय लेखे आते हैं :

(1) सिविल लेखा विभागों के बीच का विनिमय लेखा (Exchange Account between Civil and Civil)
(2) डाक और तार लेखा विभाग व सिविल लेखा विभाग के बीच का विनिमय लेखा (Exchange Account between Civil and Posts and Telegraphs)
(3) सिविल लेखा विभाग और रक्षा लेखा विभाग के बीच का विनिमय लेखा (Exchange Account between Civil and Defence Services)

(4) रक्षा लेखा विभागों के बीच परस्पर विनिमय लेखा (Exchange Account between Defence Account Offices) तथा

(5) डाक और तार विभाग और रक्षा लेखा विभागों के बीच का विनिमय लेखा (Exchange Account between Posts and Telegraphs and Defence Services)।

इन विनिमयों की विधि इस प्रकार है। खज़ानों से प्रारम्भिक लेखा आने पर जब किसी महालेखापाल के कार्यालय में यह पता चलता है कि किसी व्यवहार (transaction) की वास्तविक ज़िम्मेदारी किसी अन्य महालेखापाल पर है तो वह पहले उस व्यवहार के स्वरूप के अनुसार अपने रजिस्टरों में जमा (Credit) या बाक़ी (Debit) उस अन्य महालेखापाल के नाम दिखाता है। बाद में विनिमय लेखा के द्वारा उपयुक्त महालेखापाल को इसकी सूचना दी जाती है। जब उपयुक्त महालेखापाल से इस जमा या बाक़ी की स्वीकृति की सूचना मिल जाती है तब प्रारम्भ करने वाला लेखापाल उसे उचित रूप से अपने लेखे में शामिल कर लेता है। विनिमय जितनी ही तत्परता से किया जाएगा उतनी ही वर्ष के अन्त में किसी एक लेखा क्षत्र के अन्तर्गत व्यवहारों की वास्तविक स्थिति जानने में आसानी होगी। लेखा पद्धति के शब्दों मे इस हेरफर की चार अवस्थाएं हैं :

(1) महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व के नाम महालेखापाल बंबई का प्रेषण (Remittance to Central Revenue from Bombay)

(2) महालेखापाल बंबई के नाम महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व का प्रेषण (Remittance to Bombay from Central Revenue)

(3) महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व द्वारा समंजनीय मदें (Items Adjustable by Central Revenue) तथा

(4) महालेखापाल बंबई द्वारा संमजनीय मदें (Items Adjustable by Bombay)।

यह केन्द्रीय राजस्व तथा बंबई के बीच लेखा विनिमय का उदाहरण था। इसी प्रकार अन्य विनिमयों में उचित अन्तर से ऐसी ही अवस्थाएँ आ सकती हैं।

समायोजन लेखा वह लेखा है जो राज्य महालेखापालों द्वारा परस्पर लेखा समंजन (Adjustment of Account) के लिए व्यवहृत होता है। रेल लेखा विभाग और अन्य लेखा विभागों के बीच के लेखा विनिमय को भी समायोजन लेखा कहते हैं। इसका नाम लेखा समायोजन इसलिए पड़ा है कि रिज़र्व बैंक इस समंजन के लिए ज़िम्मेदार होता है। भारत सरकार की आरक्षित निधि के समान ही राज्य सरकारों की अपनी निधियाँ रिज़र्व बैंक के पास होती हैं। अतएव एक राज्य सरकार और दूसरे राज्य सरकार के व्यवहारों को समंजित करने का काम रिज़र्व बैंक पर ही छोड़ दिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक छोटे समंजन के लिए रिज़र्व बैंक को सूचना भेजी जाए। सूचना प्रति मास भेजी जाती है। रेलवे के साथ भी समंजन का यही तरीका है क्योंकि यद्यपि रेल विभाग की अपनी अलग संचित निधि नहीं, फिर भी उनका प्रपत्र लेखा (Proforma Account) रिज़र्व बैंक द्वारा रखा जाता है।

समायोजन लेखे की प्रक्रिया क्या है? मान लीजिए कि उत्तर प्रदेश के लेखापाल के रजिस्टर में कोई ऐसा व्यवहार दर्ज हुआ है जिसका वास्तविक दायित्व बिहार के महालेखापाल को लेना चाहिए। यह मालूम होते ही उत्तर प्रदेश का महालेखापाल इस बात की सूचना बिहार के महालेखापाल को देगा। सूचना में बतलाए गए दायित्व को जब बिहार के महालेखापाल द्वारा स्वीकृत कर लिया जाएगा तब उत्तर प्रदेश का महालेखापाल उसे बिहार लेखापाल के नाम लिख देगा। प्रति सप्ताह ऐसे समायोजन "रिज़र्व बैंक के साथ संमजन का खाता" (Register of Adjustment with the Reserve Bank) में एकत्रित कर बैंक के केन्द्रीय लेखा अनुभाग (Central Account Section) को सूचित कर दिया जाता है। इन शुद्ध राशियों के आधार पर बैंक प्रत्येक राज्य सरकार के निधि अवशेषों में फिर ह्रास या वृद्धि करता है। बैंक इसकी सूचना उपयुक्त महालेखापालों को देता है जिसके साथ समायोजन की क्रिया का अन्त माना जाता है। जब तक वह सूचना बैंक से न मिल जाए, महालेखापाल के लेखों में व्यवहार समंजन की अवस्था लेखे में अथवा "अन्तर राज्य उचन्त खाते" (Inter-State Suspense Account) लेखा शीर्षों में दिखलाए जाते हैं।

भारत सरकार और राज्य सरकार के लेखापालों के बीच लेखा समायोजन का उपयोग निम्न प्रकार के व्यवहारों के लिए हो सकता है:

(1) संघ वित्त व्यवस्था में राज्य सरकारों को दिए गए अंशदान आदि के लिए (राज्यों से केन्द्र सरकार को और केन्द्र सरकार से राज्य सरकारों को)।

(2) संविधान के अन्तर्गत कुछ पेन्शनों के लिए जो पहले भारत की समेकित निधि से दी जाती हैं पर बाद में जिनकी राशि राज्य सरकारों से वसूल की जाती है।

(3) केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच ऋण व अग्रिम राशियों के लिए।

विदेशी सरकारों से लेन देन में भी कहीं-कहीं इस प्रकार के समायोजन की प्रथा है जहाँ इस व्यवस्था को लागू करने के लिए उन विदेशी सरकारों से भारत सरकार का विशिष्ट समझौता हो गया है। साधारणतया विदेशी सरकारों के साथ होने वाले लेन-देन रोकड़ में ही होते हैं।

8. विनियोग लेखा

राजकीय लेखे की सीढ़ी में समेकन के बाद हम मासिक लेखे और बारह महीने के आँकड़े एकत्रित कर वार्षिक लेखे की अवस्था पर आते हैं। पर वास्तव में वार्षिक लेखा संकलित होने के पूर्व एक विशेष लेखा और बनाना पड़ता है जिसके बगैर संसदीय वित्त नियंत्रण का उद्देश्य पूरा नहीं होता। वार्षिक लेखा अर्थात् वित्त लेखा जिसमें सारे व्यवहार आय, व्यय, ऋण तथा प्रेषण भी शामिल हैं वर्ष बीत जाने के कई महीनों बाद ही संकलित हो सकता है क्योंकि ऋण आदि की राशियों का अन्दाज़ कितने ही महीनों बाद लग पाता है, पर विनियोग लेखा वर्ष बीतते ही यथाशीघ्र संकलित करना पड़ता है क्योंकि इसके साथ लेखा परीक्षा के महत्त्वपूर्ण फल प्रस्तुत किए जाते हैं। विनियोग लेखा "एकाउन्ट कोड" के शब्दों में वित्त लेखे का एक पूरक लेखा है।

भारत सरकार के व्यवहारों के संबंध में निम्नलिखित विनियोग लेखे बनाए जाते हैं :

(1) सिविल विभागों का विनियोग लेखा* (Appropriation Accounts, Civil)

(2) रक्षा विभाग का विनियोग लेखा (Appropriation Accounts, Defence)

(3) रेल विभाग का विनियोग लेखा (Appropriation Accounts, Railways) तथा

(4) डाक और तार विभाग का विनियोग लेखा (Appropriation Accounts, P. and T.)।

रेल विभाग के लिए अलग विनियोग लेखा होने का कारण यह है कि उस विभाग का अपना अलग वित्त है। उसमें अलग से आयव्ययक पारित होता है और संसद् द्वारा अलग से विनियोग विधेयक (Appropriation Bill) पास किया जाता है। डाक और तार तथा रक्षा विभाग के व्यवहारों के लिए अलग से विनियोग लेखा होने का यह कारण है कि इन्हें अलग से प्रस्तुत करना लोक लेखा विभाग की विद्यमान रचना में अधिक सुविधाजनक होता है क्योंकि एक तो इन दोनों विभागों के अलग से लेखा परीक्षक हैं (लेखा परीक्षा के फलों का विनियोग लेखे से अत्यधिक संबंध है) और दूसरे यदि सारे रेल-अतिरिक्त व्ययों को एक साथ विनियोग लेखे के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाए तो वह बहुत बेढगा हो जाएगा और संसदीय लोक लेखा समिति सुविधा से उसकी परीक्षा भी न कर सकेगी। डाक और तार विभाग के विषय में, जैसा कि आगे बतलाया जाएगा, कई ऐसे विवरण (Statements) भी हैं जो डाक तार विभाग के व्यवहारों को समझने के लिए आवश्यक हैं। पर सिविल विनियोग लेखे में उस तरह के विवरण देने की प्रथा नहीं है।

रक्षा के व्ययों के लिए अलग से विनियोग लेखा होने का गौण कारण यह है कि युद्ध काल में इस लेखे की संसद की सार्वजनिक लेखा समिति द्वारा परीक्षा नहीं होती थी। उसके लिए अलग से एक "सैन्य लेखा समिति" (Military Accounts Committee) हुआ करती थी जिसके लिए यह आवश्यक था कि विनियोग लेखा उस विभाग के लिए अलग से बना हो। यह व्यवस्था भविष्य में पुनः वैसी परिस्थिति का सामना करने के लिए चलाई जा रही है।

स्वरूप की दृष्टि से सभी विनियोग लेखों का चाहे वे रेल विभाग के हों अथवा डाक-तार विभाग और रक्षा विभाग के, एक ही स्वरूप होता है। सर्वप्रथम एक सारांश जो प्रपत्र में होता है दिया जा रहा है।

---

*1957 में सिविल विभागों के विनियोग लेखे को मंत्रालयों के अनुसार अलग-अलग प्रस्तुत किया जाना तय किया गया था। तदनुसार 1953-54 से 1959-60 वर्षों तक के लेखे अलग-अलग पेश किए गए थे। पर 1960-61 से केन्द्रीय सरकार के सिविल विभागों के लिए पुनः एक विनियोग लेखा बनाया जाता है।

प्रपत्र 1

विनियोग लेखे का सारांश

अनुदान या विनियोग का नाम तथा संख्या	मतापेक्ष या भारित (Votable or charged)	मूल अनुदान या विनियोग	अंतिम अनुदान या विनियोग	वास्तविक व्यय	मूल अनुदान या विनियोग की तुलना में व्यय अधिक + कम —	अंतिम अनुदान या विनियोग की तुलना में व्यय अधिक + कम —
1	2	3	4	5	6	7

सारांश के नीचे एक प्रपत्र दिया जाता है जिसमें नियंत्रक तथा महालेखापाल यह प्रमाणित करता है कि जहाँ तक उसकी जानकारी है लेखा शुद्ध है। वह यह भी प्रमाणित करता है कि लेखा संविधान के उपयुक्त अनुच्छेद में विहित विधि के अनुसार तथा उसके आदेश से बनाया गया है और सक्षम अधिकारियों ने उस संबंध में सारी जानकारी प्राप्त कर ली है।

बाद में प्रत्येक अनुदान के अनुसार वास्तविक व्यय का एक विस्तृत ब्योरा दिया जाता है। ब्योरे में नीचे लिखी बातें दी जाती हैं : अन्तिम अनुदान (Final grant) वास्तविक व्यय (Actual Expenditure) तथा सीमोपरि-व्यय (Excess Expenditure) अथवा बचत (Savings) की मात्रा।

प्रपत्र 2

अनुदानों के अनुसार वास्तविक व्यय का विनियोग लेखे में किया विस्तृत ब्योरा

अनुदान संख्या

प्रधान तथा गौण लेखा शीर्षक	अन्तिम अनुदान	वास्तविक व्यय	व्यय की बढ़ती या घटती
1	2	3	4

विस्तृत ब्योरे में पहले प्रधान तथा गौण लेखा शीर्षो व उसके अन्तर्गत उपलेखा शीर्षों के अन्तर्गत आँकड़े जो माँग पुस्तकों (Demand Books) में दिए होते हैं दिए जाने की प्रथा थी। पर 1961* से केवल मुख्य शीर्षों के अन्तर्गत ही आँकड़े दिए जाते हैं यद्यपि लेखा परीक्षा विभाग में विस्तार से प्रत्येक शीर्ष के अन्तर्गत आँकड़े रखे जाते हैं। विनियोग लेखे (सिविल) में प्रत्येक मंत्रालय के नाम एक एक अध्याय होता है (अथवा रेलवे में, रेलों के नाम) ताकि आँकड़े पढ़ते ही उसके लिए कौन कहाँ तक जिम्मेदार है इसका अंदाज़ लग सके। आँकड़े जहाँ तक हो सके बिल्कुल अन्तिम होते हैं क्योंकि यह आवश्यक है कि विनियोग लेखे और संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखों के आँकड़े समान हों।

---

*यह 1961 में विनियोग लेखे को सुबोध बनाने की दृष्टि से किया गया था। इस दिशा में नियंत्रक तथा महालेखापाल का विचार और प्रयत्न करने का है।

विनियोग लेखे की निर्माण प्रणाली इस प्रकार है। लेखा विभागों में एक विनियोग लेखा परीक्षा प्रभाग होता है जो अनुदानों के सामने प्रति मास वास्तविक आय के आँकड़े दर्ज करता रहता है। जिस रजिस्टर पर यह किया जाता है उसे 'विनियोग रजिस्टर' (Appropriation Register) कहते हैं। इसमें एक ओर तो पूर्वोल्लिखित अनुदानों के आँकड़े और दूसरी ओर हर एक महीने के वास्तविक व्यय के स्तम्भ होते हैं जिनमें आँकड़े भरे जाते हैं। अनुदानों से वास्तविक व्यय की तुलना करने से अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि वहाँ उससे अन्तिम अनुदान की तुलना की जाए। इस प्रभाग की यह एक बड़ी जिम्मेदारी है। यहाँ के लेखापालों को प्रत्येक पुर्नविनियोजन का उचित परिणाम ख्याल में रखना पड़ता है और समय-समय पर उसके अनुसार वे अन्तिम अनुदान की राशि भी ठीक करते रहते हैं। वर्ष के अन्त में इन सब आँकड़ों को संकलित कर विनियोग लेखा तैयार कर लिया जाता है। टिप्पणियाँ आदि भी इन्ही प्रभागों में बनाई जाती है। विनियोग लेखे से विभागीय वित्त नियंत्रण में बड़ी मदद मिलती है। महालेखापाल के विनियोग लेखा परीक्षा प्रभाग का यह कर्तव्य है कि यदि वास्तविक व्यय समय के अनुपात में अत्यधिक या अत्यल्प हुआ हो तो संबंधित विभाग को इसकी सूचना दे।

9. वित्त लेखा

जिस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 149 तथा उपर्युक्त लेखा और लेखा परीक्षा आदेश के अनुसार विनियोग लेखा बनाना नियंत्रक तथा महालेखापाल का कर्तव्य है उसी प्रकार राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार के आय, व्यय, ऋण आदि व्यवहारों का एक वित्त लेखा बनाना भी उसका कर्तव्य है।

इस प्रकार वित्त लेखा वह लेखा है जो लेखा परीक्षक द्वारा किसी सरकार की समस्त आय तथा व्यय को उपयुक्त शीर्षो के अंतर्गत वर्गीकृत करते हुए सरकार के समक्ष प्रस्तत किया जाए। चूँकि भारत में केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों के लेखे अलग अलग होते हैं इसलिए नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक राष्ट्रपति व राज्यपालों को उनकी सरकारों के लेखे अलग अलग प्रस्तुत करता है। विनियोग लेखे की पद्धति के विपरीत वित्त लेखे डाक और तार विभाग तथा रक्षा और रेल विभाग के लिए अलग से नहीं बनाए जाते, वे केन्द्रीय सरकार के समस्त व्यवहारों के लिए एक ही होते हैं। इसका एक कारण यह है कि जहाँ विनियोग लेखे के साथ का लेखा परीक्षण प्रतिवेदन अत्यधिक विस्तृत होता है (जो संसदीय नियंत्रण की दृष्टि से आवश्यक है) वहाँ वित्त लेखे के साथ का लेखा परीक्षा प्रतिवेदन इतना विस्तृत नहीं होता। बारीकी के लिए विनियोग लेखा भी अत्यन्त विस्तार से देना पड़ता है और इसलिए डाक तार आदि के विनियोग लेखे अलग अलग बनाने में आसानी होती है। दूसरा कारण यह भी है कि वित्त लेखे में कुछ ऐसी मदें होती हैं जिन्हें विभागों के अनुसार अलग अलग करने से उनके परिणामों का उचित आभास नहीं होता। उदाहरणार्थ, ऋण तथा अग्रिम राशियों का वर्णन। इसी कारण से लेखा ही नहीं, इन व्यवहारों के संचालन की ज़िम्मेदारी भी वित्त मंत्रालय के एक विभाग पर (सब के मार्फ़त) होती है।

स्वरूप की दृष्टि से वित्त लेखे के दो भाग होते हैं :—(क) सामान्य वित्त लेखा तथा (ख) ऋण, निक्षेप तथा प्रेषण (Debt, Deposit and Remittances)

के लेखे। 'सामान्य वित्त लेखा' के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय आते हैं :

(क) प्रमुख आय और व्यय के शीर्षों के अनुसार कुल आय तथा व्यय का प्रतिशत विवरण,

(ख) प्राप्ति तथा भुगतानों का संक्षिप्त विवरण,

(ग) मुख्य शीर्षों के अनुसार आय तथा व्यय का सारांश,

(घ) व्यय का मतापेक्षी तथा भारित स्वरूप में वितरण,

(ङ) गौण शीर्षों के अनुसार आय का विस्तृत लेखा,

(च) गौण शीर्षों के अनुसार व्यय का विस्तृत लेखा, तथा

(छ) वर्ष भर के अन्दर और वर्ष की समाप्ति तक राजस्व के बाहर की पूँजी के व्यय का विवरण।

ऋण, निक्षेप तथा प्रेषण लेखे के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय होते हैं :

(क) प्रमुख शीर्षों के अनुसार प्राप्तियों, भुगतानों, ऋण, निक्षेप, तथा प्रेषण व्यवहारों का संक्षेप में वर्णन,

(ख) वर्ष में राजस्व लेखे के बाहर की पूँजी और अन्य व्ययों का वर्णन जिसमें व्ययों के लिए धन कहाँ से प्राप्त हुआ है इसका उल्लेख,

(ग) वर्ष के ऋण (जिसके अंतर्गत प्रॉविडेण्ट फण्ड जैसे, अन्य ब्याज की देनदारियाँ भी शामिल है) का ब्योरा जिसमें वर्ष के प्रारम्भ व अन्त में कितना ऋण है, और कितने ऋण का भुगतान हुआ है, तथा कितना ऋण और लिया गया है आदि का विवरण,

(घ) वर्ष के ऋण (दूसरों को दिए गए) तथा अग्रिम राशियों का ब्योरा जिसमें उपरोक्त प्रकार की राशियाँ कितनी दी गई हैं, कितनी वापस मिली हैं, कितना ब्याज प्राप्त हुआ है, वर्ष के प्रारम्भ में कितना अवशिष्ट था व अन्त में कितना बचा है इसका ब्योरा,

(ङ) राजस्व व अन्य स्रोतों से विभिन्न निक्षेप राशियों में कितनी राशियाँ विनियोजित की गई है इसका विवरण।

लेखा परीक्षा तथा लेखा आदेश, 1936 के परिणाम स्वरूप भारत सरकार के आय-व्यय आदि का पहला वित्त लेखा सन् 1936-37 में प्रकाशित हुआ था। 1947 में देश विभाजन के कारण वित्त लेखा बनाने में काफ़ी बाधा हुई क्योंकि तब तक ऋण, निक्षेप आदि की अवशेप राशियाँ निर्धारित नहीं हो सकती थीं। वित्त लेखा नहीं बनाया जा सकता था और ये राशियाँ इसलिए निर्धारित नहीं थीं क्योंकि भारत और पाकिस्तान के बीच वित्तीय दायित्व के बारे में समझौता नही हुआ था। 1947-48 के लेखे 1950-51 तक तैयार न हो सके अतएव उस वर्ष संसदीय लोक लेखा समिति ने यह सिफ़ारिश की कि महा-लेखा परीक्षक की सलाह से वित्त मंत्रालय एक विवरण तैयार करे जिसमें व्यय विभागों की आय के स्रोत व उनसे वास्तविक प्राप्तियाँ तथा सरकार के ऋण व्यवहार दिए गए हों। वित्त मंत्रालय ने यह स्वीकार करते हुए विभिन्न मदों के अंतर्गत अस्थाई रूप से अवशेष मालूम कराने का निर्णय किया वा तदनुसार देश विभाजन के पश्चात 1947-48 में पहली बार वित्त लेखा निर्माण

किया गया। चूंकि वित्त लेखा निर्माण में काफ़ी देर हो गई थी अतएव यह भी निश्चय किया गया कि कई साल के वित्त लेखे एक साथ प्रस्तुत किए जाएँ। तदनुसार 1947-48 के लेखे 1959 में, 1948-49 से 1954-55 व 1955-56 से 1958-59 के वित्त लेखे 1960 में, 1959-60 तथा 1960-61 के लेखे 1961 तथा 1962 में प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

केन्द्रीय सरकार के वित्त लेखे का निर्माण महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय में होता है। संयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखे के लिए विभिन्न महालेखापाल अपने आँकड़े महालेखापरीक्षक के कार्यालय में भेजते हैं। बहुत से विवरण दोनों में सामान्य हैं अतएव नियंत्रक तथा महा लेखा परीक्षक के कार्यालय से कुछ विवरण महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व को भेजे जाते हैं। यहाँ इनका संकलन किया जाता है और ऋण आदि के कुछ अपने विवरण भी जोड़े जाते हैं जिनके निर्माण की ज़िम्मेदारी केवल महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व पर ही है।

10. संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखा

संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखे (Combined Finance and Revenue Accounts) का दूसरा नाम "सार्वजनिक वित्तीय विवरण" (General Financial Statement) है। यह वह लेखा है जिसमें भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के लेखे का सारांश दिया होता है और इसमें उनके अवशेषों व ग़ैरभुगतानी दायित्वों (Unpaid Liabilities) के बारे में जानकारी होती है। लेखे का उद्देश्य भारत तथा राज्य सरकारों के लेखों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करना है।

संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखे के दो भाग होते हैं :

(1) सामान्य लेखा

(2) सहायक लेखा

इन दोनों के पहले एक प्रस्तावना देने की पद्धति है जिसमें सरकारी लेखे के बारे में कुछ जानकारी और विद्यमान वित्तीय तथा लेखा पद्धति के पूर्व इतिहास के बारे में संक्षिप्त वर्णन होता है। सामान्य लेखे में भारत सरकार तथा प्रत्येक राज्य लेखे के राजस्व तथा भुगतानों का संक्षिप्त ब्योरा होता है। तुलना के लिए प्राप्तियाँ एक ओर और भुगतान दूसरी ओर दिखाए जाते हैं। इन दोनों विभागों के अंतर्गत पुनः प्राप्तियाँ तथा भुगतान प्रत्येक राज्य और केन्द्रीय सरकार के लिए अलग अलग स्तम्भों के अंतर्गत दिखलाए जाते हैं।

इसके सिवा सामान्य लेखे में भारत तथा प्रत्येक राज्य सरकार के लेखों को इन मुख्य शीर्षों के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है :

(1) मुख्य शीर्षों के अनुसार भारत सरकार के राजस्व का लेखा,

(2) मुख्य शीर्षों के अनुसार भारत सरकार के व्यय का लेखा,

(3) मुख्य शीर्षों के अनुसार भारत सरकार के आय व्यय का लेखा,

(4) मुख्य शीर्षों के अनुसार राज्य सरकारों के राजस्व का लेखा,

(5) मुख्य शीर्षों के अनुसार राज्य सरकारों के व्यय का लेखा, तथा

(6) मुख्य शीर्षों के अनुसार राज्य सरकारों के आय व्यय का लेखा।

(4), (5) और (6) में राज्य सरकार के लेखों को परस्पर इस तरह रखा जाता है ताकि उनकी तुलना एक दूसरे से की जा सके।

सहायक लेखों में प्रायः उपरोक्त लेखों के गौण शीर्षों के अनुसार ब्योरा दिया होता है। ऋण निक्षेप निधि आदि शीर्षो के अन्तर्गत वर्ष के प्रारंभ तथा अन्त में क्या अवशिष्ट राशियाँ हैं इनका परिचय होता है। ये अवशिष्ट राशियाँ भारित अथवा मतापेक्ष इस भेद के अनुसार अलग सारिणी में दी जाती हैं। अन्य व्यवहारों के बारे में ऐसा नहीं उनमें केवल प्रसंगतः यह बता दिया जाता है कि वे भारित राशियाँ हैं या मतापेक्ष राशियाँ। भारत सरकार के व्यवहारों की विवेचना उनकी संघटना के अनुरूप होती है ताकि यह जाना जा सके कि भारत सरकार की कितनी आय और कितना व्यय किस प्रदेश में हुआ है।

रचना सुविधा की दृष्टि से ब्योरे पहले अनुभाग, फिर मुख्य शीर्षो के और बाद में गौण शीर्षो के अनुसार दिए जाते हैं। प्रत्येक गौण लेखे के बाद एक व्याख्या या टिप्पणी दी जाती है जिसमें लेखे को समझाने का प्रयत्न किया जाता है। यदि लेख के व्यवहार में विशेषता हो तो उसे भी समझाने का प्रयत्न किया जाता है। ये टिप्पणियाँ साधारण पाठक के लिए अत्यधिक उपयुक्त होती हैं। केन्द्र और राज्य सरकारों के राज्य ऋण, अकाल निवारण निधि, प्रेषण तथा समायोजन, और विदेशी सरकारों के वित्तीय व्यवहारों के लिए विशेष रूप से टिप्पणियाँ दी जाती हैं।

संयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखे का निर्माण नियंत्रक तथा महालेखापाल के कार्यालय में होता है। लेखा परीक्षा तथा लेखा आदेश, 1936 के अधीन संयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखा राष्ट्रपति को प्रतिवर्ष फ़रवरी में पेश किया जाता है। वित्त लेखे की तरह संयुक्त लेखा संसद् के दोनों सदनों के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया जाता। संयुक्त लेखे पर कोई लेखा परीक्षा प्रतिवेदन भी नही होता जैसा कि विनियोग और वित्त लेखे के विषय में होता है।

संयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखा सन् 1937-38 में पहली बार बनाया गया था। वित्त लेखे की ही भांति संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखों के निर्माण में भी 1947 में देश विभाजन के परिणामस्वरूप बाधा हुई थी। यहाँ भी अन्त में अस्थाई रूप से अवशेषों को जानने का निश्चय किया गया व तदनुसार आगे संयक्त लेखे बनाए गए। 1947-48 में दो संयुक्त लेखे बनाए गए जो इस प्रकार थे :—

(1) विभाजन के पहले के अर्थात् 1 अप्रैल से 14 अगस्त 1947 तक के भारत सरकार तथा पंजाब व बंगाल प्रान्त के व्यवहारों के लेखे।

(2) विभाजन के बाद के अर्थात् 15 अगस्त 1947 से 31 मार्च 1948 तक के भारत सरकार के पश्चिमी बंगाल व पूर्वी पंजाब व पूरे वर्ष 1947-48 के अन्य प्रान्तों के व्यवहारों के लेखे।

तब से संयुक्त लेखों को अद्यावत् करने में काफ़ी प्रगति हुई है। 1958-59 का संयुक्त लेखा सबसे बाद का लेखा है।

11. प्रपत्र लेखा

सरकारी लेखा जिसका ऊपर वर्णन किया गया है केवल वास्तविक आय या व्यय का लेखा होता है। पर पहले से ही (और अब तो और भी अधिक) सरकार कुछ ऐसे कार्य निभाती है जिन्हें व्यावसायिक कार्य कहा जा सकता है। आय-व्यय के लेखे इन कार्यो की उपादेयता या वास्तविक स्थिति दिखलाने में समर्थ नहीं। अतएव लोक लेखा पद्धति में प्रपत्र लेखे होने की पद्धति है। इन्हें प्रपत्र लेखा इसलिए कहा जाता है कि ये केवल विशिष्ट प्रयोजन के लिए विभागीय अधिकारियों द्वारा बनाए जाते हैं और इन्हें औपचारिक रूप से संसद् या राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया जाता। सामान्य पद्धति के लेखे के अतिरिक्त प्रपत्र लेखे भी हैं। अर्थात्, डाक व तार के वर्कशाप के आय और व्यय, सामान्य लेखे में तो दर्ज होंगे ही पर उन्हें व्यापारिक ढंग से प्रपत्र लेखे में भी दर्ज किया जाता है। इसीलिए दर्शनार्थ लेखों को विनियोग व वित्त लेखे का अनुपूरक लेखा कहा गया है।

प्रपत्र लेखे सिंचाई, जल, यातायात विभाग, डाक व तार विभाग, ऑर्डिनेन्स फेक्टरी जैसे सरकारी कारखानों में परम्परा से रखे जाते हैं, पर कुछ हद तक कुछ अन्य विभागों में भी प्रपत्र लेखे रखने की प्रथा है जैसे महानिदेशक, संभरण तथा निपटान का विभाग आदि। इसके अतिरिक्त सभी निक्षेप राशियों का प्रपत्र लेखा रखना पड़ता है। उनका स्वरूप थोड़ा निराला होता है।

प्रयोजनके अनुसार एक विभाग के अन्तर्गत कितनी ही तरह के प्रपत्र लेखे हो सकते हैं। स्वरूप के अनुसार उनकी अलग अलग संज्ञा होती है। नीचे सिंचाई, जल, यातायात तथा बाँध विभाग में व्यवहृत प्रपत्र लेखों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है :-

(1) वित्तीय परिणामों का सारांश,
(2) पूँजी व्यय का विस्तृत विवरण,
(3) राजस्व लेखा,
(4) ब्याज लेखा,
(5) अप्रत्यक्ष भारों का लेखा, तथा
(6) पूँजी व्यय का संबंधित व्यय अनुदान से तुलनात्मक अध्ययन।

12. दैनिकी तथा खाता

यद्यपि सरकारी लेखा 'एक प्रविष्टि' (Single Entry) पद्धति पर रखा जाता है किन्तु सरकारी व्यवहारों के अवशेषों की परिशुद्धता जानने में एक अवस्था ऐसी आती है जब 'द्विप्रविष्टि' (Double Entry) पद्धति का भी प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। यह लेखा संकलन की अन्तिम अवस्था है। जिस साधन से यह किया जाता है उसे 'दैनिकी' तथा 'खाता' कहते हैं। भारत व राज्य सरकारों के लेखों की दैनिकी तथा खाता अलग अलग रखे जाते हैं। भारत सरकार की दैनिकी तथा खाते का कार्य महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय में व राज्य सरकार के दैनिकी तथा खाते का कार्य तद्-राज्यीय महालेखापाल के कार्यालय में होता है।

खाते का मुख्य उद्देश्य ऋण तथा प्रेषण शीर्षों के अन्तर्गत सरकार के नाम शेष रहने वाली और शेष न रहने वाली राशियों के अवशेषों को मालूम करना है। इसमें राजस्व व्यय तथा पूंजी शीर्षो के ब्योरे भी दिए जाते हैं पर इनका उद्देश्य केवल खाते को ठीक (Square) करना है। अतएव राजस्व लेखे के बाहर राजस्व की प्राप्तियाँ, सेवा व्यय, तथा पूंजी व्यय कुल राशियों में दिया जाता है। ऋण तथा प्रेषण में जरा विस्तार से आँकड़े दिए जाते हैं किन्तु इसमें भी ऐसे ऋण तथा प्रेषण व्यवहार जो सरकार के नाम हों उनके केवल मुख्य शीर्ष के अनुसार ही आँकड़े दिए जाते हैं जब कि अन्य प्रकार के ऋण तथा प्रेषण के आँकड़ों को पर्याप्त विस्तार से अर्थात् गौण शीर्षो के अनुसार दिया जाता है।

सरकार के खाते व अवशेषों के खाते चढ़ाए गए व्यवहारों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय सरकारी लेखा प्रणाली के अन्तर्गत खाते में सारे आँकड़े या तो सरकार के खाते डाले जाएँ या अवशेषों के। सरकार के खाते में वे आँकड़े होते हैं जिन्हें वर्षानुवर्ष संवहित नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ राजस्व की प्राप्तियाँ। सरकार को ये प्राप्तियाँ एक बार प्राप्त हो जाने पर फिर उनका अगले वर्ष की प्राप्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। दूसरी ओर ऋण तथा प्रेषण मद्द ऐसे हैं जिनके बारे में सरकार का कुल दायित्व पिछले वर्ष कितना रहा है यह जानने के लिए आवश्यक है। इसमें केवल नीचे लिखे व्यवहार अपवाद हैं :

(1) रिज़र्व बैंक के निक्षेप (Deposits of the Reserve Bank),
(2) विनिमय तथा प्रेषण लेखे (Exchange and Remittance Accounts),
(3) ऋण विमोचन अथवा ऋण लेने की आवश्यकता न पड़ने देने के लिए किए गए व्यवहार,
(4) प्रेषण जिन्हें केन्द्रीय खातों में समंजित किया गया है,
(5) महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व तथा अन्य महालेखापालों के बीच के समायोजन,
(6) सिविल लेखे के महालेखापाल तथा अन्य विभागों के महालेखापालों के बीच के व्यवहार, तथा
(7) भारत व इंग्लैण्ड के मध्य चालू लेखे।

खाते के दो भाग होते हैं :—

(क) सरकार के नाम खाता चढ़ाए गए व्यवहारों से संबंधित, तथा

(ख) सरकार के नाम खाता न चढ़ाए गए व्यवहारों से संबंधित।

पूर्वोक्त व्याख्या के अनुसार प्रथम भाग में सरकारी आरम्भ तथा अन्तिम शेष (Opening and Closing Balance), राजस्व प्राप्तियाँ, राजस्व लेखे के बाहर का पूंजी लेखा तथा सरकारी खाते में चढ़ाए जाने वाले ऋण प्रेषण आदि व्यवहार होते हैं। द्वितीय भाग में स्थानीय खाता शीर्षों के व्यवहार तथा वैयक्तिक खाते के व्यवहार होते हैं।

खाते में आँकड़े प्रति माह दर्ज किए जाते हैं। वर्ष के अन्त में इन्हें जोड़ कर अवशेषों की स्थिति मालूम की जाती है जिसका उपयोग वित्त लेखे में होता है। इस अवशेष उतारने की क्रिया को "शेष (रक़म) का पुनरीक्षण" (Review of Balances) कहते हैं। पुनरीक्षण में व्यवहारों के स्वरूप के सिवा लेखा परीक्षा करते समय ज्ञात विशेषताओं का भी ज़िक्र होता है। पुनरीक्षण का परिणाम एक संतुलन पत्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें एक ओर सरकार की आस्तियाँ व दूसरी ओर उसके दायित्व को प्रस्तुत किया जाता है। पर यह न समझना चाहिए कि यह संतुलन पत्र सरकार के समस्त आस्तियों व दायित्व का सूचक है क्योंकि भूमि, मकान, कारखाने, भण्डार आदि की आस्तियों के मूल्यांकन में कठिनाई होने के कारण अंकन नहीं किया जाता।

o o o

अध्याय 4

लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धति

लोक-लेखे की परीक्षा या जाँच उतनी ही आवश्यक है जितना कि लोक-लेखे का निर्माण। वैयक्तिक व्यवहारों में लेखा-परीक्षा के बिना काम चल सकता है, पर जनता के धन से किए जाने वाले व्यवहारों के बारे में ऐसा नहीं। इसमें प्रत्येक को यह विश्वास दिलाना आवश्यक होता है कि व्यवहार नियमानुसार और सही हुए हैं। इसीलिए प्रत्येक देश में विस्तृत लेखा-परीक्षा-व्यवस्था हुआ करती है। परीक्षा निष्पक्षता से हो, इसलिए उसका परीक्षण एक स्वतन्त्र अधिकारी को सौंपा जाता है।

भारत में लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धति का जन्म ब्रिटिश राज्य-काल में हुआ था। कहा जाता है कि सन् 1865 में सर चार्ल्स ट्रैवेलियन महोदय ने लेखा-निर्माण, आय-व्ययक आदि के साथ लेखा-परीक्षा-पद्धति को भी जन्म दिया। भारतीय लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धति, रूपरेखा में, इंगलैण्ड की पद्धति के अनुसार है, पर कहीं कहीं अन्तर भी है, उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड में लेखा-परीक्षक प्राप्तियों की भी लेखा-परीक्षा करता है। यहाँ वह कुछ ही प्राप्तियों की लेखा-परीक्षा करता है। आस्ट्रेलिया और अमेरिका में जहाँ संघीय राज्यों के लिए अलग-अलग महालेखापाल हैं, वहाँ सारे भारत के लिए एक ही महानियंत्रक है। परन्तु मूल तत्वों में सभी देशों की लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धतियों में समानता होना अवश्यम्भावी है।

1. लोक-लेखा-परीक्षा के सिद्धांत

भारतीय लोक-लेखा-परीक्षा के मुख्य सिद्धान्त नीचे दिए गए हैं:—

(1) वित्तीय नियमों तथा उनके पालन में यदि कोई त्रुटि हो तो लोक-लेखा-परीक्षक उसे बतला सकता है, पर यह उसका कार्य नहीं कि वह वित्तीय नियमों का निर्माण करे या उनका प्रयोग करके दिखलाए।

(2) लोक-लेखा-परीक्षक द्वारा की गई आलोचना केवल वित्तीय व्यवहारों तक ही सीमित होती है। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि शासन की ज़िम्मेदारी केवल कार्यपालिका पर ही छोड़ी जा सकती है और इसलिए वह ही ग़ैर वित्तीय व्यवहारों के औचित्य या अनौचित्य पर निर्णय ले सकती है। अतएव भारतीय लोक-लेखा-परीक्षा-विभाग इस क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता। फिर भी जहाँ अपव्यय अथवा सरकार को क्षति होने के ख़ास उदाहरण ध्यान में आते हैं वहाँ सरकार को सूचित करना लेखा-परीक्षक का कर्तव्य होता है।

(3) लेखे की जाँच करते समय परीक्षक को यह अधिकार होता है कि वह ऐसे प्रश्न पूछे या जानकारी हासिल करे जो उसकी परीक्षा के लिए आवश्यक हों। किन्तु यह भी नियम है कि ऐसे प्रश्न अत्यधिक सशक्त और शिष्ट

भाषा में पूछे गए हों। यह भी नियम है कि इस प्रकार की जानकारी केवल उपयुक्त विभाग से प्राप्त की जाए, क्योंकि अन्यत्र से प्राप्त करने का अर्थ सरकारी विभाग विशेष पर अविश्वास करना है। अन्त में,

(4) परीक्षा के परिणाम-स्वरूप ध्यान में आई आपत्तिजनक बातों को विभागों को किस हद तक बतलाया जाए, इसका निर्णय परीक्षक पर है। लेखा-परीक्षा-संहिता (Audit Code) में यह बताया गया है कि किस हद तक आपत्तियाँ किन-किन परीक्षकों द्वारा माफ़ की जा सकती हैं। किन्तु यदि त्रुटियाँ बहुत ही आपत्तिजनक हैं, तो उन्हें माफ़ करने का अधिकार केवल लोक-लेखा-समिति को होता है।

2. व्यावसायिक लेखा-परीक्षा-पद्धति से भेद

भारतीय लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धति, व्यावसायिक लेखा-परीक्षा-पद्धति से इन बातों में भिन्न हैं:—

(1) लेखाओं के रूप-संबंधी सुझाव:— व्यावसायिक लेखा-परीक्षा-पद्धति का यह अनिवार्य नियम है कि परीक्षक यह देखे कि व्यवसाय विशेप का लेखा उपयुक्त ढंग से रखा गया है या नहीं। प्राय: परीक्षक उस क्षेत्र में लेखा-पद्धति के बारे में भी सुझाव दे सकता है। सरकारी लेखा-परीक्षा में यह प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 150 में कहा गया है कि संघ और राज्यों के लेखे ऐसे रूप में रखे जाएँगे जैसा कि महालेखापरीक्षक ने राष्ट्रपति के अनुमोदन से विहित किया हो। फलत: लेखा-पद्धति में यदि कोई त्रुटि हो तो लोक-लेखा-परीक्षक का केवल इतना काम होता है कि वह लेखा-परीक्षा-प्रतिवेदन द्वारा इस त्रुटि की ओर संसद् का ध्यान दिलाए। उसे पद्धति में सुझाव देने की कोई खास गुंजाइश नहीं होती।

(2) व्यय की अनुमति:—व्यवसाय में व्यय अथवा प्राप्तियों के लिए कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर अथवा अन्य अधिकारियों के आदेश होते हैं। लोक-लेखे में इनके स्थान पर देश के संविधान के उपयुक्त अनुच्छेद, संसद् या विधान सभाओं द्वारा पास किए गए कानून व राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति द्वारा लागू किए गए नियम होते हैं। दोनों ही परिवर्तनशील हैं, पर सरकारी आदेश संख्या में कहीं अधिक हैं। इसलिए लोक-लेखा-परीक्षक को आदेशों के बारे में अधिक सावधान रहना पड़ता है। दूसरे, व्यवसायों में वहाँ के अधिकारियों का व्यवसाय के लाभ-हानि से निजी सम्बन्ध होने के कारण आदेशों में त्रुटि होने की संभावनाएँ कम रहती हैं। लोक-व्यवहारों में किसी का अपना निजी हित नहीं होता इसीलिए, हर एक अवस्था में उचित अधिकारी से वित्तीय व्यवहार करने की अनुमति की आवश्यकता पड़ती है। लोक-लेखा-परीक्षक को व्यवसाय की तुलना में इस दृष्टि से बहुत सावधान रहना पड़ता है।

(3) मूल लेखे की परिशुद्धता की जाँच:—व्यावसायिक लेखा-परीक्षा में, याद आवश्यकता पड़े तो, सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रारम्भिक लेखे की परीक्षा की जा सकती है, पर लोक-लेखा-परीक्षा में ऐसा नहीं होता। सरकारी व्यवहार इतने विस्तृत रूप से होते हैं और उनसे सम्बन्ध रखने वाले विभाग इतने

अधिक है कि जब तक हर विभाग और उसके कार्यालय के साथ एक लेखा-परीक्षा-विभाग का कार्यालय संलग्न न हो, सूक्ष्म लेखा-परीक्षा संभव नहीं उदाहरण स्वरूप रेल की आय को अथवा विदेशी राजदूतावास में हुए व्यय को लीजिए। इन व्यवहारों के लेखे बहुत दूर स्थित एक महालेखापाल या लेखा-परीक्षक के कार्यालय में होते हैं। अतएव इन्हें बहुत सूक्ष्मता से नहीं देखा जा सकता। इसका परिणाम यह होता है कि मूल लेखे की शुद्धता की जाँच भारतीय लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धति में प्रायः व्यवहार करने वाले विभाग पर छोड़ दी जाती है। आय और भण्डार वस्तुओं की जाँच इस व्यवस्था के खास उदाहरण हैं, जिनके बारे में आगे विस्तार से बतलाया गया है।

(4) लेखाओं के निर्माण की जाँचः—व्यावसायिक लेखा-परीक्षा-पद्धति में लेखा-निर्माण की जाँच अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है, पर जहाँ तक सरकारी लोक-लेखा-परीक्षा के विद्यमान स्वरूप का सम्बन्ध है उसमें लेखा-निर्माण की शुद्धता का इतना महत्व नहीं। जैसा कि अध्याय 1 में बतलाया गया था, एक-दो विभागों को छोड़कर शेष के लेखा-निर्माण की भी ज़िम्मेदारी लेखा-परीक्षा-विभाग पर होती है। इससे निर्माण की प्रक्रिया में भूल होने के अवसर प्रायः कम होते हैं। जहाँ लेखा-परीक्षा से लेखा-निर्माण अलग है, वहाँ परीक्षक की इस मामले में ज़िम्मेदारी अधिक होती है। वैसे व्यावसायिक संस्थाओं जितनी परीक्षा लोक-लेखा-परीक्षा-विभाग द्वारा नहीं हो सकती क्योंकि संविधान के अनुसार ही लेखे का स्वरूप वित्त-मंत्रालय द्वारा महालेखापरीक्षक की सलाह से निर्धारित किया जाता है।

(5) लाभ-हानि लेखे का निर्माणः—व्यावसायिक लेखा-परीक्षा-पद्धति में निर्माण व्यापार तथा लाभ-हानि लेखाओं (Manufacturing, Trading and Profit and loss Account) की जाँच उसका अनिवार्य अंग है, पर लोक-लेखा-परीक्षा-पद्धति में यह अनिवार्य अंग नहीं। स्वतन्त्रता के बाद सरकार के राष्ट्रीय उद्योग व व्यवसायों के प्रारम्भ करने से इनकी लेखा-परीक्षा में लाभ-हानि आदि लेखों की परीक्षा लेखा-परीक्षा-विभाग को करनी पड़ती है, पर अधिकांश लेखा अब भी परिपाटीगत ही है। अधिकतर वे उद्योग स्वतन्त्र निगम आदि के रूप में प्रारम्भ किए गए हैं परिणामतः भारत की संचित निधि या लोक-लेखे में इनके व्यवहार नही आते। ऑर्डनेन्स फैक्ट्रीज या चित्तरन्जन लोकोमोटिव वर्क्स जैसे थोड़े-बहुत जो भारत की संचित निधि से ही चलाए गए उद्योग हैं उनके निर्माण लेखों की परीक्षा केवल सहायक परीक्षा के रूप में की जाती है।

(6) व्यवहारों के औचित्य या अनौचित्य का ध्यानः—अन्त में लोक-लेखा-परीक्षा व व्यावसायिक लेखा-परीक्षा में एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ व्यावसायिक लेखा-परीक्षा में लेखा-परीक्षक केवल लेखे की शुद्धता को ही ढूँढता है, लोक-लेखा-परीक्षक लेखे के व्यवहारों के औचित्य या अनौचित्य पर भी मत प्रकट कर सकता है। लेकिन यह उसे पहले बतलाए गए सिद्धान्त के अन्तर्गत रहते हुए ही करना पड़ता है।

3. लोक लेखा परीक्षा की विशेषताएँ :

लोक-लेखे की परीक्षा प्राय: प्रारंभिक लेखे की अवस्था में ही की जाती है, पर कुछ विभाग ऐसे भी हैं जहाँ परीक्षा लेखा-निर्माण की मध्यवर्ती अवस्थाओं में की जाती है जैसे रेल व सुरक्षा-विभाग। कुछ खास तरह की लेखा-परीक्षाएँ, लेखा-निर्माण के अन्त में की जाती हैं जैसे "ऋण-प्रेषण आदि व्यवहारों की समीक्षा" (Review of Debt Remittance, etc.)।

जैसा कि पिछले अध्याय में बतलाया गया था परीक्षा सदैव महालेखापरीक्षक और उसके अधीन अधिकारियों के कार्यालय में ही होनी संभव नहीं, क्योंकि सारे लेखे लेखा-परीक्षा-विभाग में नहीं भेजे जाते। प्रारम्भिक लेखों के साथ कितने ही गौण लेखे होते हैं, जिनकी परीक्षा के लिए परीक्षकों को उन विभागों में जाना पड़ता है। इसे ही "स्थानीय लोक-लेखा-परीक्षा" (Local Audit) कहते हैं। स्थानीय लोक-लेखा-परीक्षा बहुधा निर्माण-विभाग, जंगल-विभाग आदि में करनी पड़ती है। इससे मिलती-जुलती एक और परीक्षा होती है जिसे निरीक्षण कहते हैं। जब लेखा-परीक्षा-विभाग द्वारा किसी विभाग या कार्यालय का निरीक्षण किया जाता है, तो उसमें केवल लेखे की अशुद्धता ही नहीं देखी जाती, वरन् यह भी देखा जाता है कि लेखे और वित्तीय आचरण की प्रथा वहाँ ठीक है या नहीं।

इसी प्रकार लोक-लेखा-परीक्षा-विभाग को एक "उच्चतर लेखा-परीक्षा" (Higher Audit) भी करनी पड़ती है, जो विभाग के विशिष्ट उच्चतर अधिकारियों द्वारा खास परिस्थिति में की जाती है। ऐसा विचार है कि केवल नियमानुरूपता पर्याप्त नहीं, व्यवहारों के औचित्य को भी देखना चाहिए जैसे, बचत की गुंजाइश, नियमों की उपादेयता आदि।

चूंकि सदैव हर एक व्यवहार की जाँच संभव नहीं होती, इसलिए लेखा-परीक्षा नियमों में आंशिक लेखा-परीक्षा (Test Audit) की पद्धति है, जिसमें यह निर्णीत किया गया है कि किस विषय की कितनी गहराई तक परीक्षा की जाएगी।

लोक-लेखा-परीक्षा में एक और तरह की परीक्षा शामिल होती है, जिसे "अनुमति की लेखा परीक्षा" (Consent Audit) कहते हैं। अनुमति की लेखा-परीक्षा का उदाहरण नगर-पालिकाओं और नगर-निगमों जैसी स्वायत्त संस्थाओं की लेखा-परीक्षा तो है ही, उसके अतिरिक्त कुछ विदेशी व्यवहारों की लेखा-परीक्षा भी है। बर्मा और भारत के महालेखापरीक्षकों के करार के अनुसार भारतीय महालेखापरीक्षक की अनुमति से पहले बर्मा सरकार के भारत में हुए कुछ व्यवहारों की परीक्षा हुआ करती थी।

लोक-लेखा-परीक्षा में आय-लेखों की अभी तक विस्तार से जाँच नहीं होती यद्यपि संविधान के अन्तर्गत उसकी परीक्षा* का कार्य भी नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के अधिकार में है।

---

* लोक-लेखा-समिति (1962-63) की 6वीं रिपोर्ट के अनुसार 1959 से महालेखापरीक्षक ने आयकर-विभाग तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्क-विभाग की परीक्षा करना प्रारम्भ किया है।

भण्डार-लेखों की परीक्षा, जब तक कि उस संबंध में राष्ट्रपति ने विशेष आदेश नहीं दिया हो, साधारणतया महालेखापरीक्षक द्वारा नहीं की जाती।

4. लोक-लेखा-परीक्षा-प्रक्रिया

यहाँ लोक-लेखा-परीक्षा की क्या प्रक्रिया है, आगे यह विस्तार से बतलाया गया है।

(क) **व्यय-लेखा-परीक्षा** : व्यय-व्यवहारों की लेखा-परीक्षा करते समय परीक्षक को चार मुख्य बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं :

(क) व्यय करने से पूर्व धन की उपयुक्त मात्रा में उपलब्धि तथा उसका उचित प्रयोजन के लिए प्रयोग:—अगर धन उपलब्ध न हो और सरकार व्यय करने की सोचे, तो वह केवल दिवालिए जैसा कार्य होगा। कोष में धन होना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि सरकार को व्यय करने के लिए उपलब्ध भी होना चाहिए। प्रति वर्ष विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) द्वारा राज्य और केन्द्र सरकारों को समेकित निधियों से धन दिलाया जाता है। अतएव मोटे तौर पर पहले परीक्षक को यह देखना पड़ता है कि जितनी राशि खर्च की गई है, वह उक्त अधिनियम द्वारा सम्मोदित है या नहीं। अधिनियम में ही व्यय के प्रयोजन भी इंगित होते है। अतएव इसी आधार पर परीक्षक पहले देखता है कि व्यय उचित प्रयोजन पर किया गया है या नहीं।

इस अवस्था तक की जाँच को मोटे तौर पर की गई जाँच इसलिए कहा गया है क्योंकि कोई संसद् अपने विनियोजन अधिनियम में सूक्ष्म से सूक्ष्म उपलब्धियों का विस्तार नहीं दे सकती और न उनके सूक्ष्म प्रयोजन ही निर्धारित किए जा सकते हैं। यह कार्य शासकीय विभागों को सौंपे जाते हैं। अतएव उक्त मोटी जाँच के बाद परीक्षक को देखना पड़ता है कि शासकीय विभागों द्वारा राशियाँ उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध कराई गई हैं या नहीं। ऐसी परिस्थिति भी आती है जब संसद् द्वारा अनुदान के रूप में धन उपलब्ध होते हुए भी परिस्थिति वश वह राशि उचित अधिकारी द्वारा वास्तविक खर्च किए जाने से रोक ली गई हो, इसी को वित्तीय भाषा में उत्सर्जन (Surrender) कहते हैं। अतएव सूक्ष्म प्रयोजनों का देखना भी परीक्षक का कर्तव्य है। उदाहरणार्थ एक अनुदान में "अधिकारियों का वेतन" (Pay of Officers) "सिब्वन्दी के वेतन भत्ते" (Salary and Allowances of Establishment) आदि यदि उपघटक हैं तो परीक्षक को देखना पड़ता है कि कर्मचारियों के वेतन के लिए निर्धारित राशिकर्मचारियों के वेतन के लिए ही व्यय हुई है न कि भत्ते के लिए। यह बात दूसरी है कि नियमों के अन्तर्गत रहते हुए योग्य अधिकारी उसमें आवश्यक परिवर्तन कर दें।

धन उपलब्ध हो और व्यय प्रयोजन के अनुसार भी किया जा रहा हो, पर यदि विहित नियमों का पालन न किया गया हो तो भी दुरुपयोग होने की संभावना है। उदाहरणार्थ यदि समेकित निधि से धन लिया गया हो और वह उचित उद्देश्य के लिए ही खर्च किया जा रहा हो पर यदि वह कार्य पूरे होने के पूर्व हो रहा हो, तो वह वित्तीय आचरण के नियमों के खिलाफ़ है। सरकारी वित्त का दुरुपयोग, कई बार इसी प्रकार पहले पैसे दे देने से हो जाता है। बात यह है कि सरकारी व्यवहारों में वित्तीय दुरुपयोग न होने देने के लिए अनेक नियम हैं और परीक्षक को लेखा-परीक्षा में देखना पड़ता है कि उन सारे नियमों का पालन हुआ है। परीक्षक को देखना पड़ता है कि व्यय वास्तव में हुआ है और पैसे उसी व्यक्ति को दिए गए हैं जिसे वे मिलने चाहिएँ थे।

इसकी जाँच करने का आसान तरीका यह है कि भुगतान ऐसा होना चाहिए कि दूसरी बार उसका दावा न किया जा सके। परीक्षक को यह भी देखना पड़ता है कि व्यय का उचित वर्गीकरण किया गया है, और व्यय होने के पूर्व उस संबंध में उचित प्रबंध किए गए हैं। उदाहरणार्थ सरकारी निर्माण कार्यों के लिए यह आवश्यक होता है कि निर्माण के लिए शासकीय अधिकारी तथा निर्माण विभाग के लोगों ने अनुमति दे दी हो क्योंकि यदि धन उपलब्ध हो, व्यय की अनुमति हो, पर यदि विशेषज्ञ दृष्टि से निर्माण त्रुटिपूर्ण हों तो व्यय बेकार हो सकता है। अतएव परीक्षक को देखना पड़ता है कि वास्तविक व्यय किए जाने के पहले योजना के त्रुटिहीनता संबंधी सभी नियमों का पालन किया जा चुका है। परीक्षक का कर्तव्य है कि वह यह भी देखे कि व्यय ठहराई हुई दर से किया गया है, अधिक दर से नहीं।

(ख) व्यय की नियम संमतता :—जहाँ तक नियमों का संबंध है, व्यय के संबंध में मूल नियम ये हैं जिनका पालन करना पड़ता है :

(1) भारत और राज्यों की समेकित निधि तथा आकस्मिकता निधि से व्यय की प्रक्रिया के नियम।

(2) भारत और राज्यों की समेकित निधि तथा आकस्मिकता निधि से व्यय करने के अधिकारों और उद्देश्यों को निर्धारित करने वाले नियम।

(3) सरकारी कर्मचारियों की सेवा की शर्तें तथा उनकी तनख्वाह, पेन्शन आदि नियत करने वाले नियम।

इन नियमों के अनुकूल आचरण होने के साथ-साथ परीक्षक को यह भी देखना पड़ता है कि नियम ठीक हैं। संविधान के विरुद्ध तो कोई शिकायत नहीं हो सकती पर संभव है कि उसके अन्तर्गत अन्य नियम, खासकर सरकारी आदेश संविधान, व त्रुटिहीन वित्तीय (Sound) आचरण के मूल नियमों के विरुद्ध हों। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दो सरकारी आदेशों में परस्पर विरोध होता है ऐसी स्थिति को भी परीक्षक को अधिकारियों को सूचित करना पड़ता है।

(ग) व्यय करने के लिए सक्षम अधिकारी की अनुमति :—यह आवश्यक है कि व्यय करने के लिए सक्षम अधिकारी की आज्ञा प्राप्त हो अन्यथा सरकारी कोषों से अनुत्तरदायी लोग भी धन लुटाना शुरू कर सकते हैं। राज्य और केन्द्र सरकार में ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए "वित्तीय अधिकारों* की पुस्तिका" (Book of Financial Powers) निर्धारित हैं। इसके अतिरिक्त विशेष प्रयोजनों के लिए भी समय समय पर विभिन्न स्तर के अधिकारी कितना व्यय कर सकते हैं इसके आज्ञा पत्रक होते हैं। परीक्षक को देखना पड़ता है कि व्यय की अनुमति देने वाले व्यक्ति को वास्तव में वे अधिकार प्राप्त थे। यह भी आवश्यक है कि अधिकार देने वाले आदेश बिल्कुल स्पष्ट और एकार्थक भाषा में ही हों।

---

*देखिए वित्तीय अधिकारों के कुछ उदाहरणों के लिए अध्याय 10 में "वित्तीय अधिकारों का विस्तार"।

(घ) व्यय में बुद्धिमानी :—जहाँ तक बुद्धिमानी से व्यय किए जाने का संबंध है इसमें कोई खास लिपिबद्ध नियम नहीं । अनुभव से कुछ मोटे सिद्धान्त बनाए गए हैं जो इस प्रकार हैं :—

(1) व्यय प्रगटत: आवश्यकता से अधिक न होना चाहिए । व्यय करने और कराने वाले अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सरकारी धन को उसी आत्मीयता से खर्च करेंगे जिस तरह कि वे अपना करते हैं ।

(2) व्यय इस तरह का न हो कि उससे अधिकारी को साक्षात या परोक्ष रूप से फ़ायदा हो सके ।

(3) व्यय किसी समुदाय या जाति विशेष के लाभ के लिए न किया गया हो।

(ख) **विनियोग लेखा परीक्षा** (Appropriation Audit):—यह व्यय के लेखा परीक्षा की एक अनुपूरक विधि है। यह बतलाया जा चुका है कि परीक्षक को व्यय के संबंध में यह देखना पड़ता है कि वित्त उपलब्ध था। छोटी मात्राओं में तो विभागों के लिए वित्त नियन्त्रण अधिकारियों (Controlling Officers) द्वारा उपलब्ध कराया जाता है पर विशद अर्थ में सरकार को व्यय करने की अनुमति विनियोग अधिनियम द्वारा दी जाती है । अतएव परीक्षक का कर्तव्य होता है कि वह देखे कि व्यय उसी मात्रा में हुआ है जिस मात्रा में संसद् ने अनुमति दी थी । अनुमति भी पूरे एक बड़े आँकड़े के लिए नहीं दी जाती वरन् प्रयोजनों के अनुसार विभिन्न अनुदानों के अन्तर्गत दी जाती है । अतएव परीक्षक को यह देखना पड़ता है कि वित्त की उपलब्धि का सूक्ष्मता के साथ ख्याल रखा गया है। यह बात दूसरी है कि कुछ हद तक विभाग अधिकारी एक अनुदान के अन्तर्गत विभिन्न उपमदों में धन उपलब्धि में कुछ फेर बदल करें, पर ऐसे विधि विहित पुनर्विनियोगों (Reappropriation) को छोड़ अन्य अपवादों के संबंध में लेखा परीक्षक को सावधान रहना पड़ता है । विशेषकर परीक्षक को देखना पड़ता है कि अनुदान से अधिक व्यय नहीं हुआ है दूसरे, पुनर्विनियोग के आदेश विधिवत् हैं तथा तीसरे यह कि व्यय समयानुकूल हो रहा है । कुछ खास परिस्थितियों को छोड़कर साधारणतया यह अपेक्षा की जाती है कि व्यय समगति से होगा । अतएव यदि वर्ष के प्रारम्भ में ही सारे अनुदान का खर्च होता नज़र आता हो तो परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे दृष्टांत विभाग की नज़र में लाए। जिन अन्य बातों का इस परीक्षा में ध्यान रखना पड़ता है वे इस प्रकार हैं :

(क) विनियोग तथा पुनर्विनियोग के आदेश सक्षम अधिकारियों द्वारा ही जारी किए गए हैं ।

(ख) संसद् से प्रतीक अनुदान (Token Grant) अथवा पूरक अनुदान (Supplementary Grant) लिए बिना "नवीन सेवा" (New Service) पर व्यय करने के लिए कोई पुनर्विनियोग नहीं किया गया है ।

(ग) मतापेक्ष (Voted) तथा भारित (Charged) राशि के बीच पुनर्विनियोग नहीं किया गया है ।

(घ) विनियोग तथा पुनर्विनियोग के आदेश वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पहले ही जारी किए गए हैं ।

(ग) **सहायता अनुदानों की लेखा परीक्षा** :—सहायता अनुदानों की (Grants-in-aid) की लेखा परीक्षा भी एक तरह से व्यय की लेखा परीक्षा है पर जहाँ सामान्य व्यय व्यवहारों की लेखा परीक्षा में योग्य अधिकारी के आदेश, नियमानुरूपता आदि नियम रहते हैं, सहायक अनुदान से किए जाने वाले व्यय में इस सब की अपेक्षा नहीं की जाती। शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग में प्रायः सहायक अनुदान के उदाहरण दृष्टिगत होते हैं। इनमें से कुछ अनुदान तो बग़ैर किसी शर्त के दिए जाते हैं और कुछ शर्तों के साथ। शर्तों के उदाहरण हैं—सहायता प्राप्त अनुदान की राशि के आय व्यय का लेखा निर्माण करना, सरकारी आदेशों की कुछ मामलों में बाध्यता आदि। जहाँ शर्तें होती हैं वहाँ परीक्षक को केवल इतना ही देखना पड़ता है कि व शर्तें पूरी की गई हैं या नहीं।

इंग्लैण्ड में सहायता अनुदानों के विषय में यह नियम है कि एक बार अनुदान देने के बाद उस वर्ष विशष में संस्था यदि सारा धन इस्तेमाल न कर सके तो अवशेष का अगले वर्ष में प्रयोग किया जा सकता है। भारतीय सहायता अनुदान प्रथा में यह सहूलियत नहीं। वहाँ संस्था से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अवशिष्ट राशि सरकार को वापिस कर देगी, अतएव परीक्षक को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है। वास्तव में ऐसी परिस्थिति बिरले ही उत्पन्न होती है क्योंकि "व्यय की अनुमति" (Expenditure Sanction) की पद्धति के कारण प्रायः उतनी ही राशि उपलब्ध कराई जाती है जितनी कि वह संस्था वर्ष के अन्दर व्यय कर सके।

(घ) **ऋण, निक्षेप राशियों तथा विप्रेषणों की लेखा परीक्षा**:—ऋण व्यवहारों की लेखा परीक्षा में परीक्षक को मुख्यतः यह देखना पड़ता है कि ऋण देश की सार्वभौम संस्था—संसद् द्वारा निर्धारित मात्रा से अधिक नहीं लिया गया है; ऋण की प्राप्तियाँ उचित रूप से लेखांकित की गई हैं तथा ऋण उन्हीं उद्देश्यों पर व्यय किया गया है जिसके लिए वह उद्धृत किया गया था। लेखा परीक्षक को यह भी देखना पड़ता है कि ऋण विमोचन के लिए सरकार ने उचित प्रबन्ध किया है—खास कर ऐसे ऋणों के बारे में जहाँ उनसे प्राप्त वित्त का प्रयोग केवल लाभकर कार्यों पर ही न किया गया हो। ऋणों के शषों का पुनरीक्षण करना भी लेखा परीक्षक का ही कर्तव्य है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 292 तथा 293 के अनुसार भारत और राज्य सरकारें अपनी अपनी समेकित निधियों की गारंटी (Guarantee) पर उधार ले सकती हैं लेकिन उन्हें विधान सभाओं द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए। न तो संसद् ने और न राज्य के विधान-मंडलों ने ही अभी तक इस संबंध में कोई सीमा निर्धारित की है। 1956 में लोक सभा में एक सदस्य ने इस संबंध में पूछा* था कि सरकार कब तक सीमा निर्धारण विषयक विधेयक सभा के सम्मुख लाना चाहती है पर उत्तर में कहा गया था कि अभी सरकार का ऐसा कोई विचार नहीं। परिणामतः कार्य-पालिका को अबाध रूप से ऋण लेने के अधिकार हैं। लेकिन राज्यों के

* देखिए लोक सभा वाद-विवाद भाग (1) तारीख 26 अप्रैल, 1956। प्रश्नकर्ता श्री के० सी० सोधिया थे।

ऋण लेने के संबंध में यह नियम है कि यदि भारत सरकार ने राज्य को कोई ऋण दिया हुआ हो तो वह भारत सरकार की सम्मति के बिना और कोई ऋण न ले सकेगी, अतएव परीक्षक को यह देखना पड़ता है कि इस शर्त का पालन हुआ है ।

ऋण प्राप्तियों के लेखांकन की शुद्धता के संबंध में लेखा-विभाग में वह विस्तृत व्यवस्था नहीं जो व्यय के संबंध में है पर समय समय पर रिज़र्व बैंक के राज्य ऋण कार्यालयों की जाँच से यह उद्देश्य पूरा हो जाता है। ऋण हमेशा पूँजीगत व्यय के लिए लिया जाता है अतएव ऋण से हुए व्यय के संबंध में यह देखना पड़ता है कि व्यय पूंजीगत है या नहीं ।

ऋण प्रतिदान व्यवस्था (Debt Redemption) की लेखा परीक्षा में परीक्षक को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं :

1. ऋण प्रतिदान की दर का ऋण की मात्रा से संबंध है या नहीं,
2. प्रतिवर्ष ऋण प्रतिदान की राशि राजस्व से अलग की जा रही है या नहीं, तथा
3. ऋण प्रतिदान की अवधि उचित है या नहीं। दरअसल ऋण प्रतिदान की योजना ही लेखा-परीक्षा विभाग की सलाह से बनाई जाती है। इस संबंध में अगले अध्याय में विस्तार से विचार किया गया है ।

ऋण की परीक्षा में परीक्षक को एक और बात का ध्यान रखना पड़ता है और वह है 'आनुषंगिक दायित्व" (Contingent Liability) परीक्षा की । संविधान के दोनों अनुच्छेदों (292 तथा 293) के अन्तर्गत क्रमशः संघ तथा राज्य सरकारों को अधिकार हैं कि ये संघ तथा राज्यों की समेकित निधियों पर संसद् तथा विधान-मंडल द्वारा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत रहते हुए गारंटी (Guarantee) दे सकें। ऐसे अवसरों के उदाहरण भारत सरकार के विषय में "राज्य सरकारों के ऋणों की गारंटी" (Guarantee against State loans), औद्योगिक वित्त निगम के अंशदानों की गारंटी तथा टाटा आयरन एण्ड स्टील को विश्व बैंक द्वारा दिए गए ऋण की गारंटी, तथा राज्यों के विषय में स्थानीय सरकारों को दिए गए उधारी आदि की गारंटी के हैं। सरल शब्दों में इस गारंटी का यह अर्थ होता है कि सरकार संस्था विशेष से यह वायदा करती है कि यदि वह ऋण या व्याज या लाभांश न दे सके तो सरकार उसे पूरा करेगी। यह भारी ज़िम्मेदारी है। अतएव परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि उन संस्थाओं के ऋण संबंधी लेखे ठीक तरह से रखे गए हैं और उनमें कोई त्रुटि नहीं है। यदि उन संस्थाओं ने ऋण प्रतिदान के लिए कोई योजना बनाई हो अथवा निक्षेप निधि निर्मित की हो तो परीक्षक का यह भी कर्तव्य है कि वह देखे कि पूर्वोल्लिखित सिद्धान्तों का उचित रूप से पालन किया गया है।

निक्षेप राशियों (Deposits) के संबंध में परीक्षक को यह देखना पड़ता है कि ये राशियाँ भारत व राज्य की समेकित राशियों में रखने के योग्य हैं। भारत के सार्वजनिक खाते में प्रस्तुत जिन निधियों तथा निक्षेप राशियों को शामिल किया जाता है उनके कुछ उदाहरण* निम्नलिखित हैं :

1. रेल मूल्य ह्रास और आरक्षित निधियाँ (Railway Depreciation and Reserve Funds)

*विस्तृत सूची के लिए परिशिष्ट 3 देखिए ।

2. डाक और तार विभाग की विकास निधि (Posts and Telegraphs Development Fund)
3. भारतीय वित्त अधिनियम, 1942 के अधीन अतिरिक्त लाभकर की ऐच्छिक जमा (Voluntary Deposits of Excess Profit-Tax under the Indian Financial Act, 1942)
4. अतिरिक्त लाभकर के अनन्तिम निर्धारण के बाद की प्रत्याशित जमा (Deposits made after Provisional Assessment of Excess Profit-Tax)
5. केन्द्रीय सड़क निधि (Central Road Fund)
6. अमरीकी उधार गेहूँ की बिक्री की रक़म से स्थापित विशेष निधि (Special Fund created out of the sale of American Wheat Loan)
7. युद्धोत्तर विकास निधि (Post-War Development Fund).

(च) **राजस्व की लेखा-परीक्षा**:— राजस्व की लेखा-परीक्षा में परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि प्राप्य वसूली वास्तव में प्राप्त हो गई है और उसका ठीक प्रकार से लेखांकन हुआ है।

प्राप्य आय तीन प्रकार से हो सकती हैं :

1. नियत तथा अनियत आय, उदाहरणार्थ भूमिकर आदि,
2. सरकारी पूंजी या सम्पत्ति के बदले में मिलने वाली आय, तथा
3. सहसा होने वाली आय—जैसे पोस्ट आफ़िस निक्षेप निधि में जमा कराई गई राशि।

पहले प्रकार की आय के सम्बन्ध में परीक्षक का यह कर्तव्य होता है कि वह समय समय पर उसकी वसूली की जाँच करे। दूसरे प्रकार की आय में उसे निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं :

(क) यदि आय सरकारी स्टाक के बदले में हो तो उसे देखना पड़ता है कि स्टाक के मूल्य में कमी के साथ सरकार को प्राप्ति होती रही है।

(ख) यदि सरकारी वित्त के बदले में आय हुई हो (उदाहरणार्थ पेशगियों पर अथवा प्रेषित राशियों से) तो परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि उनकी वापसी वास्तव में हुई है।

(ग) यदि सरकारी कार्य के बदले में आय हुई हो जैसे, डाक और तार आदि सेवाओं से, तो परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि प्रत्येक सेवा के लिए उचित प्राप्ति हुई है।

तीसरे प्रकार की आय के सम्बन्ध में परीक्षक का केवल इतना कर्तव्य है कि वह भुगतान के समय मूल काग़ज़ पत्रों की जाँच करे।

आय को सरकारी लेखे में स्थान मिल गया है या नहीं यह जानने के लिए लेखा-परीक्षा विभाग प्रत्येक बड़े आय विभाग को खज़ाने में उनके मार्फ़त कितनी जमा राशि है इसका एक मासिक विवरण भेजता है। विभाग अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे इन वास्तविक प्राप्तियों की राशियों की तुलना अपने रजिस्टरों में दर्ज अपेक्षित राशियों से कर लें। यह इसलिए किया जाता है कि आय की प्राप्ति की शुद्धता की ज़िम्मेदारी वास्तव में आय विभागों पर ही है। दूसरी ओर निर्माण विभाग, जंगल विभाग, कचहरी आदि जहाँ निक्षेप के रूप में थोड़ी बहुत प्राप्ति हुआ करती है वहाँ उक्त विभाग अपनी प्राप्तियों को लेखा-परीक्षा विभाग को सूचित करते है जो खजाने से प्राप्त रोकड़ खाता (Cash Account) से उसे मिला कर जाँच कर लेते है कि वास्तव में सूचित राशियाँ सरकारी कोष में आ चुकी हैं। लेखा-परीक्षा विभाग 1961 तक किसी सरकारी प्राप्ति (कर विभागों से) अर्थात् करों की परीक्षा नही किया करता था पर 1961-62 के लेखे से इसने आयकर विभाग तथा मूल्यकर विभाग की प्राप्तियों की लेखा-परीक्षा करना प्रारम्भ कर दिया है।

(छ) **भण्डारों तथा स्टाकों की लेखा-परीक्षा** (Audit of Stores and Stock):—जैसा कि पहले बतलाया गया था, साधारणतया भण्डार-लेखों की परीक्षा महालेखा-परीक्षक द्वारा नहीं की जाती जब तक कि राष्ट्रपति अथवा किसी राज्य के राज्यपाल ने विशेष रूप से इस सम्बन्ध में उसे आदेश न दिया हो। पर व्यापारिक विभागों में गौण लेखों की परीक्षा करते समय यह आवश्यक हो जाता है कि भण्डार तथा स्टाकों की जाँच की जाए क्योंकि वे भी सरकारी सम्पत्ति का एक रूप हैं। ऐसे अवसर पर परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि भण्डार के क्रय-विक्रय तथा उनके योग्य अथवा अनुपयुक्त ठहराने के नियम निर्दोष हैं। परीक्षक को यह भी देखना पड़ता है कि खरीदने के लिए सक्षम अधिकारी ने आज्ञा दी है। क्रय की मात्रा कुछ हो और उसे लेखे में दर्ज करते समय कुछ और लिखा जाए तो उसमें भी सरकार को धोखा हो सकता है अतएव परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि लेखा ठीक तरह से रखा गया है। स्वस्थ वित्त नियोजन के लिए यह भी आवश्यक है कि उतनी ही मात्रा में स्टाक खरीदे जाएँ जितनी कि वास्तविक आवश्यकता हो अन्यथा सरकारी धन अकारण पड़ा रह सकता है। अतएव परीक्षक को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है। अन्त में परीक्षक का सब से महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह यह देखे कि भण्डार रक्षक अधिकारियों ने समय समय पर भण्डार की वास्तविक जाँच (Physical Verification) की है क्योंकि लेखा ठीक हो, उन का मूल्य भी ठीक हो, पर यदि भण्डार से वस्तुएँ ही गायब हों तो लेखा आदि की जाँच वृथा हो सकती है। लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों में प्रायः हर साल भण्डार गायब होने से हानि के दृष्टान्त मिलते हैं।

(ज) **वाणिज्यिक व्यवसायों के गौण लेखों की परीक्षा** :—पिछले अध्याय में वाणिज्यिक विभागों में सामान्य आय-व्यय लेखे के अतिरिक्त गौण लेखा रखने की आवश्यकता के बारे में उल्लेख किया गया था। यह आवश्यक है कि उन उद्देश्यों की

पूर्ति होती हो अन्यथा अलग लेखा रखने का कोई मतलब ही नहीं। परीक्षक को इस सम्बन्ध में देखना पड़ता है कि :—

(क) उक्त लेखा व्यवसाय की वित्तीय हालत को ठीक-ठीक प्रगट करने में समर्थ है ।

(ख) यदि लेखे का उद्देश्य वस्तु या सेवा का मूल्य निर्धारण हो तो निर्धारित मूल्य वास्तविक है ।

(ग) लेखे की रचना इस तरह की गई है कि अन्य तत्समान व्यवसायों की हालत से उसकी तुलना की जा सकती है ।

(घ) व्यवसाय ने पूँजी और आमदनी का विभाजन ठीक-ठीक किया है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि व्यावसायिक गौण लेखे की परीक्षा में व्ययों के औचित्य के बारे में परीक्षक को उस व्यवसाय के अधिकारियों का कहना मानना पड़ता है क्योंकि व्यवसाय में व्यय के कोई निश्चित नियम नहीं। इसीलिए इन लेखों की परीक्षा में परीक्षक को व्यवसाय के अधिकारियों के नियन्त्रण पर अधिक विश्वास रखना पड़ता है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय व्यवसायों के जैसे—सिधरी खाद फ़ैक्टरी लिमिटेड, इण्डियन टेलीफ़ोन इण्डस्ट्रीज, बंगलौर आदि के लेखे की परीक्षा का जो दायित्व महालेखा परीक्षक के ऊपर आया है उसमें लेखा परीक्षा की विधि ज़रा निराली होती है। इनमें उन सारी विधियों को ध्यान में रखना पड़ता है जो शुद्ध व्यवसाय लेखा परीक्षा के लिए आवश्यक हैं। जहाँ सरकारी व्यावसायिक विभाग में जैसे—डाक और तार के वर्कशाप में उद्देश्य केवल वस्तु का मूल्य नियन्त्रण आदि होता है वहाँ विशुद्ध उद्योग या व्यवसाय का उद्देश्य लाभार्जन है। उद्देश्यों का यह अन्तर लेखे की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय उद्योग (कम्पनी एक्ट की परिभाषा के अन्तर्गत आने वालों में) लेखे में कुल पूँजी कितनी विनियुक्त हुई है यह जानना आवश्यक है । सरकारी व्यावसायिक विभागों में इसके जाने बिना भी काम चल सकता है।

उपरोक्त प्रक्रिया से पता चला होगा कि लेखा परीक्षा उतनी असुविधाजनक चीज़ नहीं जितनी कि उसके प्रति प्रायः अश्रद्धा दिखलाई जाती है। वास्तव में यदि सब अधिकारी अपने अपने नियमों के अनुसार वित्तीय व्यवहार करते रहें तो लेखा परीक्षा से डरने की कोई बात ही नहीं। राजकीय वित्त के उचित उपयोग के प्रमाण के लिए लेखा-परीक्षा अत्यधिक आवश्यक है।

5. लोक-लेखा-परीक्षा का परिणाम

संविधान के अनुच्छेद 151 के अनुसार महानियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक का यह कर्तव्य है कि वह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के लेखे के विषय में राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को क्रमशः प्रतिवेदन प्रस्तुत करे जिसे राष्ट्रपति या राज्यपाल संसद् या विधिसभाओं के सम्मुख उपस्थापित कराएँगे। लेखों से तात्पर्य उन लेखों का है जिनका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अर्थात् नियन्त्रक तथा महालेखापाल को भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के (1) विनियोग लेखे पर प्रतिवेदन तथा (2) वित्त लेखे पर प्रतिवेदन उपस्थापित

कराने पड़ते हैं। प्रतिवेदनों में जिन विषयों को शामिल किया जाता है उन्हें लेखा-परीक्षा संहिता में इस प्रकार गिनाया गया है :—

1. अनुदानों में परिवर्तन अर्थात् उनमें वृद्धि या ह्रास पर टीका,
2. लेखे की परिशुद्धता सम्बन्धी त्रुटियों की चर्चा,
3. संसद् की इच्छा के विरुद्ध उद्देश्यों पर किए गए व्यय के उदाहरण अथवा अनुदान के प्रयोग में हुई भीषण अनियमितता का उदाहरण,
4. पारित (Voted) राशियों से अधिक अर्थात् अतिरेक व्यय के उदाहरण,
5. लेखा परीक्षा प्रणाली में हुए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का उल्लेख,
6. हानि बट्टे डालना, निरर्थक व्यय के उदाहरण, तथा
7. सहायता अनुदानों सम्बन्धी अनियमितता की चर्चा।

स्पष्ट है कि आपत्तिजनक सभी व्यवहार लेखा-परीक्षा प्रतिवेदन में नहीं गिनाए जा सकते और न यह वांछित ही है क्योंकि प्रतिवेदनों की समीक्षा करने वाली संसद् की लोक लेखा समिति के पास समय कम होता है अतएव अल्प महत्त्व की आपत्तियों को महालेखा परीक्षक और विभागीय अधिकारियों के बीच विभागीय स्तर पर ही निवारण करने का प्रबन्ध किया जाता है।

लेखा परीक्षा विभाग में यह नियम है कि जब तक आपत्ति का निवारण नहीं हो जाता वे उनके रजिस्टरों में बनी रहती है। समय समय पर आपत्तियों पर लेखा-परीक्षा विभाग में पुनरीक्षण किया जाता है ताकि विभागों को उनकी गलतियाँ मालूम होती रहें (आपत्तियाँ परीक्षा विभाग के रजिस्टरों में ही न रहें)। उचित स्तर द्वारा उसकी सूचना व्यवहार करने वाले विभाग को दे दी जाती है। बहुत सी आपत्तियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें विभाग स्वीकार कर लेते हैं और उस अवस्था में यदि अधिक व्यय हुआ हो तो उसे वसूल कराया जाता है ; यदि कम प्राप्ति हुई हो तो विभाग-विशेष से आश्वासन माँगा जाता है कि वे कमी पूरी कर लेंगे। ऐसी त्रुटियाँ जिन्हें विभाग स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं उन्हें अलग से छाँट लिया जाता है। एक बार प्रतिवेदन में शामिल होने का निश्चय करने पर आपत्ति को रजिस्टर से हटा दिया जाता है।

सभी आपत्तियाँ लेखा-परीक्षा प्रतिवेदन में शामिल नही होती, भले ही विभाग उन्हे स्वीकार करने के लिए तैयार न हो। ऐसी आपत्तियों को (यदि उनमें अधिक वित्त का प्रश्न न हो) माफ़ करने के अधिकार लेखा परीक्षकों को दिए गए हैं उदाहरणार्थ यदि कोई आपत्तिजनक व्यय वसूल न हो सकता हो तो 100 रुपए तक निदेशक, रक्षा लेखा परीक्षा द्वारा उसे आपत्ति मुक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई पाँच रुपए तक का अनियमित व्यय हुआ हो तो उस नियम विरुद्धता को सहायक महालेखापाल (Assistant Accountant General) द्वारा क्षमा किया जा सकता है। इस प्रकार अन्य परीक्षा अधिकारियों को अधिकार दिए गए हैं।

यह आवश्यक है कि प्रतिवेदन में बतलाई गई आपत्तियाँ तथ्य की दृष्टि से बिल्कुल सत्य हों। अतएव उन आपत्तियों पर प्रतिवेदन के लिए पैराग्राफ़ बनाने पर उन्हें विभागों को भेज दिया जाता है ताकि व उसकी यथार्थता को एक बार देख लें और उन्हें कोई विचार पुनः प्रगट करना हो तो कर सकें। अन्त में उन्हें प्रतिवेदन में शामिल कर लिया जाता है। प्रतिवेदन की भाषा अत्यधिक गंभीर हो ऐसी परीक्षा-विभाग की कोशिश होती है। प्रतिवदन का उद्देश्य राष्ट्रपति को ग़लतियों के कारण और उनके निवारण के उपाय सूचित करते रहना है न कि विभाग विशेष से व्यवहारों के औचित्य वा नियमानुरूपता के बारे में बहस करना। यदि विभागों को जो कुछ हो चुका हो इस के बारे में फिर भी कुछ कहना हो तो वह संसद् की लोक लेखासमिति के सम्मुख कहा जाता है व समिति फिर अन्तिम निर्णय दे ी है।

लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों के विषय में नीचे विस्तार से बतलाया गया है :—

(क) **विनियोग लेखा-परीक्षा प्रतिवेदनः**—भारत सरकार के विनियोग लेखे चार भागों में बनाए जाते हैं अतएव उन पर प्रतिवेदन भी अलग अलग होता है। राज्य, सरकारों के व्यवहारों के विषय में एक ही विनियोग लेखा बनता है अतएव परीक्षा प्रतिवेदन भी एक ही होता है। भारत सरकार के विनियोग लेखा परीक्षाओं के प्रतिवेदन ये हैं :

1. रक्षा विभाग के विनियोग लेखे पर प्रतिवेदन (Audit Report on the Appropriation Account of the Defence Services),
2. डाक और तार विभाग के विनियोग लेखे पर प्रतिवेदन (Audit Report on the Appropriation Account of the P. and T. Department
3. रेल विभाग के विनियोग लेखे पर प्रतिवेदन (Audit Report on the Appropriation Account of the Railways), तथा
4. सिविल विभागों के विनियोग लेखे पर प्रतिवेदन (Audit Report on the Civil Appropriation Account)।

रक्षा विभाग के विनियोग लेखा प्रतिवेदन के निर्माण की ज़िम्मेदारी "निदेशक रक्षा लेखा-परीक्षा" (Director of Audit Defence Services) पर होती है। डाक और तार की लेखा परीक्षा प्रतिवेदन की ज़िम्मेदारी महालेखापाल डाक और तार विभाग (Accountant-General, Posts and Telegraphs), रेल विभाग के लेखा प्रतिवेदन की जम्मिेदारी निदेशक, रेल लेखा परीक्षक (Director of Audit Railways) (इस सम्बन्ध में विस्तार से अध्याय 9 में बतलाया गया है) तथा सिविल विभागों के विनियोग लेखा परीक्षा प्रतिवेदन की ज़िम्मेदारी महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व (Accountant-General Central Revenues) पर है। चूँकि भारत सरकार के सिविल व्यवहारों का लेखा व उनकी परीक्षा कुछ हद तक राज्य स्थित महालेखापालों द्वारा भी की जाती है अतएव राज्य महालेखापालों को भी चौथे वर्ग के प्रतिवेदन के लिए कुछ मदद करनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व का काम समेकन करना है।

उपर्युक्त पद्धति से प्रतिवेदन निर्माण होने पर उन्हें नियंत्रक तथा महालेखा पाल के पास भेज दिया जाता है क्योंकि प्रतिवेदन की ज़िम्मेदारी अन्ततोगत्वा उसी

पर है। कभी-कभी इस अवस्था में प्रतिवेदन में कुछ परिवर्तन भी किए जाते हैं। भाषा व विषय में परिवर्तन के अतिरिक्त अगर महालेखा परीक्षक को अपने खास विचार प्रगट करने होते हैं तो वह उन्हें इसी अवस्था में प्रतिवेदन में शामिल करता है।

स्वरूप की दृष्टि से पूर्वोक्त सभी विनियोग लेखों के प्रतिवेदन एक से होते हैं। पर 1951-52 से भारत सरकार के सिविल विभागों के विनियोग लेखा प्रतिवेदन के विषय में एक विभिन्न रीति अपनाई गई है और वह यह कि प्रतिवेदन दो भागों में उपस्थित किया जाता है—(1) वित्तीय अनियमितता तथा धोखेबाज़ी, लापरवाही आदि से हुई हानियों और निष्फल खर्च आदि से सम्बन्ध रखने वाले महत्त्वपूर्ण परीक्षा-परिणामों का पेशगी प्रतिवेदन और (2) लेखा सम्बन्धी त्रुटियाँ, सीमोपरि व्यय आदि की चर्चा वाले विषयों पर प्रतिवेदन, जिन्हें विनियोग लेखे के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यह अपवाद इसलिए प्रारम्भ किया गया क्योंकि विनियोग लेखा निर्माण होते समय लगता था कि परीक्षा-परिणाम उसके साथ प्रस्तुत करने की प्रथा के कारण परीक्षा-परिणाम भी लोक लेखा समिति के सम्मुख देर से पहुँचते थे। 1961 तक गौण विनियोग लेखे जैसे नवीन निर्माण का व्योरा, सहायक अनुदानों से हुए व्यय का विवरण, आरक्षण-निधि तथा संचय निधियों का विवरण आदि तथा टिप्पणियाँ परिशिष्ट के तौर पर मूल विनियोग लेखे के साथ ही दी जाती थीं पर 1961 में विनियोग लेखे को सरल करने के कारण अब ये बातें लेखा परीक्षा प्रतिवेदन में दी जाती हैं।

(ख) वित्त-लेखा-परीक्षा प्रतिवेदन :—वित्त लेखा परीक्षा प्रतिवेदन की रचना इस प्रकार है : भाग (1) सामान्य लेखे पर प्रतिवेदन तथा भाग (2) ऋण निक्षेप तथा प्रेषण लेखे पर प्रतिवेदन। भाग (1) में निम्नलिखित शामिल हैं:—

(1) भूमिका जिसमें लेखा पद्धति के बारे में बातें बतलाई गई हों।

(2) प्रतिवेदन अधीन वर्ष में हुए विभिन्न व्यवहारों का संक्षेप में विवरण।

(3) प्राक्कलनों से महत्त्वपूर्ण विभेद।

(4) सरकार की राजस्व की अवस्था की सामान्य आलोचना।

(5) राजस्व लेखे के बाहर के पूँजी व्यय के बारे में चर्चा।

(6) व्यापारिक विभागों के वित्तीय परिणामों की सामान्य चर्चा।

(7) ऋण परिस्थिति का पुनरीक्षण (इसमें विभिन्न ऋणों का व्योरा, केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए ऋण तथा अग्रिम, राज्यीय सरकारों द्वारा उद्धृत ऋणों के बारे में केन्द्रीय सरकार की प्रत्याभूतियों की चर्चा होती है)।

(8) सामान्य वित्तीय परिस्थिति का संक्षेप।

भाग (2) में निम्नलिखित शामिल हैं :

(1) भूमिका : जिसमें ऋण निक्षेप के लेखों की विशेषताओं का ज़िक्र होता है जैसे ऋण प्रतिदान व्यवस्था की उपयुक्तता आदि की चर्चा।

(2) अवशेषों की समीक्षा : पिछले अध्याय में बतलाया गया था कि दैनिकी तथा खाता इसलिए बनाए जाते हैं कि ऋण शेष जाना जा सके। परीक्षा प्रतिवेदन में उन्हीं की समीक्षा की जाती है। स्वरूपों को बतलाने के अतिरिक्त उसमें बट्टे खाते डालने (Write off), संदेहपूर्ण संपत्ति आदि का भी उल्लेख होता है।

विनियोग लेखा प्रतिवेदन की तुलना में वित्त लेखे की परीक्षा का प्रतिवेदन अधिक विश्लेषणात्मक होता है। संसद् की लोक लेखा समिति ने जहाँ अभी तक कितने ही विनियोग लेखे के प्रतिवेदनों की जाँच की है वित्त लेखा प्रतिवेदन की जाँच केवल एक बार की है और वह भी 1963 में। तुलनात्मक दृष्टि से यह उतना महत्त्वपूर्ण भी नहीं है।

लेखा परीक्षा पर केवल प्रतिवेदन देकर ही सरकारी लेखे की परीक्षा समाप्त नहीं हो जाती। परीक्षा के अधिकांश परिणामों को लोक लेखा समिति का समर्थन प्राप्त हो जाता है और समिति की सिफ़ारिशों के रूप में त्रुटियों के निवारण के उपाय भी होते हैं जिन पर साधारणतया सरकार कार्य करती है। फिर भी लोक लेखा परीक्षा विभाग को यह देखना पड़ता है कि परीक्षा-परिणामों पर उचित कार्यवाही की जा रही है। इस दृष्टि से विभाग—जिसके व्यवहार के बारे में आपत्ति उठाई गई हो—समिति की सिफ़ारिश पर उठाए गए कदमों को समिति के साथ-साथ महालेखा परीक्षक को सूचित करते हैं। जब यह प्रमाणित हो जाता है कि विभागो ने भूल सुधार ली है तभी उन पर से वह आरोप उठाया जाता है।

o o o

अध्याय 5

राज्य-ऋण-पद्धति

स्वतन्त्र देशों का यह एक सामान्य अधिकार माना जाता है कि वे अपनी संपत्ति के आधार पर उधार ले सकें। 1919 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act, 1919) के पास होने से पहले प्रान्तीय सरकारों को ऋण लेने का तो अधिकार था ही नही, भारत सरकार भी सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट की अनुमति के बिना ऋण नही ले सकती थी। अधिकतर ऋण "पौड पावने" में लिया जाता था। 1921 से प्रान्तीय सरकारों को भी सेक्रेटरी आफ़ स्टेट की अनुमति से ऋण लेने की अनुमति मिल गई। भारत सरकार अधिनियम 1935 से ऋण लेने के अधिकारों में और भी वृद्धि हुई। इस एक्ट की धारा 161 से सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट की अनुमति लेने की भी जरूरत न रही। पर स्टर्लिग और अन्य विदेशी-ऋण लेने का अधिकार फिर भी ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में निहित था। स्वतन्त्र भारत के संविधान में यह सब शर्तें हटा दी गई है।

1. राज्य ऋण सम्बन्धी मूल सिद्धान्त

राज्य ऋण सम्बन्धी निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्त हैं :

(1) आयव्ययक के घाटे की पूर्ति के लिए ऋण का प्रयोग न होना चाहिए:—यह आवश्यक है कि ऋण का प्रयोग राजस्व आयव्ययक के घाटे को पूरा करने के लिए न किया जाए। प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में प्राय: यह प्रवृत्ति पाई गई है कि वे राजस्व बजट की कमी को पूरा करने के लिए ऋण का उपयोग करते है क्योंकि इससे मत-दाताओं का कर भार नहीं बढ़ता, भावी संतति का दायित्व ही अधिक बढ़ता है। यदि ऋण लेने के पहले तत्सम्बन्धित प्रस्तावों को विधान-मण्डल के सम्मुख न लाना हो तो यह प्रवृत्ति और भी अधिक प्रबल होती है। भारत में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों दोनों के ऋण प्रस्तावों को विधान-मंडल के सम्मुख नहीं लाना पड़ता पर विद्वानों का मत है कि आयव्यय की न्यूनता को देखते हुए यह नही कहा जा सकता कि ऋण का उपयोग राजस्व घाटे को पूरा करने के लिए किया गया है।

(2) ऋण का प्रयोग केवल खास तरह के लाभप्रद प्रयोजनों के लिए ही होना चाहिए:—यह तो सभी को पता होगा कि ऋण का उपयोग लाभप्रद प्रयोजनों पर किया जाना चाहिए क्योंकि लाभप्रद प्रयोजन के माने ही यह है कि वह कुछ काल तक चलें और उनसे प्राप्ति होती रहे। पर केवल प्रयोजन का लाभप्रद होना ही पर्याप्त नहीं है। लाभप्रद योजनाओं में भी कुछ ऐसे व्यय हैं जिन्हें राजस्व से खर्च किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक की सलाह से भारत सरकार ने नीचे लिखे नियम बनाए हैं :

निम्नलिखित व्यय लाभप्रद प्रयोजनों के लिए होते हुए भी राजस्व से लिए जाने चाहिए :

1. किसी उत्पादक योजना के प्रारम्भ में लगने वाला सारा व्यय,

2. योजना के प्रारम्भ होने के पूर्व पूर्ण हुए भाग के संधारणार्थ किया गया व्यय,
3. योजना के सुधार के लिए किया गया व्यय, और
4. पुनर्नवन तथा पुनस्संस्थापनार्थ पर (Renewal and Replacement) किया गया व्यय।

अलाभप्रद योजनाओं में युद्ध के लिए लिया गया व्यय व अत्यधिक अनिवार्य प्रयोजन अपवाद हैं।

(3) ऋण पर व्याज की दर आवश्यकता से अधिक न होनी चाहिए:—यह आवश्यक है कि ऋण पर व्याज की दर आवश्यकता से अधिक न हो। सरकारी ऋण की दर या देश के अन्य व्यावसायिक ऋण स्वयं रिज़र्व बैंक द्वारा अपनी उधारी के लिए अन्य अनुसूचित बैंकों (Scheduled Banks) से लिए गए व्याज की दर से सम्बन्धित हैं। अतएव सरकारी ऋण पर व्याज की दर अनावश्यक रूप से अधिक होने से उन पर असर पड़ सकता है। कहते हैं द्वितीय महायुद्ध काल में लिए गए कुछ ऋणों पर व्याज की दर व्यर्थ में अधिक थी।

(4) ऋण मुनासिब मात्रा में हो:— परिपाटीगत यह विचार रहा है कि ऋण उतना ही लेना चाहिए जितना कि सरकार के लिए व्याज सहित चुकाना आसान हो। पर राजस्व के आधुनिक विद्वानों में से कुछ का मत यह है कि भारे ऋण को चुकाने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। उनका कहना है कि अगर समाज की आय में वृद्धि होती जा रही हो तो उन्हें सरकार को दिए गए ऋण को वापिस लेने की आवश्यकता ही न होगी। कहा जा सकता है कि यह विचारधारा अभी भारत के राज्य-ऋण में नहीं आई है।

(5) ऋण उतना ही हो जितना कि अर्थव्यवस्था सहन कर सके—राज्य-ऋण उतना ही हो जितना कि आर्थिक व्यवस्था सह सके। अर्थात् ऋण राष्ट्रीय आय तथा जनसंख्या से सम्बन्धित होना चाहिए। एक अमरीकन अर्थविज्ञ का विश्वास* है कि—कोई राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से जितना ही सम्पन्न होगा उसकी उत्रृणता भी उतनी ही अधिक होगी।

(6) राज्य ऋण वित्तीय नीतियों का पोषक होते हुए व्यर्थ में अवरोधक न होना चाहिए:—यह आवश्यक है कि राज्य ऋण वित्तीय नीति का पोषक होते हुए भी व्यर्थ में अवरोधक नहीं होना चाहिए। साम्यवादी राज्यों में इस सिद्धान्त का महत्त्व नहीं

*इस विश्वास के समर्थन में उसने निम्न लिखित आँकड़े दिए हैं:

	प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय	प्रति व्यक्ति उत्रृणता
अमरीका	229	1,620
यू० कि०	91	1,446
कनाडा	98	1,226
न्यूज़ीलैण्ड	107	959
आस्ट्रेलिया	99	867

क्योंकि वहाँ राज्य ही सब कुछ है। पर भारत जैसे देश में जहाँ सरकारी और ग़ैर सरकारी दोनों ही तरह की संस्थाएँ हैं, यह आवश्यक है कि राज्य ऋण सारी बचत को न खींच ले अथवा अन्य किसी रूप से ग़ैर सरकारी आवश्यकता-पूर्ति में रुकावट न डाले। संघीय तंत्र में यह सिद्धान्त और भी लागू होता है। अर्थात् यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच ऋण इकठ्ठा करने में स्पर्धा नहीं होनी चाहिए। कुशल राज्य-ऋण नीति की यह कसौटी है कि उसमें उपर्युक्त किसी प्रकार के संघर्ष न हों।

(7) यदि ऋण कई प्रकार के हों तो उनमें एक प्रकार की नम्यता होनी चाहिए:—ऋणों के कई प्रकार होने चाहिए ताकि परिस्थिति के अनुसार उनका उचित उपयोग किया जा सके। भारत सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजना के काल से कई तरह की अल्प बचतों पर ज़ोर दिया जाना, इसी सिद्धान्त के पालन का प्रमाण है। ऋणों के अन्तर्गत बतलाए गए प्रकारों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

(8) ऋण की अवधि वित्तीय बाज़ार की हालत के अनुरूप होनी चाहिए:— यह आवश्यक है कि राज्य ऋण की अवधि न तो अधिक लम्बी ही हो और न अधिक कम। प्राइवेट बैंकों को राज्य ऋण के रूप में प्रतिभूतियाँ या ऋणपत्र (Securities) रखने पड़ते हैं। यदि वे ऋणपत्र स्वल्प काल के लिए हों तो उनके मूल्य में बहुत जल्दी फ़रक पड़ सकता है जिससे व्यवसाय को हानि पहुँच सकती है। दूसरे अल्पकालीन ऋण होने से सरकार को ऋण लेने के लिए जल्दी जल्दी जाना पड़ता है। आजकल चूँकि अधिकांश ऋण प्रायः परिवर्तन से ही चुकाए जाते हैं इससे यदि बिल्कुल नए किस्म का ऋण लेना हो तो उस की प्राप्ति की आशाएँ कम हो जाती हैं। दूसरी ओर यदि बहुत लम्बी अवधि के ऋण हों तो वह भी ठीक नहीं क्योंकि फिर लोग ऋण देने में हिचकिचाहट करते ह।

2. ऋणों के प्रकार

भारत सरकार के राज्य ऋण के निम्नलिखित दो मुख्य भेद हैं:—

(1) भारत की समेकित निधि पर वहित ऋण।

(2) राज्य लेखे के अन्तर्गत आने वाला ऋण।

समेकित निधि पर वहित ऋण के पुनः दो मुख्य भेद हैं :

(1) अन्तर्देशीय ऋण।

(2) बहिर्देशीय ऋण।

अन्तर्देशीय ऋण के दो भाग हैं :

(1) दीर्घकालीन अथवा अक्षय ऋण।

(2) अल्पकालीन ऋण।

अल्पकालीन ऋण के तीन भेद हैं :

(1) सरकारी हुण्डियाँ (Treasury Bills),

(2) अर्थोपाय अग्रिम (Ways and Means Advances), तथा

(3) विश्व बैंक के ऋणपत्र (Securities of World Bank)।

बहिर्देशीय ऋण के साधारणतया तीन प्रभाग हैं :

(1) पौंड पावना (Sterling Debt),
(2) डालर, तथा
(3) अन्य ।

राज्य लेखे के अन्तर्गत निक्षेप निधियाँ तथा फण्ड ये दो ऋण आते हैं ।

ऋण भेद का एक और तरीक़ा भी है:—

(1) व्याजी अर्थात् वे ऋण जिस पर व्याज देना सरकार की ज़िम्मेदारी है, और

(2) बेव्याजी अर्थात् वे ऋण जिन पर कोई व्याज नहीं दिया जाता ।

द्वितीय महायुद्ध काल के निम्नलिखित ऋणों पर सरकार को कोई व्याज नहीं देना पड़ता था :

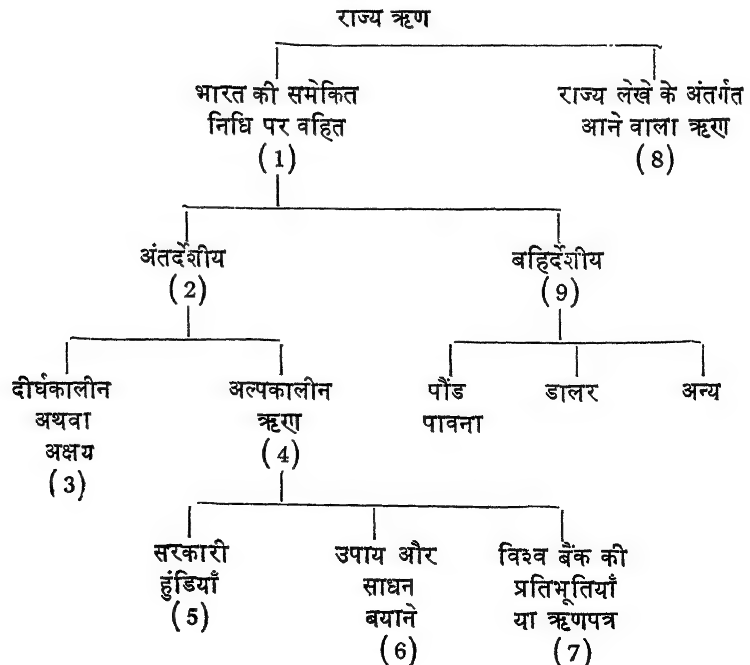
(1) थ्री इयर्स इन्टरेस्ट फ्री डिफ़ेन्स बाण्ड,
(2) फ़ाइव इयर्स इन्टरेस्ट फ्री प्राइज़ बाण्ड, 1946 ।

राज्य लेखे में शामिल होने वाले ऋण कभी बहिर्देशीय नहीं होते, वे अन्तर्देशीय ही होते हैं । इसी तरह बहिर्देशीय ऋण में भी अल्पकालीन ऋण नहीं होता ।

ऋणों के प्रकारों को चार्ट के रूप में नीचे व्यक्त किया गया है :—

चार्ट 4

राज्य ऋण के प्रकार



इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है :—

(1) भारत की समेकित निधि पर वहित ऋण :—संविधान के अनुच्छेद 292 तथा 293 में भारत सरकार और उसी प्रकार राज्य सरकारों को अपनी-अपनी समेकित निधियों की प्रतिभूति पर ऋण लेने का अधिकार दिया गया है। चूँकि यह ऋण समेकित निधियों पर वहित होता है इसलिए इससे हुई प्राप्ति अथवा किए गए भुगतान से समेकित निधि की प्राप्ति अथवा उसका ह्रास समझा जाता है। इस ऋण के बारे में सरकार को अबाध रूप से अधिकार है। अनुच्छेद 292 में कहा गया है : "भारत की समेकित निधि की प्रतिभूति पर, ऐसी सीमाओं के भीतर—यदि कोई हो—जिन्हे संसद् समय समय पर विधि द्वारा नियत करे उधार लेने तथा—ऐसी सीमाओं के भीतर, यदि कोई हों—जिन्हे इस प्रकार नियत किया जाए प्रतिभूति देने तक संघ की कार्यपालिका शक्ति विस्तृत है।" चूँकि संसद् ने अभी तक कोई राशि निश्चित नहीं की है अतएव कार्यकारिणी सरकार जितना आवश्यक हो उतना ऋण ले सकती है।

(2) अन्तर्देशीय ऋण:—भारत की समेकित निधि पर वहित अन्तर्देशीय ऋण वे है जिनके खरीदार (Subscribers) इसी देश के व्यक्ति अथवा संस्थाएँ है। छमाही अग्रिम राशियों से लेकर बड़ी संख्या के दीर्घकालीन ऋण भी इसी वर्गीकरण के अन्तर्गत आते हैं।

(3) दीर्घकालीन ऋण:—भारत की समेकित निधि पर वहित अन्तर्देशीय दीर्घकालीन ऋण वे हैं जो साधारणतया सरकारी तौर पर आयव्ययक में घोषित नीति के अनुसार लिए जाते है। इन्हें दीर्घकालीन ऋण इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये 12 महीने से कम की अवधि के नहीं होते। इन ऋणों के आधुनिक उदाहरण हैं : (1) 3.5 प्रतिशत 1954-59 ऋण, (2) 3.5 प्रतिशत 1961 ऋण। इन दीर्घकालीन ऋणों की एक और किस्म है और वह है निरावधि ऋण (Interminable Loan)। इसी को अक्षय ऋण भी कहते हैं। निरावधि ऋण में सरकार केवल व्याज देने का वायदा करती है और ऋण चुकाया जाए अथवा नही, इसका अधिकार सरकार को ही रहता है। महायुद्ध के पूर्व ऋण प्रायः इसी प्रकार के होते थे।

दीर्घकालीन ऋण के चाहे फिर वे सावधि हों अथवा निरवधि प्रायः दो स्वरूप होते हैं : (1) निधिपत्र (Stock Certificate) तथा (2) रुक्का (Promissory Note)। निधिपत्र एक तरह का प्रमाण पत्र होता है जिसमें यह उल्लेख रहता है कि खास ऋण की कितनी मात्रा निधिपत्र धारक (Certificate Holder) ने सरकार को दी है। निधिपत्र रिज़र्व बैंक के राज्य ऋण कार्यालय में दर्ज होते हैं और उन्हें बिना बैंक को सूचित किए बेचा नहीं जा सकता। रुक्का भी एक तरह का प्रमाण पत्र है जिसमें यह उल्लेख रहता है कि किस ऋण का कितना भाग रुक्का-धारक ने सरकार को दिया है। साधारणतया बड़ी राशियों को निधिपत्रों के रूप में और छोटी राशियों को ऋणों को देने वाले रुक्कों के रूप में रखते हैं। पहले दीर्घकालीन ऋण का एक और स्वरूप हुआ करता था जिसे वाहक बॉण्ड (Bearers Bond) कहते थे। ये करेन्सी नोटों की तरह होते

थे जिसके साथ व्याज के कूपन भी लगे होते थे पर 1919* से इनका उपयोग खत्म हो गया है।

पारस्परिक तुलना की दृष्टि से निधिपत्र तथा रुक्के के बीच निधिपत्र श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इसके खोने का डर नहीं होता। मूलधन वापिस लेते समय किसी दूसरे द्वारा पत्र ले जाने से काम नहीं बनता क्योंकि खरीदार का नाम आदि बैंक के कार्यालय में दर्ज होता है। यदि पत्र के स्वामित्व में कोई फेर-बदल करना हो तो बैंक के साथ एक हस्तान्तरण करार करना पड़ता है। एक और फ़ायदा यह है कि सरकारी ऋण कार्यालय द्वारा दिए गए आदेश (Warrant) पर व्याज चाहे किसी खज़ाने पर मिल सकता हो उसके साथ निधि पत्र दिखलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। रुक्कों में दूसरी और सहूलियत ज़्यादह है। पत्र के पीछे पृष्ठांकन कर उसे किसी अन्य को दिया जा सकता है। हाँ, व्याज केवल उसी खजाने से मिल सकता है जिसका पत्र में उल्लेख हो। वाहक बाण्ड बिल्कुल ही असुरक्षित होते हैं। ये रुक्के बीच के हैं। निधिपत्रों और रुक्कों को परस्पर परिवर्तित किया जा सकता है लेकिन यह रिज़र्व बैंक के माध्यम से ही संभव है। इसके लिए रिज़र्व बैंक कुछ शुल्क लेता है।

(4) अल्पकालीन ऋण:—भारत की समेकित निधि पर वहित अन्तर्देशीय ऋण का यह एक प्रकार है जो सरकार द्वारा दिक्कत के समय थोड़े समय के लिए रिज़र्व बैंक से लिया जाता है। इसके तीन भेद हैं—सरकारी हुण्डियाँ, अर्थोपाय अग्रिम और विश्व बैंक की प्रतिभूतियाँ।

(5) सरकारी हुंडियाँ (Treasury Bills):—ये पहले रिज़र्व बैंक और जनता दोनों को ही बेची जाती थीं पर इनका विक्रय अधिकार अब केवल रिज़र्व बैंक के प्रचालन विभाग (Issue Department) को ही है। सरकारी हुंडियाँ बेचने के माने यह हैं कि जनता या बैंक सरकार को उस हुण्डी में बतलाई गई राशि क़र्ज़ के रूप में देती है। बाद में हुण्डी दिखलाकर राशि वापिस ली जा सकती है। अर्थोपाय अग्रिम की तुलना में ये अधिक अवधि के लिए होती है। अर्थोपाय अग्रिम त्रैमासिक कमी की पूर्ति के लिए होते हैं; सरकारी हुंडियाँ नौ से 12 महीने तक की अवधि के लिए। सरकारी हुंडियाँ जब जनता को बेची जाती थीं तब रिज़र्व बैंक के बैंक विभाग की सभी शाखाओं (दिल्ली को छोड़कर) पर यह उपलब्ध होती थीं। लेकिन रिज़र्व बैंक को बेची जाने वाली सरकारी हुंडियाँ केवल बंबई शाखा पर ही बेची जाती हैं।

सरकारी हुंडियाँ बेचने का तरीका यह है कि जब कभी सरकार इनको बेचने का निश्चय करती है, समाचार पत्रों में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की जाती है जिसमें निविदा (Tender) देने की विधि, कुल राशि, सिक्के जिनमें ऋण लिया जाएगा आदि बातें दी हुई होती हैं। समाचार पत्रों में प्रकाशन के साथ साथ प्रमुख बैंकों और व्यावसायिक केन्द्रों को भी इसकी सूचना दे दी जाती है। निविदा में ग्राहक यह व्यक्त करते हैं कि किस दर पर हुंडियाँ लेने को तैयार हैं। निश्चित दिन के बाद निविदे खोले जाते हैं और जिस निविदे की दर मुनासिब समझी जाती है उस पर हुंडियाँ बेच दी जाती हैं। हुण्डियाँ

*1919 में 1945-55 का 5 प्रतिशत का ऋण लिया गया था जो वाहक बाण्ड के रूप में था। इसी तरह पिछली शताब्दी में लिए गए $3\frac{1}{2}$ प्रतिशत का 1854-55 का ऋण भी वाहक बाण्ड में था। ये दोनों ऋण चुकते किए जा चुके हैं व बाद में सरकार ने इनका उपयोग न करना निश्चित किया है।

हमेशा 25,000 रुपए, 50,000 रुपए, 1 लाख रुपए, 20 लाख रुपए तथा 50 लाख रुपए की राशि में बेची जाती हैं। दूसरा तरीका मध्यवर्ती सूचना (Intermediate tap) का तरीका हैं। इसमें सरकार स्वयं हुंडियों की दर निश्चित करती है और बाद में उसे रिज़र्व बैंक से बिकवाती है। अवधि पूरी होने पर मूल्य रिज़र्व बैंक की उन शाखाओं से चुकाया जाता है जहाँ से ये बेची गई हों।

(6) अर्थोपाय अग्रिम:—वे राशियाँ हैं जो रिज़र्व बैंक के साथ हुए समझौते के अनुसार भारत सरकार को रिज़र्व बैंक से अल्पकालीन ऋण के रूप में लेनी पड़ती है। उक्त समझौते के अनुसार भारत सरकार को अपनी सारी रोकड़ जमा (Cash Balance) रिज़र्व बैंक के पास रखनी पडती है जिसके बदले में रिज़र्व बैंक सरकार के सामान्य बैंकिंग कार्यों की देखभाल करता है। समझौते की यह भी शर्त है कि हमेशा सरकार की रोकड़ जमा एक विहित मात्रा से कम नहीं होनी चाहिए। कम होते ही 50 लाख रुपए की मियाद से अर्थोपाय अग्रिम लेने पड़ते हैं। अर्थोपाय अग्रिम खरीद लेने के प्रमाण स्वरूप राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर किया एक वचन पत्र रिज़र्व बैंक को दे दिया जाता है। जैसे ही सरकार के नक़दी धन में वृद्धि हो जाती है व्याज सहित अर्थोपाय अग्रिम बैंक को चुकाना पड़ता है। व्याज सहित अग्रिम लौटाए जाने के साथ वचन पत्र रद्द कर दिया जाता है।

(7) विश्व की बैंक प्रतिभूतियाँ:—भारत सरकार 1946 में विश्व बैंक (World Bank) की सदस्य बनी थी। 1947 तक इस बैंक में भारत के हिस्से के स्वरूप तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि (International Monetary Fund) के अंशदान के स्वरूप भारत ने क्रमश: चार करोड़ तथा 40 करोड़ डालर इन संस्थाओं को दिया था। अधिकतर यह अंशदान अपरक्राम्य व्याज रहित प्रतिभूतियों (Unconvertible Interest Free Securities) के रूप में दिया गया था। अतएव अब जब कभी बैंक को अथवा मुद्रानिधि को नक़दी धन की आवश्यकता पड़ती है तो उन प्रतिभूतियों में से कुछ को बेच दिया जाता है इस प्रकार अल्पकालीन ऋण उपलब्ध हो जाता है।

किसी विशेष परिस्थिति में सरकारी हुंडियों का प्रयोग किया जाना चाहिए अथवा अर्थोपाय अग्रिम, यह तीन बातों पर निर्भर होता है: (1) आवश्यकता की मात्रा (2) आवश्यकता की अवधि (3) पारस्परिक मूल्य। यदि थोड़े ही समय के लिए आवश्यकता होती है तो, अर्थोपाय अग्रिम का उपयोग करते हैं। इसी तरह थोड़ी मात्रा की ज़रूरत होने पर भी अर्थोपाय अग्रिम को ही लेते हैं। पारस्परिक मूल्य का विचार महत्त्वपूर्ण है। अर्थोपाय अग्रिम जैसे ही सरकार के पास नक़दी धन में वृद्धि हो, किसी समय चुकाए जा सकते हैं। इस प्रकार सरकार को उतने ही समय के लिए व्याज देना पड़ता है जितने समय के लिए वे सरकार के पास हों। लेकिन सरकारी हुंडियों में ऐसी बात नहीं। उन्हें निश्चित अवधि के पहले नहीं चुकाया जा सकता और इस प्रकार सरकार को उस काल तक व्याज देते रहना पड़ता है। आजकल भारत सरकार अर्थोपाय अग्रिम का उपयोग नहीं करती। वह सरकारी हुंडियों से ही काम चलाती है। लेकिन राज्य सरकारें अधिकतर अर्थोपाय अग्रिम ही लेती हैं।

(8) राज्य लेख के अन्तर्गत आने वाले ऋण:—संविधान के अनुच्छेद 266 (2) के अनुसार राज्य के राजस्व व समेकित निधि पर वहित ऋण की प्राप्तियों के सिवा अन्य सभी प्राप्तियाँ लोक लेखे के अन्तर्गत आती हैं। इन प्राप्तियों में कुछ

ऐसी होती हैं जिनका सरकार उपयोग करती है किन्तु उन्हें जब कभी आवश्यकता हो वापस करना पड़ता है। ये ऋण इस अर्थ में कहलाते हैं कि सरकार को इन पर ब्याज देना पड़ता है और ये खास अवधि के लिए होते हैं। इन ऋणों के उदाहरण* हैं :

(क) पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक निक्षेप राशियाँ,
(ख) राष्ट्रीय बचत सर्टिफ़िकेट,
(ग) दस वर्षीय डिफेंस डिपाज़िट,
(घ) क्यूम्यूलेटिव टाइम डिपाज़िट सर्टिफ़िकेट ।

(क) पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक निक्षेप राशियाँ : ये वे राशियाँ हैं जिन्हें देश भर में जनता में बचत की आदत डालने के लिए पोस्ट आफ़िस ने प्रारंभ किया है। पोस्ट आफ़िस के इस बचत बैंक में कम से कम दो रुपए व अधिक से अधिक 15,000 रुपए एक व्यक्ति द्वारा जमा किए जा सकते हैं। संस्था लेखों, संयुक्त लेखों, ज़मानती जमा लेखों आदि को छोड़कर शेष लेखों पर 10,000 रुपए तक की राशि तक 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज दिया जाता है। 10,000 रुपए से अधिक पर $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज मिलता है। ब्याज पर आयकर नहीं देना पड़ता।

(ख) राष्ट्रीय बचत सर्टिफ़िकेट : 12 वर्ष के ये सर्टिफ़िकेट 1 नवम्बर 1962 से प्रारंभ किए गए हैं। पूर्वोक्त रक्षा सेविंग सर्टिफ़िकेट की भाँति दो साल से अधिक अवधि के बाद भुनाने पर उन पर ब्याज मिलता है। पूरे 12 वर्ष के बाद भुनाने पर 100 रुपए के सर्टिफ़िकेट का मूल्य 175 रुपए हो जाता है।

(ग) दस वर्षीय डिफेंस डिपाज़िट सर्टिफ़िकेट्स : ये 50 रुपए के गुणकों में बेचे जाते हैं। अकेला व्यक्ति अधिक से अधिक 25,000 रुपए के मूल्य के सर्टिफ़िकेट खरीद सकता है। साथ मिलकर 50,000 रुपए तक के मूल्य के खरीदे जा सकते हैं। इन पर $4\frac{1}{2}$ प्रतिशत की दर से ब्याज दिया जाता है।

---

*जून 1957 के पहले अल्प बचतों में पोस्ट ऑफ़िस कैश सर्टिफ़िकेट, रक्षा सेविंग सर्टिफ़िकेट, राष्ट्रीय बचत सर्टिफ़िकेट तथा दस वर्षीय राष्ट्रीय योजना सर्टिफ़िकेट भी हुआ करते थे। पोस्ट आफ़िस कैश सर्टिफ़िकेट कभी भी भुनाए जा सकते थे पर साधारणतया वे पाँच साल के लिए होते थे। पूरे एक वर्ष के लिए यदि ये राशियाँ सरकार के पास पड़ी रहतीं तो सर्टिफ़िकेट खरीदने वाले को बोनस भी मिलता था। पूरी अवधि तक राशियाँ सरकार के पास रहने पर ब्याज चक्रवृद्धि दर पर मिला करता था। रक्षा सर्टिफ़िकेट की राशियाँ साधारणतया दस साल के लिए सरकार को उपलब्ध हुआ करती थीं। दो साल से अधिक समय के लिए सरकार के पास होने पर ब्याज मिलता था। पूरे दस वर्ष तक रहने पर साढ़े तीन प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज मिलता था। दस वर्षीय योजना सर्टिफ़िकेट 25 रुपए और 50 रुपए के मूल्य के हुआ करते थे। इनका भुगतान वर्ष भर के अन्दर भी हो सकता था। अथवा पूरी होने पर 25 रुपए वाले को 36 रुपए 4 आने और 50 रुपए वाले को 72 रुपए 7 आने दिए जाते थे।

(घ) क्यूम्यूलेटिव टाइम डिपाज़िट सर्टिफ़िकेट:—ये सर्टिफ़िकेट तीन तरह के होते हैं : (1) पाँच वर्ष में परिपक्व होने वाले (2) दस वर्ष में परिपक्व होने वाले तथा (3) 16 वर्ष में परिपक्व होने वाले। पाँच वर्ष वाले पर 1/12 प्रतिशत चक्रवृद्धि व्याज मिलता है तथा दस वर्ष पर 5/24 प्रतिशत।

(9) बहिर्देशीय ऋण:—बहिर्देशीय ऋण के उदाहरण (1) विश्व बैंक से दामोदर घाटी योजना तथा कृषि उन्नति के लिए लिए गए ऋण (2) अमरीका से लिया गया गेहूँ ऋण तथा (3) रेल ऋण पत्र (Railway Debenture stock) तथा इंग्लैण्ड में उद्धृत अन्य पौंड-पावना ऋण आदि हैं। विश्व बैंक के अतिरिक्त भारत सरकार ने अमेरिका रूस और इंगलैण्ड से भी विदेशी ऋण लिए है।

विश्व बैंक से पहला ऋण अगस्त 1947 में रेलों के लिए लिया गया था। दूसरा 1947 में कृषि विकास के लिए लिया गया था व तीसरा अप्रैल 1950 में विद्युत् विकास योजनाओं के लिए लिया गया था। चौथा ऋण 1953 में दामोदर घाटी योजना के लिए लिया गया था जिसकी राशि 19·5 करोड़ रुपए है। अभी हाल में विश्व बैंक ने भारतीय रेलों के विकास के लिए पुनः ऋण देने का वायदा किया है।

अमरीका से गेहूँ ऋण के अतिरिक्त अन्य "तकनीकी सहायता" (Technical Co-operation Aid) उल्लेखनीय है। सहायता का पहला करार भारत सरकार और अमरीकी सरकार के बीच 1955 में हुआ था उसके बाद क्रिया करार (Operational Agreement) होते रहते हैं जिनसे समय-समय पर भारत को तकनीकी सामग्री आदि की सहायता मिलती है।

रूसी ऋण भिलाई इस्पात कारखाने के लिए मशीन आदि के लिए रूस सरकार से फरवरी 1955 के एक करार के अनुसार लिया गया है। इस ऋण में पहले सामग्री उपलब्ध कराई जाती है और बाद में उसके मूल्य के बराबर की राशि कर्ज़ के रूप में मानी जाती है।

3. ऋण लेने की प्रक्रिया

ऋण कब और कितना लिया जाएगा यह वित्त मंत्रालय द्वारा रिजर्व बैंक की सलाह से तय किया जाता है। तय होने पर इसकी सूचना रिज़र्व बैंक को मिल जाती है और बैंक के राज्य ऋण कार्यालय सरकारी गज़ेट व अन्य प्रमुख अखबारों में उसकी विज्ञप्ति प्रकाशित कर देते हैं जिनमें निम्नलिखित बातें दी जाती है :

(1) तारीख—जिस दिन तक ऋण लिया जाएगा,
(2) कुल ऋण की मात्रा,
(3) व्याज की दर,
(4) ऋण जारी किए जाने की तारीख तथा यदि किसी पुराने ऋण को परिवर्तित कराना हो तो परिवर्तन की शर्तें,
(5) ऋण चुकाए जाने की तिथि,
(6) स्थान जहाँ ऋण स्वीकार किया जाता हो, तथा
(7) आवेदन का स्वरूप।

विज्ञप्ति के बाद आवेदन शीघ्र ही रिजर्व बैंक के सभी कार्यालयों, स्टेट बैंक की शाखाओं तथा खजानों से उपलब्ध होना शुरू हो जाता है। आवेदन में वे सब बातें तो होती ही हैं जिनका विज्ञप्ति में जिक्र हुआ हो उसके अतिरिक्त कभी-कभी निम्नलिखित बातें भी होती हैं :

(1) ऋण किस क़िस्म में लिया जाएगा, अर्थात् चैक अथवा कैश अथवा सरकारी प्रतिभूतियों (Government Securities) में,
(2) प्रतिभूतियों का स्वरूप और उनका परिमाण, तथा
(3) खजाने जिन पर ब्याज लेना संभव है।

ऋण के स्वरूप के अनुसार अलग-अलग आवदन पत्र हुआ करते हैं। यदि निधि पत्रों के बदले में ऋण देना हो तो रक़म जमा करते ही निधि पत्र मिल जाते हैं। पर रुक्कों के विषय में ऐसी बात नहीं। रक़म जमा करने पर पहले एक अन्तरिम रसीद मिलती है व बाद में रुक्के।

जैसे जैसे ऋण इकट्ठा होता रहता है रिज़र्व बैंक तथा स्टेट बैंक की स्थानीय शाखाएँ केन्द्रीय शाखा को सूचित करती रहती हैं। पर जब वांछित राशि पहुँच जाती है तो केन्द्रीय शाखा से हर एक शाखा को अधिक ऋण लेने से रोकने की आज्ञा दी जाती है। इस तरीके में एक अपवाद पट (Tap) प्रथा का है जिसमें कोई निश्चित संख्या नहीं होती और अवधि भी अनिश्चित तिथि तक रहती है।

इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि सरकारी ऋण सामान्य अभिदाताओं से बिरले ही सीधे लिए जाते हैं। साधारणतया अधिकांश ऋण बैंकों और इस प्रकार की अन्य संस्थाओं के माध्यम से लिया जाता है जिसके बदले में रिज़र्व बैंक को उन्हें दलाली देनी पड़ती है। दलाली की दर विज्ञप्ति में ही दी हुई होती है। यह काम सभी बैंकों को नहीं सौंपा जाता। प्रायः यह काम स्टेट बैंक आफ़ इण्डिया द्वारा ही होता है। जब ऋण पहले के किसी ऋण के परिवर्तन के रूप में दिया जाता है तो सरकार अभिदाता से परिवर्तन शुल्क लेती है। शुल्क से हुई प्राप्ति में पूर्वोक्त अन्य संस्थाओं का भी हिस्सा होता है। सरकारी ऋण कार्यालय की दृष्टि से केन्द्रीय और राज्य सरकारों के नवीन ऋणों के उगाहने की प्रक्रिया एक सी ही होती है फ़र्क केवल यह है कि राज्य सरकार यदि वह चाहे, तो अपने ऋण की पूर्ण राशि उपलब्ध कराने के लिए अधिकृत बीमा कराने वालों (Authorised Under writers) की मदद ले सकती है। बीमे वाले कुछ खास तरह के हो सकते हैं जिन्हें कुछ शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं।

विदेशी ऋणों के बारे में प्रक्रिया यह है कि जब किसी देश से ऋण लेना हो तो उसके साथ एक करार* करना पड़ता है। प्राय : करार के पहले उस देश का एक शिष्ट-मंडल भारत में आकर ऋण की आवश्यकता व अन्य शर्तों पर सरकार से परामर्श करता है। बाद के ऋण यदि समान प्रयोजनों पर हों तो इसकी आवश्यकता नहीं होती। उदाहरणार्थ अमरीका के साथ हुए एक मुख्य तकनीकी सहायता क़रार

---

*भारत सरकार और बर्मा सरकार के बीच हुए करार के लिए (जो उदाहरण स्वरूप दिया गया है) परिशिष्ट 4 देखिए।

1948 में हुआ था। उसके बाद यदि अमरीकन कांग्रेस की अनुमति हो तो अमरीका की सरकार के साथ बगैर शिष्टमंडल आदि के आने पर क्रिया क़रार हो सकते हैं। लेकिन विश्व बैंक के ऋणों के सम्बन्ध में यह प्रथा प्रत्येक ऋण के साथ बरती जाती है । बैंक का एक शिष्टमंडल अपनी रिपोर्ट जाँच कर बैंक को देता है जो उस पर विचार कर फिर तय करता है कि भारत सरकार को ऋण दिया जाए या नहीं। ऋण की शर्तें आदि बैंक के साथ हुए क़रार में उल्लिखित रहतीं हैं।

4. ऋण पर व्याज*

सरकारी ऋण पर व्याज की दर बाजार की हालत पर निर्भर होती है । सामान्यत: जिस दर पर रिज़र्व बैंक अनुसूचित बैंकों को उधार देने के लिए तैयार होता है उसी दर पर सरकारी ऋण भी लिए जाते हैं। पर इसमें फेर बदल हो सकता है। इस संबंध में ऋण की अवधि महत्त्वपूर्ण है। यदि अवधि ज़्यादा हो तो दर भी ज़्यादा होगी। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ऋण की मात्रा की अधिकता को ध्यान में रखते हुए कुछ विद्वान कहते आए हैं कि भारत सरकार के ऋण अधिक अवधि के लिए होने चाहिए यद्यपि उस पर उन्हें व्याज अधिक देना पड़ेगा।

निधि पत्रों पर व्याज आदेशों (Warrants) द्वारा दिया जाता है। आदेशों के साथ, जैसा पहले बतलाया गया था, निधि पत्र ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। व्याज किसी खज़ाने या बैंक की शाखा पर तो मिल ही सकता है, यदि आवश्यकता पड़े तो निधिपत्र-धारक के घर पर भी चुकाया जा सकता है। व्याज लेते समय रुक्कों को दिखलाने की आवश्यकता पड़ती है, और उन पर पृष्ठांकन (Endorsement) करना पड़ता है। व्याज लेने वाले को एक रसीद देनी पड़ती है। पहले जब वाहक बाँड प्रचलित थे बाँड के साथ व्याज के कूपन संलग्न हुआ करते थे, जिन्हें निश्चित दिन सरकारी ऋण कार्यालय की किसी शाखा पर जहाँ वह बाँड दर्ज किया गया हो प्रस्तुत कर व्याज लिया जा सकता था। बाँड पर व्याज छमाही दिया जाता था। रुक्कों पर व्याज रिज़र्व बैंक के सरकारी ऋण कार्यालयों पर दिया जाता है। इसकी सूचना समाचार पत्रों में दी जाती है।

विदेशी ऋणों के संबंध में सरकार ऋण के लेते समय व्याज की दर क़रार में ही निश्चित करती है। उदाहरणार्थ 1951 में अमरीका से जो गेहूँ ऋण लिया गया था उसके क़रार में ही यह विहित है कि ऋण पर 2·5 प्रतिशत वार्षिक व्याज होगा जो छमाही दिया जाएगा। रूस से जो ऋण लिया गया है उसमें भी ऋण की दर 2·5 प्रतिशत ही है। विश्व बैंक से जो ऋण लिया जाता है उसमें दर किसी

*एक लेखक ने ऋण पर व्याज की दर की दृष्टि से भारतीय राज्य ऋण के काल को चार भागों में विभक्त किया है :—

1. 1922-23 से 1927-28 तक का ह्रासोन्मुख व्याज का काल,
2. 1928-29 से 1931-32 तक का वृद्धि प्रवर व्याज का काल,
3. 1932-33 से 1938-39 तक का पुनश्च ह्रासोन्मुख व्याज का काल, तथा
4. 1938-39 से 1945-46 तक का पुनश्च वृद्धि प्रवर व्याज का काल।

सरकार के वैयक्तिक क़रार पर निर्भर नहीं होती। यह बैंक की सार्वजनिक नीति पर निर्भर होती है। यह सब राष्ट्रों के लिए समान होती है। जून 1956 में यह दर 15 वर्ष की अवधि के ऋणों के लिए $4\frac{3}{4}$ प्रतिशत प्रतिवर्ष है, 15 वर्ष से अधिक की अवधि के ऋणों के लिए पाँच प्रतिशत। विदेशी ऋणों पर व्याज विदेशी अथवा भारतीय मुद्रा दोनों में ही चुकाया जा सकता है जो करार विशेष पर निर्भर होता है। प्रक्रिया की दृष्टि से भी विदेशी ऋण तथा उसके व्याज के चुकाने के लिए खास तरह के प्रबन्ध करने पड़ते है। रिज़र्व बैंक यह कार्य उस देश विशेष के सरकारी बैंक की सलाह से करता है।

पिछले आठ साल में भारत सरकार को व्याज के तौर पर कितनी राशियाँ देनी पड़ी है यह अगले पृष्ठ पर सारणी 1 से प्रगट होगा।

5. ऋण प्रतिदान

ऋण प्रतिदान (Redemption of debt) के दो मुख्य तरीक़े हैं।

(1) ऋण परिवर्तन (Conversion of debt), तथा

(2) ऋण का वास्तविक रूप से लौटाया जाना।

प्राय: ऐसा होता है कि एक ऋण की अवधि पूरी होने के पहले ही सरकार को दूसरे ऋण की आवश्यकता पड़ जाती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकार नया ऋण जारी कर सकती है पर इसमें पहले ऋण को चुकाने के लिए पर्याप्त वित्त होना चाहिए जो घाटे के बजट (Deficit Financing) के दिनों में सदैव सम्भव नहीं होता। अतएव आधुनिक सरकारें प्राय: ऐसा करती हैं कि जिस वर्ष कोई पुराना ऋण अवधि पूरी होकर चुकाया जाने वाला होता है, उसी वर्ष एक नया ऋण जारी कर दिया जाता है ताकि पहले के अभिदाता दूसरे के अभिदाता बन जाएँ। इस प्रणाली से सरकार को यह फ़ायदा होता है कि उसे दायित्व तुरन्त नहीं निभाना पड़ता। साथ ही नुकसान यह होता है कि नया ऋण सिर्फ़ नाम के लिए ही नया रहता है लेकिन उससे कोई खास प्राप्ति नहीं होती क्योंकि वह पहले के चुकाए जाने के लिए ही हो जाता है।

राज्य ऋण के सिद्धान्तों के विषय में पाठकों ने पढ़ा होगा कि ऋण उतना ही लिया जाना चाहिए कि जितना चुकाया जाना संभव हो। अतएव एक ऋण से दूसरे ऋण को फेरने के साथ-साथ सरकार को राजस्व से भी ऋण के वास्तविक लौटाए जा सकने का प्रबन्ध करना पड़ता है। चूँकि सारे ऋण को एक ही वर्ष में राजस्व से चुकता करना सम्भव नहीं है अत: सरकारें प्रतिवर्ष राजस्व प्राप्ति से कुछ न कुछ हिस्सा अलग करती रहती है जिसे "शोधन निधि" (Sinking Fund) कहते हैं। भारत में इस निधि के 1924 से प्रचलित होने का उल्लेख मिलता है। इसके पूर्व यह प्रथा न थी और ऋण प्राय: राजस्व अवशेष (Revenue Balances) से चुकाए जाते थे। राजस्व अवशेष से ही पूँजी व्यय हुआ करते थे ताकि ऋण उगाहने की आवश्यकता ही न पड़े। निश्चय ही उन दिनों राजस्व अवशेष बड़ी मात्रा में रहते होंगे। पर दिसम्बर 1924 में सर बैसिल ब्लैकेट के सुझाव से यह तय किया गया कि ऋण चुकाने के लिए एक ोधन निधि का निर्माण किया जाना चाहिए। इस निधि का प्रयोग अलाभप्रद योजनाओं पर व्यय करके ऋण टालने के लिए भी किया जाता है। इसीलिए लोक लेखा की शब्दावली में इस संचय को "ऋण ह्रास अथवा परिहारार्थ निधि" (Reduction or Avoidance of Debt) कहते हैं। 1924 की वह प्रथा अब भी चली आ रही है।

सारिणी 1*

भारतीय ऋण पर व्याज

(करोड़ रुपए में)

विवरण	56-57	57-58	58-59	59-60	60-61	61-62	62-63 (व. अ.)	63-64 (व अ.)
समेकित राशि पर वहित ऋणों पर व्याज								
(1) अन्तर्देशीय ऋणों पर	65·26	79·76	92·75	110·88	118·76	119·95	129·017	142·64
(2) बहिर्देशीय ऋणों पर	3·31	3·42	6·31	18·42	23·87	33·75	49·05	59·40
लोक लेखे में शामिल ऋणों पर व्याज	30·84	34·57	36·06	40·77	45·85	55·74	64·44	73·20
कुल	99·41	117·75	135·12	170·07	188·48	209·44	242·50	295·24

* केन्द्रीय सरकार के 1963-64 के आयव्ययक के ज्ञापन (पृष्ठ 113) पर आधारित ।

प्रारम्भ में शोधन निधि में प्रति वर्ष चार करोड़ रुपए तथा पिछले वर्ष की तुलना में नए वर्ष में जितना अधिक ऋण लिया गया हो उसका अस्सीवाँ हिस्सा दिया जाता था। निधि का प्रयोग निम्नलिखित प्रयोजनों पर होता था :

(1) रेल शोधन निधि,
(2) तत्कालीन पाँच प्रतिशत प्रतिवर्ष रुपए का ऋण चुकाने के लिए अलग से निर्मित निक्षेप निधि में अंशदान,
(3) तत्कालीन ब्रिटिश युद्ध ऋण का दायित्व स्वीकार करने के परिणामस्वरूप उसके शोधन के लिए,
(4) रेल वार्षिकी (Railway Annuities) के पूँजीगत भाग के लिए ।

पर 1933-34 में भुगतान राशि केवल तीन करोड़ रुपए प्रतिवर्ष* निर्धारित की गई। साथ ही उसके प्रयोजन में भी कुछ परिवर्तन हुआ। 1943-44 में युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण भुगतान के लिए अलग से राशि देना बिल्कुल बन्द कर दिया गया। इस रोक का एक कारण यह था कि 1943 तक इंग्लैण्ड का जो ऋण था वह पूरा चुकाया जा चुका था। 1947 से ऋण भुगतान के लिए राशियाँ पुन: निकाली जाने लगीं। तब से ऋण निवारणार्थ अथवा भुगतान के लिए प्रतिवर्ष पाँच करोड़ रुपए आयव्ययक में राजस्व पर भारित किए जाते हैं।

निवारणार्थ शोधन निधि में प्रतिवर्ष कितना अंशदान देना चाहिए इस पर समय-समय पर संसद् की लोक लेखा समिति विचार करती रही है। द्वितीय महायुद्ध के तुरन्त बाद ऋण की बढ़ती हुई राशि को देखकर समिति ने सिफ़ारिश की थी कि सरकार निधि के अंशदान की मात्रा के औचित्य पर विचार करे। पर इन दिनों घाटे के वित्त प्रबन्ध की पृष्ठभूमि में सरकार ने इस दिशा में कोई आवृत्ति नहीं की है।

निक्षेप निधियों के विषय में कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं जो सभी सरकारों द्वारा व्यवहृत होता हो। साधारणतया अलाभप्रद ऋणों के प्रतिशोधन के लिए ऋण की अवधि तथा अलाभप्रद कार्यों के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए निक्षेप निधियाँ निर्धारित की जाती हैं। यदि अलाभप्रद ऋण ऐसे कार्य के लिए प्रयुक्त हुआ हो जो राजस्व से किया जाना चाहिए था तो निक्षेप निधि थोड़ी होने से भी काम चल जाता है। ऋण से बनी सम्पत्तियाँ लम्बी अवधि की होने पर भी निधि की थोड़ी आवश्यकता पड़ती है। यदि निर्मित सम्पत्तियाँ लम्बी अवधि की हों—जैसे ऋण से प्राप्त धन से बना हुआ कोई बाँध—तो प्रतिदान व्यवस्था की आवश्यकता ही नही पड़ती क्योंकि उत्पादनकारी और लम्बी अवधि की होने के नाते उन

---

*1937-38 के लेखों पर अपने प्रतिवेदन में लोक लेखा समिति ने यह सुझाव दिया था कि तीन करोड़ रुपए प्रतिवर्ष निक्षेप राशि के अतिरिक्त रेलवे ऋण को चुकाने के लिए एक अलग निधि की आवश्यकता पर वित्त मंत्रालय को विचार करना चाहिए। वित्त मंत्रालय के मत से ऐसी आवश्यकता उत्पन्न नहीं हुई इसलिए तब से अब तक ऋण प्रतिदान के लिए दो तरह की निधियाँ अलग नहीं रखी जातीं।

(**देखिए** 1940-41 के लेखे पर लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन का परिशिष्ट 41)

प्रतिभूतियों से आवश्यक आय हो जाने का विश्वास रहता है । यदि प्रतिभूतियाँ कम अवधि की हों–जैसे कोई खेती का सामान आदि जो जल्दी ही ह्रास होने वाला हो तो उस अवस्था में ज़्यादा निधि-अंश दान की ज़रूरत पड़ती है। साधारणतया उत्पादक ऋणों के विषय में उस काल तक ऋण भुगतान किया जा सकता है जिस काल तक वे प्रतिभूतियाँ रहने वाली हों।

भारतीय स्वतन्त्रता (अधिकार, संपत्ति तथा दायित्व) आज्ञा, 1947 [Indian Independence (Rights, Property and Liabilities) Order, 1947] के अन्तर्गत ऋण प्रतिभूतियाँ तथा अन्य वित्तीय ज़िम्मेदारियों का (जो देश विभाजन के पूर्व गवर्नर जनरल के ऊपर आश्रित थीं) भार भारत सरकार पर है। व्यवस्था यह है कि भारत सरकार पहले उन ज़िम्मेदारियों को पारित करती है व वाद में पाकिस्तान सरकार से उनकी ज़िम्मेदारी के अनुपात में उनसे अंशदान लिया जाता है। डाक घर की निक्षेप राशियों, रक्षा, तथा राष्ट्रीय बचत सर्टिफ़िकेटों के बारे में पाकिस्तान से यह क़रार हुआ है कि 1948 तक के अपने-अपने क्षेत्रों में खरीदे सर्टिफ़िकेटों व राशियों के लिए उपयुक्त सरकारें दायित्व स्वीकार करेंगीं जिनमें आवश्यकतानुसार फेर बदल किया जा सकेगा । भविष्य निधियों (Provident Funds) की जिम्मेदारी सरकारी नौकर की मातृभूमि के अनुसार वहन किया जाना निश्चित हुआ है। आरक्षित निधियों, व्यावसायिक विभागों की पूँजी पर व्याज के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त मान्य किया गया है।

जब ऋण वास्तविक रूप से लौटाया जाता है तब उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है। सरकार ऋण विशेष के परिपक्व होने के तीन महीने पहिले गज़ट में सूचित करती है कि वह ऋण चुकाना चाहती है। सूचना मिलने पर ऋण-पत्र-धारी उसे निर्धारित खज़ाने या बैंक की शाखाओं पर भुनाकर मूलधन वापिस ले सकते हैं । वैसे तो अधि-नियम के अनुसार रिज़र्व बैंक ऋण भुगतान केवल अपने कार्यालय के माध्यम से ही कराने के लिए बाध्य है पर लोगों की सुविधा के लिए पूर्वोक्त विधि के अन्तर्गत रहते हुए यह खज़ानों पर भी होता है।

निधिपत्र वालों को मूलधन चुकाए जाने के पूर्व आखिरी व्याज अधिपत्र के साथ एक सूचना दी जाती है कि ऋण परिपक्व हो गया है और अभिदाता मूलधन वापिस ले सकता है। वापिस मिलने पर अभिदाता बैंक को एक रसीद देता है। यदि निधिपत्र किसी कारण खो गया हो तो पहले बैंक से उसकी एक प्रतिलिपि लेकर उसे जमा कराना पड़ता है पर ऋण वापिस मिलने के साथ पत्र लौटाया जाना अनिवार्य है। रुक्कों पर व्याज की तरह ही मूलधन केवल उसी खजाने से मिल सकता है जहाँ वे दर्ज हों। मूलधन उसी व्यक्ति को दिया जाता है जिसके नाम से वह पत्र हो। पहले जब वाहक बाँड हुआ करते थे तो उन्हें खज़ाने पर चुकाया जाता था। यह एक नियम है कि भुगतान की सूचना के बाद यदि 20 वर्ष तक मूलधन वापिस न ले लिया गया तो उस ऋण को प्रतिशोधित माना जाता है और उचित राशि राजस्व में जमा कर दी जाती है।

विदेशी ऋणों के लौटाए जाने का तरीका उन ऋणों के क़रारों में ही दिया जाता है। भारत में अमरीका के साथ इस तरह के जो करार हुए हैं उनमें ऋण की राशियाँ कुछ अवधि के बाद छमाही लौटाने की व्यवस्था है। रूसी ऋण के बारे में व्यवस्था

है कि वह 12 समान क़िस्तों में लौटाया जाएगा। इसी तरह की व्यवस्था विश्व बैंक के ऋण के बारे में भी है।

लेखे के दृष्टि से जैसे-जैसे ऋण का भुगतान होता जाता है बैंक अपने रजिस्टर में शुद्ध अवशेष के आँकड़े निकालता रहता है ताकि यह पता चल सके कि कितना ऋण शेष है। बैंक के इन आँकड़ों को समयानुसार लोक लेखा विभाग के आँकड़ों से मिला लिया जाता है क्योंकि जैसा कि पाठकों ने तीसरे अध्याय में पढ़ा होगा खज़ाने के सारे व्यवहारों की सूचना बराबर लेखा विभाग को दी जाती है।

6. ऋण सम्बन्धी अन्य प्रक्रियाएँ

ऋण सम्बन्धी कुछ अन्य उल्लेखनीय प्रक्रियाएँ इस प्रकार हैं :

(क) ऋण पत्रों का हस्तान्तरण:—रुक्कों का पृष्ठांकन कर एक व्यक्ति से दूसरे को हस्तान्तरित किया जा सकता है। निधिपत्रों को हस्तान्तरित करने के लिए रिज़र्व बैंक के साथ एक हस्तान्तरण विलेख (Transfer Deed) भरना पड़ता है जिसके खास प्रपत्र रिजर्व बैंक से मिलते हैं। इस पर स्टाम्प शुल्क नहीं लगता। निधिपत्रों का हस्तान्तरण अंशत: भी किया जा सकता है। हस्तान्तरण के पूर्व, धारक को पत्र पहले सरकारी ऋण कार्यालय में जमा करा देना पड़ता है।

(ख) ऋण पत्रों का पुर्नवीकरण:—पुनर्नवीकरण की आवश्यकता केवल रुक्कों में उत्पन्न होती है। जैसा पहले बताया जा चुका है व्याज अथवा हस्तान्तरण के लिए पत्र पर पृष्ठांकन करना पड़ता है जिससे वे थोड़े ही दिनों में भर जाते हैं। अथवा उस पत्र का धारक यदि मर जाए तो भी पुनर्नवीकरण की आवश्यकता पड़ती है। इस पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया यह है कि उसे पहले खज़ाने में जमा कराना पड़ता है। खज़ाने उसे सरकारी ऋण कार्यालय में भेज देते हैं जहाँ से नवीकृत पत्र मिल जाते हैं। लेकिन पुनर्नवीकरण के लिए फ़ीस देनी पड़ती है। फ़ीस की दर चार आने प्रतिशत प्रति रुक्का होती है।

(ग) प्रतिभूतियों का समेकन अथवा खण्डीकरण:—प्रतिभूतियों पर यदि व्याज अद्यतन रूप से दिया जा चुका है तो उन्हें समेकित अथवा खण्डों में विभाजित कराया जा सकता है। लेकिन यह सुविधा एक ही ऋण की प्रतिभूतियों के लिए है। यह नहीं कि विभिन्न ऋणों की विभिन्न प्रतिभूतियों को समेकित कराया जाए या एक ऋण की प्रतिभूति को विभिन्न ऋणों की विभिन्न प्रतिभूतियों में खण्डित किया जा सके। यह सुविधा निधिपत्रों के विषय में तथा रुक्कों के विषय में केवल 100 रुपए या उसकी गुणित राशियों तक ही लागू होती है। अर्थात् यदि 200 रुपए की प्रतिभूतियाँ हैं तो उन्हें 500 रुपए तक समेकित किया जा सकता है 450 रुपए के मूल्य का नहीं।

(घ) प्रतिभूतियों का परस्पर परिवर्तन:—प्रतिभूतियों का परस्पर परिवर्तन सम्भव है। इस प्रकार निधिपत्र रुक्कों में परिवर्तित कराए जा सकते हैं। लेकिन परिवर्तन किसी दिशा में क्यों न हो यह कार्य बैंक के माध्यम से ही होता है। रुक्कों से निधिपत्र लेते समय पहले वचनपत्रों पर

राष्ट्रपति के नाम पृष्ठांकन करना पड़ता है व बाद में एक स्वतन्त्र निवेदन भरना पड़ता है। इस सम्बन्ध में विस्तृत नियम "राज्य ऋण नियम" 1946 (Public Debt Rules, 1946) में दिए हुए है।

(च) विशिष्ट विकास निधि:—विदेशी ऋणो के लिए एक विशेष पद्धति है जिसे "विशिष्ट विकास निधि" कहते हैं। कुछ ऐसे ऋण है (उदाहरणार्थ रूस के साथ इस्पात ऋण, अमरीका के साथ गेहूँ ऋण) जो सोना या करेंसी के रूप में प्राप्त नहीं होते वरन् वस्तुओं के रूप में प्राप्त होते हैं। पर, व्याज और भुगतान के लिए उनका मूल्य जानना आवश्यक है। इसलिए व्यवस्था यह है कि जैसे-जैसे ये वस्तुएँ भारत में प्राप्त होती है उनके समान मूल्य की राशि इस निधि में जमा के रूप में दिखाई जाती है फिर जैसे-जैसे इसमें से सामान खर्च होता जाता है निधि से राशियाँ घटा दी जाती है। इससे एक तो विभिन्न सहायताओं के अन्तर्गत ऋण कैसे प्राप्त होता रहा है उसका लेखा रहता है, दूसरे सरकार को सारे ऋण के वितरण में एक संतुलित दृष्टि मिलती रहती है।

(छ) प्रतिभूतियों का बैंक में रखा जाना:—अन्त में एक और प्रक्रिया का उल्लेख करना चाहिए जो बड़ी मात्रा में लिए गए ऋणों की प्रतिभूतियों के विषय में व्यवहृत होती है। बैंक, बीमा कम्पनियाँ प्राय: अपनी प्रतिभूतियाँ रिज़र्व बैंक के पास ही जमा कर देते हैं जो इसके लिए अलग से एक खाता खोल देता है। खाते वालों को उनके खाते की हालत हर-छह महीने में सूचित कर दी जाती है। डाक घर के बचत लेखे की भाँति जब व्याज इकट्ठा हो जाता है तो वह भी इसी खाते में शामिल कर दिया जाता है।

7. ऋण प्रबन्ध

रिज़र्व बैंक अधिनियम की धारा 21(2) में विहित है कि सरकार बैंक से क़रार कर उसे राज्य-ऋण का भार सौंपेगी। इस विधान के अनुरूप 5 अप्रैल 1935 को बैंक से एक क़रार किया गया था जिसके अनुसार अब राज्य ऋण का सारा प्रबन्ध जिसमें नए ऋणों का जारी किया जाना भी शामिल है बैंक करता है। सच बात तो यह है कि किसी न किसी रूप में बैंक को आदि से अन्त तक ऋण की व्यवस्था करनी पड़ती है। ऋण कब व कितना लिया जाना चाहिए यह तय करना भले ही वित्त मंत्रालय का काम हो पर बैंक की सलाह के बिना मंत्रालय इस दिशा में अपने आप कुछ नहीं करता। ऋण पर व्याज की दर, भुगतान का तरीका, ये सभी बैंक की सलाह से ही तय किए जाते है। सिर्फ़ एक संस्था अवश्य है जो ऋण व्यवस्था में बैंक के अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्रता से अपना कार्य करती है और वह है, ऋण का लेखा रखने वाले महालेखापाल के केन्द्रीय राजस्व का विभाग। महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय में ऋण विषयक निम्नलिखित कार्य होते हैं:

(1) चुकाए गए ऋणों के अवशेष मालूम करना,

(2) ऋणों के मासिक अवशेषों का अन्दाज़,

(3) ऋण प्रतिदान योजना के अन्तर्गत विहित राशियों का समंजन,

(4) विदेशी ऋणों के विषय में लेखा-पद्धति निर्मित करना।

रिज़र्व बैंक में ऋण व्यवस्था का कार्य देखने के लिए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है सरकारी ऋण कार्यालय हैं। इसका संगठन इस प्रकार है : जहाँ-जहाँ बैंक की शाखाएँ हैं वहाँ प्रायः एक सरकारी ऋण कार्यालय भी है। इनके सिवा हैदराबाद तथा लखनऊ में भी शाखाएँ खोली गई हैं वहाँ उनका खास काम क्रमशः भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के ऋण तथा उत्तर प्रदेश जमींदारी बाँड के सम्बन्ध में व्यवस्था करना है। अन्य जगहों के दफ़्तर अपने-अपने क्षेत्र में बैंक की ऋण सम्बन्धी जिम्मेदारियाँ निभाते हैं।

राज्य ऋण कार्यालयों के क्षेत्रों का वितरण इस प्रकार है :

(1) सरकारी ऋण कार्यालय, बम्बई : इसके अन्तर्गत महाराष्ट्र, गुजरात के महालेखापाल के अधीन खज़ानों पर किए गए व्यवहार आते हैं।

(2) सरकारी ऋण कार्यालय, कलकत्ता : इसके अन्तर्गत पश्चिम बंगाल, बिहार, आसाम तथा उड़ीसा के महालेखापालों के अधीन तथा केन्द्र प्रशासित क्षेत्र मनीपुर, त्रिपुरा, अण्डमान के खज़ानों पर हुए व्यवहार आते हैं।

(3) सरकारी ऋण कार्यालय, दिल्ली : इसके अन्तर्गत पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू, कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के महालेखापाल के अधीन खज़ानों पर हुए व्यवहार आते हैं।

(4) सरकारी ऋण कार्यालय, मद्रास : इसके अन्तर्गत मद्रास तथा केरल के महालेखापाल के अधीन खज़ानों पर हुए व्यवहार आते हैं।

(5) सरकारी ऋण कार्यालय, बंगलौर : इसके अन्तर्गत मैसूर के महालेखापाल के अधीन खजानों पर हुए व्यवहार आते हैं।

(6) सरकारी ऋण कार्यालय, नागपुर : इसके अन्तर्गत महालेखापाल मध्यप्रदेश के अधीन खज़ानों पर हुए व्यवहार आते हैं।

(7) सरकारी ऋण कार्यालय, हैदराबाद : इसके अन्तर्गत महालेखापाल आन्ध्र-प्रदेश के अधीन खज़ानों पर हुए व्यवहार आते हैं।

इन कार्यालयों के अतिरिक्त बम्बई में रिज़र्व बैंक के मुख्य कार्यालयों में एक केन्द्रीय ऋण अनुभाग (Central Loan Section) है जो विभिन्न ऋण कार्यालयों के बीच समन्वय तथा नीति सम्बन्धी सलाह देने का कार्य करता है।

ऋण व्यवस्था के बारे में यह समझ लेना चाहिए कि राज्य सरकारों के ऋण की व्यवस्था भी रिजर्व बैंक द्वारा ही की जाती है। वास्तव में इन दोनों सरकारों के बीच ऋण समन्वय के लिए यह आवश्यक भी है जब तक कि आस्ट्रेलिया आदि देशों की तरह ऋण उद्धरण के लिए किसी अलग संस्था का निर्माण नहीं होना।

8. भारतीय राज्य ऋण

अन्त में भारत के सरकारी ऋण की विकास नीति तथा स्वरूप के बारे में कुछ जान लेना चाहिए।

(क) आकार : आधुनिक अर्थ में भारत सरकार का राज्यीय ऋण 1792 से शुरू होता है। 1792 में पहली बार भारतीय शासन के लिए कम्पनी ने 70 लाख

पौंड का ऋण लिया था। 1857-58 में यह ऋण 600 लाख पौंड के करीब था। 1858 में कम्पनी के शासन की बागडोर अंग्रेज़ी सरकार के हाथ में जाते ही ऋण का ायित्व भी उस सरकार ने स्वीकार किया। कम्पनी से संबंधित सारे का सारा ऋण अलाभप्रद था पर ब्रिटिश सरकार के काल में जो ऋण लिया गया वह सिंचाई, रेल आदि लाभप्रद कार्यों के लिए भी होता था। 1878 में हाउस आफ़ कामन्स की एक प्रवर समिति की सिफ़ारिश पर सरकार ने यह तय किया कि सरकारी राजस्व का जो अवशेष हो वह लाभप्रद कार्य तथा पुराने अलाभप्रद ऋण को चुकाने में प्रयुक्त किया जाए। इस नीति के अनुसार सरकारी ऋण अगले वर्षों में उस मात्रा में न लिया गया जितना कि पहले लिया जाता था। इस समय अधिकांश ऋण इंग्लैण्ड मे ही लिया जाता था क्योंकि सरकार का यह मत था कि भारत की तुलना में इंग्लैण्ड में ऋण अधिक आसान दर पर मिलता था। पर 1914 में प्रथम महायुद्ध के प्रारंभ होते ही इंग्लैण्ड में ऋण लेना कठिन हो गया और सरकार को भारतीय बाज़ार से ही ऋण उगाहना पड़ा। महायुद्ध के काल में इंग्लण्ड में भी ऋण लिया गया पर वह तुलना में थोड़ा था। प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ मे भारतीय ऋण 179·79 करोड़ रुपए था। युद्ध के बाद यही राशि 650·64 करोड़ रुपए हो गई थी। इसकी तुलना में स्टलिंग ऋण 1924 से 1930 के बीच 330·40 पौड से केवल 485·59 पौंड बढ़ा था। 1930 से 1939 के बीच सरकारी ऋण के विषय में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं हुई। 1939 में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने से ऋण की मात्रा में पुनः वृद्धि हुई। लेकिन इस काल में विदेशी ऋण में काफ़ी ह्रास हुआ था। भारत का रुपया ऋण जहाँ 1939 की तुलना में 1945 में 709·96 करोड़ रुपए से 1571·42 करोड़ रुपए हो गया था, विदेशी ऋण 469·10 करोड़ रुपए से 38·13 करोड़ रुपए रह गया था। 1945 के बाद से पहले युद्धोपरान्त पुर्ननिर्माण व बाद में पंचवर्षीय योजनाओं की वजह से भारतीय राज्य ऋण बराबर बढ़ता रहा है। 1939 की उपरोक्त राशियों की तुलना में 1963 (मार्च के अन्त तक) में भारत का रुपया ऋण 4571·56 करोड़ रुपए व विदेशी ऋण 1379·03 करोड़ रुपए हो गया है*।

(ख) स्वरूप विश्लेषण : स्वरूप विश्लेषण की दृष्टि से पिछले दस वर्षो के राज्य ऋण में निम्नलिखित विशषेताएँ दिखलाई देती हैं :

(1) अभिदाताओं को उनके सामर्थ्य के अनुसार ऋण देने का अवसर
(2) अल्प बचतों में वृद्धि
(3) अल्पकालीन ऋणों में वृद्धि
(4) व्याजोत्पादक परिसम्पदा में वृद्धि
(5) शीघ्र परिपक्व होने वाले ऋणों की संख्या में वृद्धि

नीचे इनके उदाहरण दिए जाते है :

(1) 1956-57 के पहले जितने ऋण लिए जाते थे वे एक ऋण के रूप में लिए जाते थे पर इस वर्ष से अभिदाताओं को उनकी शक्ति के अनुसार मौका देने के लिए रिज़र्व बैंक ने अलग-अलग तिथि में परिपक्क होने वाले ऋण लेने का निश्चय

* देखिए भारत सरकार का 1963-64 के आयव्ययक का भारवाहक ज्ञापन पृष्ठ 11।

किया है। उदाहरणार्थ 1956-57 में 150 करोड़ रुपए का ऋण तीन विभिन्न ब्याज दरों में जारी किया गया था :—

1. एक छह वर्षीय ऋण जिसकी दर 3·25 प्रतिशत थी व जो 1962 में परिपक्व हुआ।
2. एक 11 वर्षीय ऋण जिसकी दर 3·50 प्रतिशत है व जो 1967 में परिपक्व होगा।
3. एक 18 वर्षीय ऋण जिसकी दर 3·75 प्रतिशत है व जो 1974 में परिपक्व होगा।

प्रत्येक का जारी मूल्य (Issue Value) क्रमशः 98, 98·5 तथा 98·5 था। तीनों ऋणों की राशि मिला कर निर्धारित की गई थी, हर एक की अलग-अलग नहीं

(2) अल्प बचतों में 1938-39 की तुलना में लगातार वृद्धि होती रही है। जहाँ 1938-39 में अल्प बचतों से (अर्थात् नेशनल सेविंग्ज सर्टिफिकेट्स आदि से) कुल 141·46 करोड़ रुपए की प्राप्ति हुई थी, 1963-64 में इसका अनुमान 100 करोड़ रुपए है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अल्प बचतें राष्ट्रीय ऋण में अधिक योग देने लगी हैं। 1938-39 में अल्प बचतें कुल राष्ट्रीय ऋण की 19·8 प्रतिशत थी और आज ये एक दो प्रतिशत कम ही हैं अधिक नहीं। अल्प बचतों की मात्रा तथा अनुपात की दृष्टि से उनकी स्थिरता निम्नलिखित सारिणी से प्रगट होगी :

सारिणी 2

अल्प बचतों से प्राप्ति (करोड़ रुपए में)

वर्ष	अल्प बचतों से प्राप्ति	कुल प्राप्ति का प्रतिशत	वर्ष	अल्प बचतों से प्राप्ति	कुल प्राप्ति का प्रतिशत
1939	141·46	19·8	1954	448·51	18·0
1945	159·18	10·1	1955	505·70	17·8
1946	221·52	11·4	1956	572·96	18·7
1947	268·30	12·6	1957	637·68	18·1
1948	233·10	11·2	1958	706·98	16·1
1949	271·73	11·6	1959	785·50	17·0
1950	293·80	12·2	1960	869·68	16·9
1951	326·25	13·2	1961	974·83	17·8
1952	372·57	15·2	1962	1052·97	18·0
1953	412·61	16·5			

(3) जैसा कि पहले बतलाया गया था अल्पकालीन ऋण अर्थात् सरकारी हुंडी और अर्थोपाय अग्रिम केवल आकस्मिक कमी की पूर्ति के लिए लिए जाते हैं। इनका प्रयोग अधिकतर आयव्ययक घाटे को पूरा करने के लिए किया जाता है। चूँकि पिछले कई वर्षों से घाटे का आयव्ययक प्रयुक्त होता आ रहा है, स्वाभाविक है कि सरकारी हुंडियों की मात्रा में भी वृद्धि हो। जहाँ 1939 से 1948 तक सरकारी हुंडियाँ केवल 46·30 करोड़ रुपए से 98.68 करोड़ रुपए बढ़ी, मार्च 1960 के अन्त में उद्धृत सरकारी हुंडियों की संख्या 1147.98 करोड़ रुपए थी। वास्तविक रूप में सरकारी हुंडियाँ और भी बड़ी मात्रा में ली जाती हैं क्योंकि उपरोक्त राशियाँ तो केवल चुकाने के बाद अवशिष्ट राशियाँ हैं। सरकारी हुंडियों के विकास के बारे में एक और बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि जहाँ अल्प बचतों का विकास केवल अपने स्थान पर ही हुआ है, आनुपातिक नहीं, सरकारी हुडियों की वृद्धि अपने स्थान पर तथा आनुपातिक दोनों ही दिशाओं में हुई है। 1939 में सरकारी हुंडियाँ कुल ऋण की 6·5 प्रतिशत थीं, 1962 में उनसे प्राप्ति कुल ऋण के 20·1 गुना अपेक्षित है *।

(4) चूँकि ऋण का प्रयोग अब केवल (यथासम्भव) उत्पादक योजनाओं पर ही किया जाता है ब्याजी देनदारियों (Interest Bearing Obligations) की तुलना में जब व्याजोत्पादक संपत्ति (Interest Yielding Assets) ही अधिक हैं। 1946-47 में 2381·98 करोड़ रुपए की व्याजी देनदारियों की तुलना में व्याजोत्पादक संपत्ति 1001·16 करोड़ रुपए थी जो देनदारियों का 41·66 प्रतिशत था। 1962-63 के आयव्ययक अनुमान में व्याजक देनदारियाँ 7680·50 करोड़ रुपए हैं और व्याजोत्पादक संपत्ति 6395·89 करोड़ रुपए अर्थात् 83.33 प्रतिशत हैं। व्याजोत्पादक संपत्ति में नीचे लिखी संपत्तियाँ शामिल हैं :—

(1) रेलों को दी जाने वाली पूँजी,
(2) अन्य वाणिज्यिक विभागों (जिसमें दामोदर घाटी निगम शामिल है) को दी जाने वाली पूँजी,
(3) वाणिज्यिक संस्थाओं में निवेश,
(4) राज्यों को दी जाने वाली पूँजी,
(5) अन्य व्याजक ऋण,
(6) रेलवे वार्षिकियों के परिशोध के लिए ब्रिटिश सरकार के पास जमा,
(7) स्टर्लिंग पेंशनों की वार्षिकियों की खरीद, तथा
(8) पाकिस्तान से वसूल होने वाला ऋण।

(5) परिपक्वता की दृष्टि से पाँच वर्ष से कम काल में परिपक्व होने वाले ऋणों की अन्य अवधि वाले ऋणों की तुलना में, उत्तोरत्तर वृद्धि दीखती है जैसा कि अगले पृष्ठ पर सारीणी 3 से प्रगट होगा।

* देखिए विवरण 64, मुद्रा तथा वित्त रिपोर्ट, 1961-62 रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया।

सारिणी 3

भारतीय राज्य ऋण की परिपक्वता

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	अनिश्चित अवधि	कुल का प्रतिशत	दस साल से अधिक	कुल का प्रतिशत	पाँच और दस साल के बीच	कुल का प्रतिशत	पाँच साल से कम	कुल का प्रतिशत
1952	257·85	18·4	463·47	33·0	450·14	32·1	235·05	16·5
1953	257·85	18·4	387·60	27·6	411·67	29·3	346·46	24·7
1954	257·85	18·9	271·43	19·9	546·93	40·1	288·06	21·1
1955	257·85	17·5	241·14	16·4	621·70	42·2	353·70	24·0
1956	257·85	17·1	241·17	16·0	616·52	40·9	393·13	26·1
1957	257·85	15·8	245·83	15·0	665·43	40·7	464·50	28·4
1958	257·85	15·2	259·08	15·2	625·22	36·8	557·35	32·8
1959	257·85	11·8	606·41	27·8	596·84	27·4	719·87	33·0
1960	257·85	10·6	707·48	29·0	662·38	27·2	810·53	33·2
1961	257·85	10·0	690·45	26·9	756·41	29·4	866·62	33·1
1962	257·85	9·6	806·43	30·0	698·96	26·0	925·21	34·4

(ग) ऋण सम्बन्धी नीतिः—जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रथम महायुद्ध के पूर्व ऋण अधिकतर इंग्लैण्ड से ही लिया जाता था। प्रथम महायुद्ध के बाद भारत में विविध रूप से ऋण लिया जाने लगा पर इंग्लैण्ड में भी ऋण लेने की नीति जारी रही। द्वितीय महायुद्ध काल में धन की अत्यधिक आवश्यकता थी अतएव भारतीय बाज़ार से ही अधिकाधिक ऋण लेने को उत्तेजित किया गया। इस काल में ऋण लेने का उद्देश्य तत्कालीन वित्तमंत्री सर जेरेमी रेसमैन के शब्दों* में आयव्ययक के घाटे को पूरा करना तथा मूल्य वृद्धि को रोकना था। युद्धोपरान्त काल में महँगाई ने और भी प्रखर रूप धारण किया अतएव इस काल में राज्य ऋण का उद्देश्य मूल्य वृद्धि को रोकना तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देना था। इस दूसरे उद्देश्य के अनुरूप सरकार ने सस्ती दर पर ऋण लेने की नीति अपनाई। अभी हाल तक यह नीति चलती रही है। लेकिन 1951-52 में दूसरी दृष्टि से एक नवीन क़दम उठाया गया। यह था अल्प बचतों को बढ़ाना। नवीन कदम उठाने की आवश्यकता बतलाते हुए वित्त मंत्री ने 1951-52 के आयव्ययक भाषण† में कहा था—"देश में ऐसे सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं जिनसे कुछ वर्गों के ऋण बाज़ार में नियोजन की सुविधाओं पर प्रतिबन्ध लग गया है। जिनको पूर्वोक्त परिवर्तनों से फ़ायदा हुआ है इसलिए उनके अवरोधित सहयोग को दूसरे वर्ग से स्थानापन्न करने की आवश्यकता है। अतएव अल्प बचतों के महत्त्व को जितना कहा जाए उतना ही थोड़ा है।" प्रथम पंचवर्षीय योजन-काल में इस नीति का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल में स्वरूप तथा ऋण की परिपक्वता में कोई परिवर्तन न उद्देशित होते हुए भी अधिक मात्रा में ऋण प्राप्तियों पर ज़ोर दिया गया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा के अनुसार: "योजना, अर्थोपायों के करीब 25 प्रतिशत के लिए बाज़ार ऋण तथा अल्प बचतों पर निर्भर है। एक अल्प विकसित आर्थिक व्यवस्था में लोगों पर कर से प्राप्त अथवा सरकारी उद्योगों या व्यवसायों के लाभ की जो अल्पाशा होती है उसको ध्यान में रखते हुए लोगों से ऋण लेने के प्रयत्नों को तुलनात्मक बढ़ाना अनिवार्य है"। इस उद्देश्य की सफलता के लिए 1957-58 से राज्य ऋण की व्याज की दर में 3.5 प्रतिशत से 4 प्रतिशत वृद्धि की घोषणा की गई थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए और अधिक ऋण लेने पर जोर दिया गया है।

विदेशी ऋण के सम्बन्ध में स्वतंत्रता के तुरन्त बाद पहले तो यह नीति रही है कि जहाँ तक हो सके विदेशी ऋण न लिया जाए। प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में विदेशी सहायता की आवश्यकता महसूस भी की गई तो यह तय किया गया कि पहले स्टर्लिंग अवशेषों का ही उपयोग किया जाए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल में अलबत्ता विदेशी ऋण बड़ी मात्रा में लिया गया है। इस ऋण के लौटाने के लिए विदेशी मुद्रा की कमी होने के कारण तृतीय पंचवर्षीय योजना के लिए सरकार ने पुनः विदेशी ऋण को नियंत्रित मात्रा में लेने का निश्चय किया है।

o o o

---

*देखिए, लेजिस्लेटिव एसेम्बली वाद-विवाद तारीख 28 फरवरी 1944.

†देखिए, 1951-52 के आयव्ययक पर वित्त मंत्री का भाषण, पैरा 49.

अध्याय 6

आयव्ययक

राष्ट्रीय वित्त व्यवस्था में आयव्ययक (Budget) के महत्त्व को जितना बतलाया जाए थोड़ा है। यह समाज रचना का वह साधन है जिसके बिना सम्पत्ति और संकल्प होते हुए भी राज्य के उद्देश्य विफल हो सकते हैं। प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में इसका और भी महत्त्व है क्योंकि इसके बिना कार्यपालिका कुछ काम नही कर सकती। साधारण परिस्थितियों में संसद् द्वारा आयव्ययक के रूप में कार्यपालिका को अपनी आय और व्यय की अनुमति लेनी पड़ती है, तभी ये कुछ व्यय अथवा कर आदि लगा सकते हैं।

भारत सरकार का पहला आयव्ययक 1860 में प्रथम वित्त सदस्य सर जेम्स विल्सन ने लेजिस्लेटिव काउंसिल के सम्मुख प्रस्तुत किया था। तब से आयव्ययक बनते रहे हैं पर महत्त्व की दृष्टि से उनका उद्‌भव 1935 से ही माना जाता है जब भारत को स्वायत्त शासन दिया जाने लगा। 1935 के भारत शासन अधिनियम की धारा 32 तथा 78 में आधुनिक अर्थ में बजट का उल्लेख मिलता है। भारतीय संविधान में इस सम्बन्ध में स्पष्ट और विस्तृत व्यवस्था है। संविधान की भाषा में आयव्ययक को "वार्षिक वित्त विवरण" (Annual Financial Statement) कहा जाता है।

1. आयव्ययक सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त

भारतीय आयव्ययक के सम्बन्ध में निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्त गिनाए जा सकते हैं :

(1) प्राक्कलन नक़द राशियों के आधार पर हो:—कुछ देशों में आयव्ययक अपेक्षित राशियों के आधार पर भी बना लिया जाता है पर भारतीय आयव्ययक बनाने का यह नियम है कि उसमें केवल उन्हीं राशियों को सम्मिलित किया जाता है, जो एक विशिष्ट वित्तीय वर्ष के अन्दर सरकारी कोष में जमा होने वाली हों या निकाली जाने वाली हों। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यय, भले ही वह मार्च 31 तक के कार्य पर हुआ हो, अप्रैल में होने वाला हो तो उसका अनुमान अगले वित्तीय वर्ष के आयव्ययक में किया जाएगा न कि चालू वर्ष के आयव्ययक में।

(2) आयव्ययक के आँकड़े निवल हों न कि शुद्ध:—1952 तक भारतीय आयव्ययक में शुद्ध (net) राशियाँ दी जाती थीं, पर अब निवल (gross) राशियाँ इस्तेमाल होती हैं। निवल राशियों को देने का उद्देश्य संसदीय वित्त नियंत्रण को मज़बूत कराना है। मान लीजिए, किसी विभाग का व्यय 40 करोड़ रुपए है और उसकी आय 20 करोड़ रुपए। उसे वास्तव में केवल 20 करोड़ रुपए की और ज़रूरत है पर यदि उसे 20 करोड़ रुपए की ही संसद् द्वारा अनुमति दी जाती है तो उसका परिणाम यह होता है कि उसने जो 20 करोड़ रुपए और खर्च किए हैं उस पर

संसद् का नियंत्रण अधिकार नहीं रह पाता । अतएव नियम यह है कि 20 करोड रुपए भारत की संचित निधि में प्राप्ति के रूप में दिखलाए जाएँ व बाद में उन्हें अलग से 40 करोड़ रुपए के व्यय की भी अनुमति दी जाए । इस निवल और शुद्ध के भेद में कुछ अपवाद है जैसे राजस्व की वापसी (Refund of Revenue) विभागीय शुल्क (Departmental Charges), पूँजी खाते में प्राप्तियाँ (Receipt) on Capital Account) आदि । इन विषयों पर प्राक्कलन बनाते समय निवल राशियाँ ही प्रयुक्त होती है ।

(3) आयव्ययक में कुल आय तथा व्यय का समावेश होना चाहिए:—भारतीय आयव्ययक का यह नियम है कि उसमें कुल (Total) आय तथा कुल व्यय का समावेश होता है । पर रेल आयव्ययक इसके लिए अपवाद है । सविधान में तो एक ही वार्षिक वित्त विवरण का जिक्र है, पर "लोक सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियम" 213 तथा राज्य सभा के इसी प्रकार के नियम 159 के अनुसार एक से अधिक अंशों में आयव्ययक उपस्थापित किया जा सकता है । इसी नियम के अन्तर्गत रेलों का आयव्ययक अलग से पेश किया जाता है । रेलों के इस अपवाद के लिए दो विशेष कारण है :

1. रेल नीति अन्य विभागों के परिणामों से स्वतन्त्र होनी चाहिए,
2. अपना लाभांश (Dividend) दे चुकने के बाद रेलों को अपने अतिरिक्त लाभ को विकास में लगाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए ।

लाभांश का सामान्य आयव्ययक में शामिल होना इस मूल सिद्धान्त को सिद्ध करता है कि यथासम्भव आयव्ययक में सारे कार्यों का समावेश होना चाहिए । इधर दामोदर घाटी निगम, जैसे निगमों को संसद् ने अपने आयव्ययक स्वतन्त्र रूप से बनाने की अनुमति दे दी है । वे बाद में केवल सूचनार्थ संसद् के सम्मुख पेश किए जाते है । पर निगम होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि भारत सरकार के आय व्ययक व्यवहारों को अपूर्ण रूप में संसद् के सम्मुख लाया जा रहा है ।

(4) आयव्ययक वर्ष भर के लिए हो न कि अधिक अवधि के लिए:—भारतीय आयव्ययक का अब भी यह मान्य नियम है कि आयव्ययक एक वर्ष के लिए ही होना चाहिए । इस नियम का आधार यह है कि एक तो इससे संसद् को प्रतिवर्ष राष्ट्र की वित्तीय तथा राजकीय नीति पर बहस करने का अवसर मिलता है, दूसरे यह कि एक वर्ष की अवधि आय व्यय के अनुमान लगाने की दृष्टि से भी उचित जान पड़ती है । विदेशों में भी अधिकतर यही प्रथा है । पर अमरीका के कुछ राज्य व इंग्लैण्ड इसके अपवाद हैं । अमरीका के कुछ राज्यों में आयव्ययक दो वर्ष की अवधि के लिए बनता है । इंग्लैण्ड में यह प्रथा है कि आय का पर्याप्त अंश स्थाई करों से मिल जाता है । व्ययों में भी समेकित निधि से की जाने वाली सेवाएँ बग़ैर आयव्ययक के शामिल करली जाती हैं । केवल "मतापेक्ष धन से की जाने वाली सेवाएँ" (Supply Services) प्रतिवर्ष संसद् द्वारा स्वीकृत होती है ।

(5) यथासम्भव प्राक्कलित राशियाँ यथावत् हों:—व्यय करने वाले विभागों की प्रायः यह प्रवृत्ति रहती है कि वे प्राक्कलित राशियाँ बढ़ा-चढा कर बतलाते हैं । यह वास्तव में संसद् को धोखा देना है क्योंकि जहाँ इससे एक ओर संसद् से आवश्यकता

से अधिक अनुमति लेना सिद्ध होता है वहाँ दूसरी ओर इसके परिणाम स्वरूप अन्य आवश्यक प्रयोजन रुक सकते हैं क्योंकि आय की कमी तो सदैव रहती है। व्यय के ही समान आय के अनुमान के आँकड़े भी यथासम्भव यथावत् होने चाहिए । अन्यथा वर्ष के अन्त में आय और व्यय के बीच बहुत असन्तुलन हो सकता है।

(6) आयव्ययक का स्वरूप लोक लेखे के अनुरूप हो :—आयव्ययक का स्वरूप राष्ट्रीय लेखे के अनुरूप होना इसलिए अनिवार्य है कि नए आयव्ययक बनाते समय पिछले आँकड़े जो लेखा-पद्धति के अनुसार रखे जाते हैं आसानी से ठीक ठीक मालूम नहीं हो सकते। इस स्वरूप भेद से वित्तीय नियंत्रण में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। जैसा कि अध्याय दस से ज्ञात होगा कि इधर भारत में आयव्ययक के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई अनुरोध किए गए हैं। लेखा-पद्धति से उनका अटूट सम्बन्ध होने के कारण ही कदाचित अधिक परिवर्तन नहीं किया जा सका है।

(7) प्राक्कलित राशियाँ विभागों के अनरूप होनी चाहिए :—संसदीय प्रथा के परिणाम स्वरूप अर्थात् जहाँ प्रत्येक मंत्री अपने विभाग के काम के लिए ज़िम्मेदार होता है भारतीय आयव्ययक निर्माण में यह प्रथा हो गई है कि आय और व्यय के अनुमान उस विभाग के नाम दिखलाए जाएँगे, जिन्हें वे वास्तव में प्राप्त होते हों, भले ही उसका फल किसी अन्य विभाग को मिलने वाला हो। इस प्रकार किसी स्कूल निर्माण पर व्यय भारतीय आयव्ययक निर्माण प्रथा में सार्वजनिक निर्माण विभाग के अन्तर्गत प्राक्कलित किया जाएगा न कि शिक्षा विभाग के अन्तर्गत। यह नियम व्यवसायेतर विभागों के विषय में लागू होता है। रेल, डाक आदि व्यापारिक विभागों में आय या व्यय उन विभागों के नाम दर्ज की जाती है जिनके लिए वह वास्तव में संगृहीत या खर्च की गई हो।

(8) वर्ष के अन्त में बची राशियाँ राष्ट्रीय कोष में वापस आ जानी चाहिए.— प्रजातन्त्रीय पद्धति में आयव्ययक वर्ष भर के लिए होने का स्वाभाविक उपनियम यह है कि वर्ष के अन्त में बची राशियाँ राष्ट्रीय कोष में वापस आ जाएँ। आयव्ययक के वार्षिक होने के कारण वर्ष के आखिरी महीनों में फ़जूल खर्च होने का भय रहता है, पर यदि उसके लिए ऐसा नियम बनाया जाए कि विभाग चाहे जब तक उस वित्त का उपयोग कर सकते हैं तो अगले वर्ष के आयव्ययक बनाने में कठिनाई हो सकती है। अतएव भारतीय आयव्ययक अवस्था में यह नियम है कि अवशिष्ट धन लौटा दिया जाए। कुछ ऐसे व्यय होते हैं जहाँ धन एक बार लौटा देने पर फिर मिलने तक इन्तज़ार करने से हानि हो सकती है ऐसी अवस्था में एक औपचारिक अनुमति से विभागों को अवशिष्ट राशियों को उनके पास ही रहने दिया जाता है। इस नियम का आशय विभागों को फ़जूलखर्ची से रोकना है।

2. आयव्ययक निर्माण

आयव्ययक निर्माण की तीन मुख्य अवस्थाएँ हैं :

(क) विभागों द्वारा निर्माण,
(ख) महालेखापाल के कार्यालय में जाँच तथा निर्माण, तथा
(ग) वित्त मंत्रालय द्वारा समेकन तथा जाँच।

(क) विभागों द्वारा निर्माणः—प्रत्येक विभाग में आयव्ययक निर्माण के लिए एक अधिकारी हुआ करता है जिसे प्राक्कलन अधिकारी (Estimating Officer) कहते हैं। प्राक्कलन अधिकारी किस स्तर के होंगे, इस सम्बन्ध में कोई खास नियम नहीं होता। पर साधारणतया प्रत्येक विभाग का प्रमख प्राक्कलन अधिकारी हुआ करता है। अन्य अधिकारी भी प्राक्कलन अधिकारी बन सकते है यदि वे व्यय नियन्त्रण के लिए जम्मेदार हों।

प्राक्कलन अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे 15 अक्टूबर तक आय और व्यय के प्राक्कलन महालेखापाल के कार्यालय तथा वित्त विभाग को भेज दें। इसके लिए प्रतिवर्ष 15 अगस्त तक विभाग द्वारा प्राक्कलन अधिकारियों को बजट प्रपत्र (Budget Forms) भेजे जाते हैं, जिनमें आय और व्यय स्तम्भों के अन्तर्गत गतवर्षीय आय व्यय के वास्त वक आँकड़े दिए हुए होते है। प्राक्कलन अधिकारी प्राक्कलन कर चुकने पर प्रपत्रों को पहले अपने विभाग अधिकारियों* को भेजते हैं जो उनकी जाँच कर उनको समेकित करता है। उसके बाद उन्हें महालेखापाल के कार्यालय तथा वित्त विभाग को भेज देना पड़ता है जहाँ आयव्ययक को अन्तिम शक्ल दी जाती है।

व्यय के प्राक्कलन प्रपत्रों में दो भाग होते हैं :

(क) स्थाई व उच्चावचन व्ययों (Standing and Fluctuating Charges) के प्राक्कलन।

(ख) नवीन सेवाओं पर व्यय के प्राक्कलन।

स्थाई व्ययों से उन सेवाओं का तात्पर्य है जो पिछले वर्ष भी होती आई है जैसे इमारत का किराया, अधिकारियों का वेतन आदि। नवीन सेवाओं से तात्पर्य उन सेवाओं से है जो पहली बार प्रस्तावित की गई हैं जैसे कोई नई नियुक्ति, किसी विद्यमान सेवा के ही परिमाण में वृद्धि, कोई नवीन योजना आदि। कोई व्यय स्थाई सेवा समझा जाए या नवीन, इस सम्बन्ध में वित्त मंत्रालय का निर्णय अन्तिम होता है पर इस सम्बन्ध में रूढ़ि से कई प्रथाएँ हैं और प्रायः सभी विभाग जानते है कि कौन सा व्यय नवीन सेवा पर व्यय है और कौन सा स्थाई सेवा पर।

आय और व्यय के लिए अलग-अलग बजट प्रपत्र होते हैं। प्रपत्रों में आय और व्यय के अनुसार लेखाशीर्षक (Heads of Accounts) दिए होते हैं और यदि कोई नवीन लेखा शीर्षक खोलना हो तो पहले यह आवश्यक होता है कि वह लेखा शीर्षक नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक की अनुमति से तय किया हुआ हो। प्रपत्रों के स्वरूप का नमूना अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

---

*"इंग्लैण्ड में व्यय" (Charges in England) नामक लेखा शीर्षक के अन्तर्गत आने वाला व्यय विभिन्न मंत्रालयों द्वारा अलग अलग प्राक्कलित नहीं किया जाता। यद्यपि वह प्रत्येक मंत्रालय से अंशतः सम्बन्धित होता है। इसका प्राक्कलन भारतीय हाई कमिश्नर द्वारा किया जाता है जो उसे सीधे वित्त मंत्रालय के प्राक्कलन प्रभाग को भेज देता है। वित्त मंत्रालय इस पर सम्बन्धित मंत्रालयों की सलाह से स्वीकृति या अस्वीकृति देता है।

प्रपत्र 3

आय और व्यय का प्राक्कलन प्रपत्र

आय व्यय के लेखा शीर्षक	वास्तविक आय/ व्यय	आय-व्ययक प्राक्कलित राशियाँ (गत वर्ष की)	आवृत्त/ प्राप्त राशियाँ	प्राक्कलित राशियाँ	गत वर्ष की वास्तविक राशियाँ	तदवधि में इस वर्ष की प्राक्कलित राशियाँ	कैफ़ियत
1	2	3	4	5	6	7	8

पहले स्तम्भ की मदों में प्राक्कलन अधिकारियों को परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं होता। स्तम्भ दो की राशियाँ भी वित्त विभाग बजट प्रपत्र भेजते समय पहले से ही भर कर भेजते हैं। स्तम्भ तीन की राशियाँ भरना प्राक्कलन अधिकारियों का काम है जो उसे पिछले वर्ष की अनुदान पुस्तकों को देखकर भरते हैं। स्तम्भ चार और पाँच में वास्तविक प्राक्कलन का कार्य है। स्तम्भ छह और सात उपलब्ध राशियों से भरे जाते हैं। इनका उद्देश्य आय तथा व्यय के वृद्धि अथवा ह्रास की प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराना है। ये आँकड़े प्रायः छह महीने के होते हैं। ऐसी धारणा है कि नियत अवधि में, गत वर्ष हुए आय व्यय की तुलना में यदि चालू वर्ष में अधिक आय-व्यय हुई हो तो अगले वर्ष में भी आधिक्य की संभावना है। इसी आधार पर अगले वर्ष के लिए प्राक्कलन किया जाता है। अनुभव से देखा गया है कि इस आधार पर स्थाई व उच्चावचन वाले व्यय के प्राक्कलन करना काफ़ी युक्तिसंगत होता है।

नवीन* सेवाओं के व्यय अनुमान के लिए कोई खास आधार नियत नहीं। इसका एकमात्र आधार राज्य के व्यवहारों की वृद्धि या ह्रास है। कल्याणकारी राज्य में व्यय हमेशा वृद्धि पर ही होता है, ऐसी अवस्था में प्रति वर्ष नवीन व्यय होते ही रहेंगे।

---

*1958 तक नवीन सेवाओं के लिए यदि अचूक अनुमान न बनाया जा सकता हो तो पिण्ड राशि अनुदान लेने की प्रथा थी। पर अगस्त 1959 के "पुनरावृत्त आय-व्ययक व वित्तीय नियंत्रण व्यवस्था" (Revised arrangements for Budgetary and Financial Control) आदेश के अनुसार अब अत्यधिक छोटे निर्माण अथवा छोटी अस्थाई नियुक्तियों को छोड़ कर शेष के लिए पिण्ड राशि अनुमान बनाना मना है। हो सकता है कि बड़ी योजनाओं के लिए अचूक अन्दाज़ न लगाया जा सकता हो, उनके लिए आदेश है कि केवल प्रारम्भिक ज्ञात व्यय के लिए ही अनुमान बनाने चाहिए।

उन्हें आयव्ययक में आने से कोई रोक नहीं सकता। सिर्फ़ एक बात का ध्यान रखना पड़ता है और वह यह कि जिस नवीन सेवा के लिए व्यय प्राक्कलित है वह सरकार द्वारा स्वीकृत है अर्थात् उस पर उच्चतम अधिकारी और कभी-कभी तो मंत्री अथवा मंत्रिमंडल से अनुमति प्राप्त हो चुकी है या नहीं। प्रायः नवीन सेवाओं के प्राक्कलन के पूर्व सेवा के प्रयोजन पर अनुमति हो चुकी होती है।

आय के प्राक्कलन अधिकतर विभिन्न करों की दर व पिछली अवशिष्ट प्राप्तियों के आधार पर बनाए जाते हैं। उसमें उतनी जाँच की आवश्यकता नहीं होती जितनी कि व्यय प्राक्कलन बनाने में। फिर भी प्राप्तियों का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कोई सरल काम* नहीं।

आयकर के विषय में नीचे दिए गए आधार हैं :—

(1) पिछले वर्ष की वास्तविक वसूली,
(2) अविशिष्ट निर्धारण,
(3) वर्तमान प्राप्ति की दर,
(4) बकाया आयकर तथा चालू कर प्राप्तियों के अनुमान,
(5) पिछले वर्षों में लगाया गया कर जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो।

इसी प्रकार आयात-निर्यात शुल्क के विषय में स्थूल आधार नीचे दिए गए हैं:—

(1) सरकार की आयात-निर्यात नीति के परिवर्तन,
(2) समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम (Sea Customs Act) के अन्तर्गत किए हुए परिवर्तन,
(3) व्यापार (खासकर निर्यात योग्य वस्तुओं—जैसे चाय, कपड़ा, तेल आदि) की प्रवृत्तियाँ,
(4) देश में उत्पादन की मात्रा और उसके आयात पर होने वाला परिणाम।

यह था आय और व्ययों का नवीन वर्ष के लिए प्राक्कलन बनाना। पर चालू वर्ष की बाकी अवधि के लिए भी विभागों को प्राक्कलन बनाने पड़ते हैं जिसे "संशोधित प्राक्कलन" (Revised Estimate) कहते हैं। प्राक्कलन अक्टूबर तक बनाए जाते हैं अतएव संशोधित प्राक्कलन अक्टूबर से मार्च के अन्त तक के लिए होते हैं। दूसरे शब्दों में चालू वर्ष में जो प्राक्कलन संसद् ने स्वीकृत किए हैं उनमें वास्तविकता (छह महीने तक की—अप्रैल से अक्टूबर तक) की दृष्टि से क्या परिवर्तन आवश्यक हैं यह अन्दाज़ लगाया जाता है। संशोधित प्राक्कलनों का निर्माण आयव्ययक निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि इसी के आधार पर सरकार के पास अगले वर्ष के प्रारंभ में कितना धन शेष बचेगा यह जाना जाता है। कुल अर्थोपायों को जानने के लिए शेष धन का जानना अत्यधिक आवश्यक है।

---

*आय की प्राप्तियों का उसके प्राक्कलन से बहुधा अधिक होना, लोक लेखा समिति और संसद् सदस्यों की आलोचना का विषय रहा है। इसलिए लोक लेखा समिति ने अपने छठे प्रतिवेदन (तृतीय लोक सभा) में आय के अनुमान यथार्थ के अधिक निकट बनाने का आग्रह किया है।

आय और व्यय के संशोधित प्राक्कलन निम्नलिखित आधार पर बनाए जाते हैं :—

(क) चाल वर्ष के आय व्यय के वास्तविक आँकड़े,

(ख) तदवधि में पिछले वर्ष के आँकड़े,

(ग) पिछले दो वर्षों के वास्तविक आय व्यय के आँकड़े,

(घ) विनियोग तथा पुनर्विनियोग सम्बन्धी आदेश (Appropriation and Reappropriation Order),

(च) अन्य उपयुक्त घटनाएँ ।

चालू वर्ष के उपलब्ध वास्तविक व्यवहार के आँकड़े विभागों के पास होते ही हैं। (ख) और (ग) आधारों से आय-व्यय की प्रवृत्ति जानी जा सकती है। किन्तु सम्भव है कि प्रवृत्ति ह्रास की ओर होते हुए भी शेष समय में अर्थात् अक्टूबर से मार्च तक विभाग सहसा अधिक व्यय करने के लिए तैयार हों और उन्हें इस सम्बन्ध में वित्त विभाग से व्यय अनुमति भी मिल गई हो, अथवा वे सहसा अधिक आय की अपेक्षा करते हों। ऐसी दशा में ही परिस्थिति के अनुसार उपरोक्त (घ) तथा (च) आधारों को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

(ख) महालखापाल के कार्यालय में जाँच तथा निर्माणः—विभागों में प्राक्कलनों का कार्य होने पर प्राक्कलन प्रपत्रों की एक प्रति वित्त मंत्रालय को और एक प्रति महालेखापाल को भेज दी जाती है। महालेखापाल को व्यय प्राक्कलनों का केवल प्रथम भाग भेजा जाता है। आय-प्राक्कलनों में महालेखापाल के कार्यालय को विशेष कार्य नहीं करना पड़ता क्योंकि उसमें पिछले आँकड़े की शुद्धता आदि का इतना महत्त नहीं। देखा जाए तो महालेखापाल के कार्यालय की जाँच में शुद्धता लाने का एक और मार्ग है अन्यथा, आयव्ययक का निर्माण केवल प्रशासनिक विभाग* (Administrative Departments) तथा वित्त विभाग की ज़िम्मेदारी है। महालेखापाल अपने कार्यालयों में लेखे के आधार पर यह देख लेता है कि प्राक्कलित राशियाँ उपयुक्त आधार पर प्राक्कलित की गई हैं या नहीं। महालेखापाल† के खातों में वेतन श्रेणियाँ दी होती हैं। इससे वेतन सम्बन्धी प्राक्कलनों की जाँच हो सकती है। संशोधित प्राक्कलनों के विषय में महालेखापाल की परीक्षा से काफ़ी फ़ायदा होता है क्योंकि उसके पास व्यय के आँकड़े विभागों को ज्ञात आँकड़ों से कहीं ज़्यादा शुद्ध होते हैं।

महालेखापालों को चाहे वे राज्यों के हों अथवा केन्द्रीय राजस्व के कुछ राशियों का प्राक्कलन स्वतन्त्र रूप से भी करना पड़ता है, जैसे पेन्शन, ऋण तथा विभिन्न निक्षेप निधियाँ। इन व्यवहारों का सम्बन्ध किसी विभाग विशेष से न होकर

*शासन की भाषा में वित्त मंत्रालय को छोड़ कर अन्य सब विभाग/मंत्रालयों को 'प्रशासनिक विभाग' कहा जाता है क्योंकि जैसे अन्य सब विभाग स्वयं कोई न कोई सरकारी नीति निर्धारित करते हैं वैसे वित्त मंत्रालय नहीं। वित्त मंत्रालय का काम केवल उन विभागों को वित्त दिला देना है। काम करना उन विभागों की ज़िम्मेदारी है।

†सभी राज्य महालेखापाल यह कार्य नहीं करते। प्रथा में राज्यों के अनुसार भेद है। यद्यपि अगले वाक्य में बतलाई गई मद सभी राज्य महालेखापाल देते हैं

सारे विभागों से होता है, अतएव इनका प्राक्कलन करना महालेखापालों के सुपुर्द किया गया है। निक्षेप निधियों का प्राक्कलन उनके अन्तर्गत हुई जमा व निकासी की प्रवृत्ति के आधार पर किया जाता है। पर ऋणों के विषय में महालेखापाल को ऋण अवशेषों का रिजर्व बैंक से प्राप्त विवरण तथा नवीन ऋण जारी करने या चुकाने के सम्बन्ध में जारी किए गए आदेशों का आधार लेना पड़ता है।

शद्धता की जाँच और कुछ मदों के विषय में मौलिक रूप से प्राक्कलन बनाने के अतिरिक्त महालेखापाल को आयव्ययक के सम्बन्ध में दो अन्य महत्तपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं, (1) आयव्ययक टिप्पणियाँ (Budget Notes) बनाना, तथा (2) प्राक्कलनों को माँगों का रूप देना। आयव्ययक टिप्पणियाँ विशेष प्रपत्रों पर बनाई जाती हैं जो वित्त विभाग द्वारा दिसम्बर के बीच महालेखापालों को भेज दिए जाते हैं। टिप्पणियों का उद्देश्य पिछली प्रगति की तुलना में प्राक्कलित राशियों का विश्लेषण करना है।

प्राक्कलनों को माँगों का रूप देने में यह कोशिश होती है कि किसी एक विशेष प्रयोजन के लिए यथासम्भव एक पूरी माँग हो। एक माँग में कितनी उप माँगें होंगी यह वित्त विभाग द्वारा प्रपत्र भेजते समय पहले ही तय किया हुआ होता है पर महालेखापाल के सुझाव पर अन्य उपमाँगों को भी शामिल किया जा सकता है। माँगों का रूप देते समय लेखा विभाग को यह देखना पड़ता है कि प्राक्कलनों की राशि का योग माँगों के अन्तर्गत बैठाई गई राशियों के योग के बराबर है। पाठकों ने देखा होगा कि जो माँग पुस्तकें संसद् को पेश की जाती हैं उनमें माँगों के अनुसार राशियाँ तो होती ही हैं पर समस्त व्यय का एक लेखानुसार विवरण भी होता है जो वित्त मंत्रालय द्वारा बनाया जाता है। इसके लिए आधारभूत काम पहले महालेखापाल को ही करना पड़ता है। भारत सरकार के आयव्ययक के सम्बन्ध में चूँकि प्राक्कलन जाँच किसी एक महालेखापाल द्वारा न होकर अनेक महालेखापालों (अर्थात् प्रत्येक राज्य के महालेखापाल) द्वारा की जाती है इसलिए समेकीकरण का कार्य वित्त मंत्रालय ही करता है, अन्यथा यह कार्य साधारणतया महालेखापालों का है। राज्यीय आयव्ययकों के बारे में यह कार्य वहाँ के महालेखापाल ही करते हैं।

(ग) वित्त विभाग द्वारा समेकन तथा जाँचः—महालेखापाल द्वारा जाँच और निर्माण के बाद आय के सारे श्रौर व्यय के प्रपत्र के दूसरे भाग 30 अक्टूबर तक वित्त विभाग को भेज दिए जाते है। वित्त विभाग उन्हें एकत्रित कर श्रायव्ययक का स्वरूप देता है। राज्यों के विषय में राज्य के वित्त विभागों के समेकन का प्रश्न नही उठता क्यों-कि उनके यहाँ जाँच एक ही महालेखापाल द्वारा होती है। पर केन्द्र में वित्त विभाग को महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व, राज्य महालेखापाल, महालेखापाल डाक और तार विभाग, महालेखापाल रक्षा विभाग तथा वित्तायुक्त रेल विभाग आदि ऐसे चार महालेखापालों के जाँचे हुए प्राक्कलनों का समेकन करना पड़ता है। महालेखापाल डाक और तार विभाग के प्राक्कलन वित्त मंत्रालय के व्यय प्रभाग (संचार से सम्बन्धित भाग) द्वारा समेकित किए जाते हैं। इसी प्रकार महालेखापाल रक्षा विभाग के प्राक्कलन वित्त मंत्रालय के रक्षा प्रभाग द्वारा समेकित किए जाते हैं। इसी प्रकार अन्य आँकड़े व्यय प्रभाग (Expenditure Division) द्वारा समेकित तथा जाँचे जाते हैं। रेल विभाग का आयव्ययक अलग से पेश किया जाता है। सामान्य आयव्ययक से उसका केवल इतना ही सम्बन्ध है कि रेल आयव्ययक से उसके लिए कितनी राशि लाभांश के रूप में मिलने वाली है।

सभी व्यय प्रभागों से जाँच होने के बाद राशियाँ वित्त विभाग के आयव्ययक प्रभाग को सूचित की जाती हैं। इस अवस्था से प्राक्कलन आयव्ययक का स्वरूप लेने लगते हैं। इसी बीच वित्त मंत्रालय उन दूसरे भागों पर भी निर्णय ले रखता है जिनमें नवीन सेवाओं के व्यय प्राक्कलित होते हैं। जब नवीन सेवाओं के प्रस्ताव वित्त मंत्रालयों में आते हैं तो पहले उपयुक्त व्यय प्रभाग उनकी जाँच कर लेते हैं। बाद में उन्हें आयव्ययक प्रभाग में भेजा जाता है। साधारणतया प्रत्येक नवीन सेवा के लिए वर्ष के दौरान में अनुमति मिली हुई होती है। अनुमति होने के बावजूद यदि प्राक्कलित राशियाँ ज़्यादा होने का आभास होता हो तो वे उसमें "तदर्थ कटौती" (Ad hoc Cuts) भी करते हैं। दोनों प्रकार के प्रपत्र आते ही आयव्ययक प्रभाग में अन्तिम रूप से समेकन शुरू हो जाता है। साथ ही दो और क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, जो निम्नलिखित हैं :

(क) आय तथा व्यय के प्राक्कलनों को अन्तिम रूप देना, तथा

(ख) आय सम्बन्धी नीति निर्धारण करना।

चाहे विभिन्न स्तरों पर आय और व्यय के प्राक्कलनों की जाँच हो गई हो, फिर भी आयव्ययक प्रभाग में उनकी पुनः जाँच होती है। आयव्ययक प्रभाग की जाँच इस दृष्टि से नहीं होती कि कितने धन की वास्तविक आवश्यकता है वरन् इस दृष्टि से होती है कि कुल प्राप्य आय के अनुपात में व्यय प्राक्कलन अधिक हैं या कम। पूँजी व्यय के सम्बन्ध में आयव्ययक प्रभाग की जाँच बहुत सूक्ष्म होती है। पूँजी व्यय के लिए वित्त की व्यवस्था करने की सारी ज़िम्मेदारी वित्त विभाग पर होती है। पूँजी व्यय जितना बचत के साथ हो सके उतना वांछनीय है। इस सामान्य सिद्धान्त के कारण वित्त विभाग यह देखता है कि पूँजी व्यय किसी ऐसी योजना पर तो नहीं हो रहा है जो पंचवर्षीय योजना में शामिल न हो। इस सम्बन्ध में व्यवस्था यह है कि हर एक मंत्रालय अपने वित्तीय सलाहकारों की सलाह से सितम्बर से अपने पूँजी व्यय के प्राक्कलन बनाना शुरू कर देते हैं। नवम्बर तक उन्हें ये प्रस्ताव वित्त मंत्रालय को भेज देने पड़ते हैं। इन प्राक्कलनों की एक प्रति योजना आयोग को भेजनी पड़ती है। बाद में योजना आयोग तथा वित्त विभाग मिल कर प्रत्येक मंत्रालय कितनी पूँजी व्यय कर सकता है, इसकी अवधि निर्धारित कर देते हैं। जब नवीन सेवाओं और स्थाई सेवाओं के प्राक्कलन वित्त-विभाग के व्यय प्रभागों के पास आते हैं तो वे ये देखते हैं कि प्रस्तावित राशियाँ इन अवधियों के अन्तर्गत हैं या नहीं?

ये सब जाँच पूर्ण होते ही आय सम्बन्धी विचार किए जाते हैं अर्थात् आयव्ययक घाटे का होगा या संतुलित, और यदि घाटे का होगा तो उस घाटे को पूरा करने के लिए क्या अर्थोपाय किए जाने चाहिए। पूर्वोक्त पद्धति से आय तथा व्यय के अलग अलग प्राक्कलन तैयार हो जाने पर आय और व्यय में कितना अन्तर है, इसका अन्दाज़ लग ही जाता है। कितना अधिक कर लगाया जाएगा या वर्ष में कितना ऋण लिया जाएगा इस सम्बन्ध में थोड़े ही लोगों को जानकारी* होती है तथा ये विचार बिल्कुल

*इंग्लैण्ड में बजट की गोपनीयता एक कहावत बन गई है। वहाँ यदि किसी वित्त मंत्री से बजट गोपनीय न रखा जा सके तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। 1947 में डा० डाल्टन का त्यागपत्र देना प्रसिद्ध है।

आखीर में किया जाता है—जैसे आयव्ययक सदन में पेश होने के केवल सात आठ दिन पहले। रिजर्व बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाओं की सलाह भी ली जाती है। मामला प्राय: मंत्रिमंडल तक जाता है। रक्षा के प्राक्कलनों पर मंत्रिमंडल की रक्षा समिति भी विचार करती है। रचना की दृष्टि से सभी आँकड़े पहले से आयव्ययक पुस्तकों में तैयार हुए होते हैं। केवल अर्थोपायों का पता लगते ही प्राक्कलित आय राशियों में से कुछ में अन्तर कर दिया जाता है।

3. आयव्ययक का स्वरूप

आयव्ययक का अर्थ मुख्यत: उस विवरण से है जिसे आयव्ययक विवरण कहते है। पर बृहत् अर्थ में माँग पुस्तकें (Books of Demands), व्याख्यात्मक ज्ञापन (Explanatory Memorandum) आर्थिक सर्वेक्षण (Economic Survey) तथा वित्त मंत्री का भाषण सभी आयव्ययक के अंग माने जाते हैं।

(अ) आयव्ययक का विवरण:—भारत सरकार के आयव्ययक विवरण के पाँच भाग होते हैं :

(1) केन्द्रीय सरकार के राजस्व तथा राजस्व से हुए व्यय का सामान्य विवरण,
(2) केन्द्रीय सरकार की प्राप्तियों तथा भुगतानों का सामान्य विवरण,
(3) केन्द्रीय सरकार के राजस्व का विस्तृत विवरण,
(4) केन्द्रीय सरकार के राजस्व से हुए व्यय का विस्तृत विवरण, तथा
(5) केन्द्रीय सरकार की प्राप्तियों तथा भुगतानों का विस्तृत विवरण।

पहले का उद्देश्य राजस्व आय और व्यय की तुलना दिखलाना होता है। आयव्ययक घाटे का है या बचत का, यह इसी विवरण से ज्ञात होता है। दूसरे का उद्देश्य सरकार की सर्वांगीण वित्तीय हालत बतलाना है। तीसरे, चौथे और पाँचवें का उद्देश्य इन्ही का विस्तृत व्योरा देना होता है। संविधान के अनुच्छेद 112(2)(ख) के अनुसार राजस्व लेखे पर होने वाले व्यय को अन्य व्यय से अलग दिखलाना आवश्यक होता है। इसलिए (1) और (2) अलग अलग दिखलाए जाते हैं (देखिए परिशिष्ट 5)। उपरोक्त सभी विवरणों में राशियाँ भारत की समेकित निधि, आकस्मिकता निधि तथा सार्वजनिक खाता के अन्तर्गत अलग-अलग दिखलाने की प्रथा है।

(ब) माँग पुस्तकें:—संविधान के अनुच्छेद 113(2) के अनुसार भारत की समेकित निधि पर भारित व्यय को छोड़कर शेष व्यय को लोक सभा में अनुमति के लिए अनुदानों की माँगों के रूप में रखना आवश्यक होता है। इसलिए माँग पुस्तकों की आवश्यकता होती है। 1958-59 तक माँग पुस्तकों को निम्नलिखित चार भागों* में प्रकाशित करने की प्रथा थी :—

(1) केन्द्रीय सरकार के राजस्व व्यय की माँग पुस्तक,

*1957-58 तथा 1958-59 में आयव्ययक में एक और माँग पुस्तक प्रकाशित की गई थी जिसमें ऐसे व्ययों की चर्चा होती थी जो पिछले वर्ष तो थे पर जिन पर आगामी वर्ष में कोई व्यय नहीं होने वाला था। इसमें केवल पिछले साल के ही प्राक्कलित व परिष्कृत आँकड़े होते थे।

(2) केन्द्रीय सरकार के पूंजी व्यय तथा ऋण आदि के निगम की माँग पुस्तक,
(3) रक्षा व्यय की माँग पुस्तक, तथा
(4) डाक व तार विभाग संबंधी माँगों की पुस्तक ।

1959-60 से अब प्रत्येक मंत्रालय के लिए एक माँग पुस्तक होती है । रक्षा व डाक-तार विभाग के लिए अब भी पूर्ववत् अलग माँग पुस्तके होती हैं । सिविल विभागों में पहले राजस्व व्यय व पूँजी व्यय की अलग अलग माँग पुस्तके होती थीं अब प्रत्येक मंत्रालय की माँग पुस्तको में ही उस विभाग के अधीन होने वाले पूँजी व्यय की माँगे शामिल होती है । माँग पुस्तकों में ही अब उस विभाग की प्रमुख योजनाओं पर टीका, व्यय में अधिकता या कमी के कारण तथा यदि उस विभाग के अन्तर्गत कोई राष्ट्रीय उद्योग हों तो उनके लाभ हानि लेखे व संतुलन पत्र दिए जाते हैं जो पहले व्याख्यात्मक ज्ञापन में दिए जाते थे ।

माँगों की रचना के विषय में सामान्यतः निम्नलिखित नियम पालन करने पड़ते हैं:—

(क) संविधान के अनुच्छेद 112(2) (ख) के अनुसार यह आवश्यक है कि भारत की समेकित निधि पर भारित व्यय अन्य व्यय से पृथक दिखलाया जाए । अतएव माँग पुस्तकों में ऐसे व्ययों को टेड़े अक्षरों में लिखा जाता है ।

(ख) माँगें ऐसी होनी चाहिए कि व्यय-नियन्त्रण अधिकारी अपने दायित्व सुविधा से संपादित कर सके । अनुदान बहुत बड़े होंगे और असंबधित विषयों के होंगे तो एक वित्त-नियंत्रक के लिए यह कार्य कठिन होगा ।

(ग) प्रत्येक मंत्रालय के लिए साधारणतया एक पृथक् माँग की जाए । लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमों में नियम 206 (1) के अनुसार यह आवश्यक है कि वित्त मंत्रालय की सुविधा से दो या अधिक मंत्रालयों या विभागों के लिए प्रस्थापित अनुदानों को यदि उनका वर्गीकरण विशेष मंत्रालय के अन्तर्गत सहज ही न किया जा सके तो एक माँग में भी सम्मिलित किया जा सकता है। इस नियम का यह उद्देश्य है की संसद् में बहस की दृष्टि से प्रत्येक मंत्रालय अपनी ज़िम्मेदारी संभाल सके ।

(घ) माँगें यथासंभव शुद्ध हों और प्रयोजन विशेष के लिए हो न कि पिण्ड राशि (Lump sum) के रूप में । किसी अनिश्चित प्रयोजन के लिए प्रत्येक माँग के चार भाग* होते हैं :

(1) अनुमानित राशि :—इसमें सीधे सादे एक वाक्य में प्रयोजन व राशि का जिक्र होता है ।

*लोक सभा की प्राक्कलन समिति के 11 वें प्रतिवेदन (तीसरी लोकसभा) के प्रस्ताव को स्वीकृत करते हुए 1963-64 के आयव्ययक से अनुदानों के चार भाग तो बनाए जाते हैं पर संसद् में केवल प्रथम दो भागों वाली अनुदान पुस्तक ही पेश की जाती है।

(2) उपशीर्षक :— जिसके अन्तर्गत माँग का लेखा रखा जाता है। अध्याय तीन में विनियोग लेखे का जो ज़िक्र किया गया था वह इसी उपशीर्षक के आधार पर लिखा जाता है।

(3) विस्तृत विवरण :— इसमें (2) के उपशीर्षो को लेखा क्षेत्रों के अनुसार और विस्तार से दिया जाता है। जैसे पुरातत्व विभाग का व्यय है। यह केवल दिल्ली मे ही नहीं वरन् भारत के प्रत्येक कोने में जहाँ प्राचीन स्मारक है, होता है। इस के माने हैं–उस व्यय का लेखा उस प्रान्त के महालेखापाल के खातों में रखा जाएगा। इसीलिए तीसरे खण्ड में लेखा क्षेत्रों के अनुरूप अनुदानों को दिखलाया जाता है जो लेखा निर्माण और आयव्ययक के अटूट सम्बन्ध को सिद्ध करता है।

(4) वसूली : —जिसके अन्तर्गत उस माँग के अधीन व्यय में से प्राप्त होने वाली वसूली का अन्दाज़ किया रहता है। माँगों में चार प्रकार के आँकड़े दिखलाए जाते हैं।

(1) पहले से पहले साल के व्यय के आँकड़े;

(2) पिछले साल के प्राक्कलित व्यय के आँकड़े;

(3) पिछले साल के संशोधित व्यय के आँकड़े; तथा

(4) चालू वर्ष के प्राक्कलित व्यय के आँकड़े।

इन चार प्रकार के आँकड़े देने का उद्देश्य यह है कि आयव्ययक पर बहस करते समय सभासद जान सकें कि पिछले वर्षो में व्यय कितना था और अब कितना बढ़ाया जा रहा है।

1959-60 से प्राक्कलन समिति की सिफ़ारिश के परिणामस्वरूप माँगों में कितना हिस्सा योजना व्यय के नाते है यह भी दिखलाया जाता है। माँग के अन्तर्गत योजना निमित्त सारा व्यय एक परिशिष्ट के रूप में माँग के बाद दिखलाने की भी अब प्रथा है।

प्रत्येक माँग पुस्तक में सर्वप्रथम उन में कौन-कौन सी माँगें शामिल हैं इसका ज़िक्र होता है ताकि किसी मंत्रालय के अधीन कितनी माँगें हैं, यह जाना जा सके। उदाहरणार्थ 1963-64 के केन्द्रीय आयव्ययक में "सिंचाई तथा विद्युत् मंत्रालय" के अन्तर्गत निम्नलिखित माँगे गिनाई गई हैं :—

माँग नं० 68 सिंचाई तथा विद्युत् मंत्रालय

माँग नं० 69 बहूद्देश्यीय नदी योजनाएँ

माँग नं० 70 सिंचाई तथा विद्युत् मंत्रालय का अन्य राजस्व व्यय

माँग नं० 133 बहूद्देश्यीय नदी योजनाओं पर पूँजी व्यय

माँग नं० 134 सिंचाई तथा विद्युत् मंत्रालय का अन्य पूँजी व्यय

जब माँगें सभा में पारित हो जाती हैं, तब वित्तीय भाषा में उन्हें अनुदान (grant) कहा जाता है ।

(स) व्याख्यात्मक ज्ञापन:—व्याख्यात्मक ज्ञापन का उद्देश्य आयव्ययक-विवरण में शामिल विभिन्न राशियों के पीछे ह्रास या वृद्धि के क्या कारण हैं, यह बतलाना है । इसमें किसी खास वित्तीय व्यवहार की व्यवस्था क्या होगी इसका भी जिक्र होता है ताकि व्यय की अनुमति देते समय उसके लिए क्या व्यवस्था की गई है, इसका भी ध्यान रखा जा सके । व्याख्यात्मक ज्ञापन के निम्नलिखित दो भाग होते हैं;:—

भाग 1

(1) राजस्व तथा व्यय का सारांश,

(2) राजस्व प्राक्कलनों पर टीका,

(3) व्यय प्राक्कलनों पर टीका।

भाग 2

(1) प्रारम्भिक शब्द,

(2) पूँजी व्यवहारों का सारांश,

(3) पूँजी व्यवहारों पर टीका,

(4) भारत सरकार की ऋण स्थिति,

(5) भारत सरकार का बक़ाया ऋण।

इन दोनों भागों के पूर्व एक "प्रारम्भिक टिप्पणी" होती है जिसके पहले भाग में आयव्ययक के स्वरूप आदि के बारे में बतलाया जाता है व दूसरे भाग में यदि लोक लेखा पद्धति में कोई परिवर्तन हुआ हो तो वह दिया जाता है ।

व्याख्यात्मक ज्ञापन में कुछ और बातें भी शामिल की जाती हैं जो इस प्रकार हैं : आय तथा व्यय में दस वर्ष की वृद्धि का चित्र, अर्थोपाय बजट का सारांश, ऋण तथा अग्रिम राशियाँ जो राज्य सरकार को दी गई हों, पाँच लाख रुपए से अधिक लगने वाली नवीन सेवाओं का सारांश । कुछ वर्ष पूर्व व्याख्यात्मक ज्ञापन बहुत छोटा हुआ करता था, पर संसद् के सभासदों द्वारा आयव्ययक की चर्चा में अधिक रुचि लेने के परिणाम-स्वरूप अब इसमें अधिक विस्तृत जानकारी दी जाती है । रक्षा व्यय की विशालता के कारण व उनके लेखा शीर्षो आदि में भी जरा भेद होने के कारण रक्षा माँग पुस्तक के साथ अलग से एक व्याख्यात्मक ज्ञापन भी होता है । व्याख्यात्मक ज्ञापन में वह सभी जानकारी दी जाती है, जो वर्ष की आयव्यय व्यवस्था को पूरी तरह समझने में उपयोगी हो । प्राक्कलन समिति की सिफ़ारिशों के परिणामस्वरूप व्याख्यात्मक ज्ञापन में अब निम्नलिखित बातें भी शामिल की जाती हैं :—

(1) राष्ट्रीय उद्योगों में विनियोजित पूँजी से लाभ :— पहले केवल प्रमुख उद्योगों में विनियोजित पूँजी की राशि दी जाती थी पर अब उसके साथ साथ उन उद्योगों से मिलने वाले लाभ को भी दिखलाया जाता है ताकि उन उद्योगों की लाभ प्रवणता जानी जा सके ।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को दिए गए अनुदान और उनके प्रयोजन आदि ।

(3) राजस्व से होने वाले व्ययों का स्थूल रूप से वर्गीकृत किया हुआ विवरण :— वार्षिक वित्त विवरण से बनाया हुआ आय और व्यय का एक संक्षिप्त विवरण पहले भी व्याख्यात्मक ज्ञापन में दिया जाता था पर अब उसे अधिक सुबोध बनाने के लिए उक्त वर्गीकृत विवरण भी दिया जाता है ।

(द) वित्त मंत्री का भाषण:—वित्त मंत्री के भाषण में सरकारी अर्थनीति का उल्लेख, तथा सरकार का अगले वर्ष का कार्यक्रम आदि होता है । कहा जाता है कि पहले वित्त मंत्रियों के भाषण अत्यधिक लम्बे हुआ करते थे पर अब व्याख्यात्मक ज्ञापन में जानकारी की बहुलता, अर्थनीति पर अलग से सर्वेक्षण आदि होने के कारण वित्त मंत्रियों के भाषण छोटे होने लगे हैं ।

4. आयव्ययक और विधान-मंडल

संविधान के अनुच्छेद 112 में स्पष्ट आदेश है कि राष्ट्रपति "वार्षिक वित्त विवरण" प्रतिवर्ष* संसद् के दोनों सदनों के सामने उपस्थापित कराएगा । अत: इसमें कोई प्रथा या सहूलियत की बात नहीं है । यह प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का एक अनिवार्य नियम है जो कार्यान्वित होना ही चाहिए ।

मोटे तौर पर संसद् में आयव्ययक की चार अवस्थाएँ होती हैं :

(1) सामान्य बहस,

(2) माँगों पर बहस और उनकी अनुमति,

(3) विनियोग विधेयक पर विचार, तथा

(4) वित्त विधेयक पर विचार ।

संसद् में आयव्ययक भले ही दोनों सदनों में रखवाया जाए पर राज्य सभा में उस पर सामान्य बहस के सिवा और कुछ नहीं हो सकता । माँगों को पारित करने का अधिकार केवल लोकसभा को ही होता है । विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक लोक सभा द्वारा पास होने पर राज्य सभा में भेजे जाते हैं ।

नियमों के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि आयव्ययक अमुक दिन ही सदनों में उपस्थापित किया जाए । लोक सभा के कार्य संचालन तथा प्रक्रिया संबंधी नियमों में केवल इतना लिखा हुआ है कि आयव्ययक उस दिन सदन में रखाया जाएगा जिस दिन राष्ट्रपति आदेश दें । पर प्रथा से रेल आयव्ययक 15 फरवरी को तथा सामान्य आयव्ययक फरवरी की आखिरी तारीख को सभा में पेश किया जाता है । ऐसी ही विधि राज्य सभा के सदन में आयव्ययक पेश करने में होती है । सभा में पेश होने

*1957 में रेल आयव्ययक और सामान्य आयव्ययक वर्ष में दो बार सदन में उपस्थापित किए गए थे–पहली बार प्रथम लोक सभा के 15वें अधिवेशन में और दूसरी बार, द्वितीय लोक सभा के पहले अधिवेशन में । पहली लोक सभा ने कुछ लेखानुदान पारित किए थे । अतएव द्वितीय लोक सभा के सामने पेश की गई माँगों में पहली लोक सभा द्वारा पारित राशियाँ भी शामिल थीं ।

पर आदि से अन्त तक कार्यवाही करीब 30 दिन चलती है जिसमें तीन दिन सामान्य बहस, 22 दिन माँगों पर बहस और उनको पारित करना, तथा पाँच दिन विनियोग विधेयक तथा वित्त विधेयक पर बहस और उसे पारित करने में लगते हैं। यह आवश्यक नहीं कि यह सारा कार्यक्रम लगातार होता रहे । बीच में संसद् की अन्य महत्तपूर्ण कार्यवाहियाँ भी होती रहती हैं । पर इतना ज़रूर है कि शुरू होने से दो महीने के अन्त तक सारी क्रिया समाप्त हो जानी चाहिए क्योंकि यदि आयव्ययक प्रक्रिया में आखिरी क्रिया यानी वित्त विधेयक का पास होना, मार्च के आखिर तक न हो तो मार्च-अप्रैल में एकत्रित किए हुए सारे कर व भार को लौटाना पड़ता है। जैसा कि पाठकों को पता ही होगा वित्त मंत्री के भाषण में ही नए कर आदि अर्थोपायों का जिक्र होता है। ये कर पहली अप्रैल अर्थात् नवीन वित्तीय वर्ष के शुरू होते ही जारी हो जाते हैं, भले ही वित्त विधेयक पास न हुआ हो। "अस्थाई कर संग्रह अधिनियम" (Provisional Collection of Taxes Act) के अन्तर्गत सरकार को अधिकार है कि वह वित्त मंत्री द्वारा कर प्रस्ताव घोषित करते ही उन्हें लागू कर सकें। पर इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार अस्थाई तौर पर कर शुल्क आदि केवल दो महीने के लिए ही लागू कर सकती है। अतएव आयव्ययक को दो महीने की अवधि में पारित करना ही पड़ता है। सभा में आयव्ययक के कार्यक्रम पर यही बन्धन है । संसद् में बहस संबंधी प्रतिदिन का कार्यक्रम "कार्य मंत्रणा समिति" (Business Advisory Committee) की सलाह से अध्यक्ष द्वारा निश्चित किया जाता है ।

(क) सामान्य बहस :— संसद् में सामान्य बहस का उद्देश्य सदस्यों को अधिक महत्तपूर्ण तथा नीति संबंधी बातों के लिए अवसर देना है जो माँगों को राशियों में यहाँ वहाँ कटौती सुझाने का कष्ट नहीं करना चाहते । यह एक परम्परागत प्रथा है जो उस समय से चली आ रही है जब सदन में माँगों पर बहस नहीं हुआ करती थी अथवा यदि बहस होती थी तो उन पर संसद् की कोई अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं होती थी । पर विकसित संसदीय प्रणालियों ने इसे इसलिए कायम रखा है कि इससे सरकार को सदन की प्रवृत्ति जानने का अवसर मिलता है। सामान्य बहस में हुई आलोचना के परिणामस्वरूप अर्थोपाय प्रस्तावों में परिवर्तन करने के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। दूसरे सामान्य बहस में राजस्व के प्राक्कलनों पर भी चर्चा करने का अवसर मिलता है जो व्यय प्राक्कलनों की तरह "माँगों पर बहस" के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। प्रक्रिया की दृष्टि से केवल इतना ही उल्लेखनीय है कि सामान्य बहस के अन्त में वित्त मंत्री को बहस का जवाब देने का अधिकार होता है। दूसरे, सामान्य बहस के समय आयव्यय नीति विषयक कोई प्रस्ताव सभा में नहीं लाया जा सकता और न ऐसे प्रस्ताव पर मतदान ही हो सकता है।

(ख) माँगों पर बहस :— माँगों पर बहस आयव्ययक की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण भाग है। संविधान के अनुच्छेद 113(2) में विहित है कि व्यय के प्राक्कलन माँगों के रूप में लोक सभा के सम्मुख उपस्थित किए जाएँगे, जिस पर लोक सभा को स्वीकृति देने या न देने का अधिकार रहेगा। अर्थात् माँगों को स्वीकृत किए बिना आगे की विनियोग विधेयक आदि क्रियाएँ हो ही नहीं सकती। माँगों पर बहस केवल अनुदानों के पास करने के पहले की एक अवस्था है। हाँ, बहस में सदस्यों को सामान्य चर्चा की तरह चाहे जिस विषय पर बोलने का अधिकार नहीं होता। उसका माँग विशेष से ही सम्बन्ध होना चाहिए।

माँगों पर बहस और उनका पारित होना निश्चित और विस्तृत कार्यक्रम के अनुसार होता है। इस के लिए 22 दिन की माँगों पर बहस की अवधि को माँग समूह के अनुसार छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित किया जाता है अर्थात हर एक मंत्रालय के लिए दिन निश्चित किए जाते है। (जैसे, रक्षा मंत्रालय की माँगों के लिए चार दिन, परिवहन तथा संचार मंत्रालय की मांगों के लिए तीन दिन आदि आदि)। साधारणतया बड़े मंत्रालयो की माँगों के लिए छोटे मंत्रालयों की तुलना में अधिक दिन निश्चित किए जाते ह।

माँग एक सूचक प्रस्ताव (Motion) द्वारा पेश होती है, इसे अध्यक्ष पेश करता है; प्रस्ताव की भाषा इस प्रकार की होती है :

> "यह कि (अमुक) उद्देश्य के लिए 31 मार्च 19.. तक होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए राज्यपाल (राष्ट्रपति) को....से अधिक न होने वाली राशि स्वीकृत की जाए।"

माँग पेश होने पर विरोधी दल के सदस्य कटौती सूचक प्रस्ताव (Cut Motions) पेश करते हैं। यह एक तरह के संशोधन प्रस्ताव हैं जिसमें सदस्य यह व्यक्त करते है कि पूरी माँग का समर्थन करने की उनकी इच्छा नहीं है। कटौती प्रस्ताव विचारार्थ स्वीकृत होकर पेश होते ही उस माँग विशेष पर बहस शुरू हो जाती है।

कटौती प्रस्ताव तीन तरह के होते है :

(1) नीति विरोधक कटौती प्रस्ताव,

(2) मितव्ययता कटौती प्रस्ताव,

(3) प्रतीक कटौती प्रस्ताव ।

नीति विरोधक कटौती प्रस्ताव में सदस्य अनुदान विशेष के सम्बन्ध में अपना नैतिक विरोध प्रगट करते है। मितव्ययता कटौती में किसी अनुदान में कितनी कमी होनी चाहिए, इस पर प्रकाश डाला जाता है। प्रतीक कटौती में मंत्रालय विशेष या सारी सरकार के प्रति कोई खास शिकायत हो तो उसे प्रगट किया जाता है। नीति विरोधी कटौती प्रस्ताव में कहा जाता है "कि माँग की राशि घटा कर एक रुपया कर दी जाए"। मितव्ययता कटौती प्रस्ताव में कहा जाता है "कि माँग की राशि में अमुक राशि की कमी की जाए"। प्रतीक कटौती में कहा जाता है "कि माँग की राशि में 100 रुपए की कमी की जाए"।

कटौती प्रस्तावों को बहुत सोच समझ कर प्रस्तुत करना पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कटौती प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा विचारार्थ स्वीकार कर ही लिया जाए। नियम यह है कि कटौती प्रस्ताव में "विशेषाधिकार का प्रश्न" (Privilege Issue) नहीं उठाया जा सकता। उसमें किसी ऐसे विषय का उल्लेख भी नहीं किया जा सकता, जो किसी न्यायालय या तदधिकारी प्राधिकारी के सामने विचाराधीन हो। इसी प्रकार की अन्य शर्तें भी हैं।

कटौती प्रस्ताव पर सदस्यों को जो कुछ कहना है वह कह चुकने पर माँगें सभा के सम्मुख मतदान के लिए पेश होती हैं। इस अवसर पर यदि सरकार का कोई प्रवक्ता माँग के समर्थन में कुछ कहना चाहे तो उसे कहने का अधिकार होता है। जैसे-जैसे किसी माँग पर बहस हो चुकती है वैसे-वैसे उन्हें पारित कर दिया जाता है। अर्थात् यह नहीं कि सारी माँगों पर बहस होने पर उन्हें एक साथ पारित किया जाए। पर यह भी नियम है कि यदि समय के अन्त होने तक सभी माँगों पर कटौती प्रस्तावों के रूप में बहस न हो जाए तो अध्यक्ष उन्हें एक साथ सभा में पेश कर उन पर एक साथ स्वीकृति देने के लिए सदन को बाध्य कर सकता है। इस पद्धति को "विवादबंध" (Guillotine) की पद्धति कहते हैं जो अत्यधिक पुरानी है पर इसे अब भी उपयोगी समझा जाता है।

संसद् के सर्वोच्च होने के नाते प्रत्येक माँग पर उसकी अनुमति लिया जाना उपयुक्त ही है पर ऐसा कभी नहीं हुआ है कि संसद् ने अनुमति न दी हो, क्योंकि सरकार की किसी माँग को रोक लेने का अर्थ सरकार के कार्य-संपादन में अविश्वास का प्रस्ताव रखना है। विनियोग विधेयक को पारित करने का उद्देश्य भी सरकार को कार्य संपादन के लिए वित्त उपलब्ध कराना है। माँगों पर स्वीकृति लेना संसद् को सविस्तार अपना मत प्रगट करने का अवसर देना है। माँगें पारित होने पर विनियोग विधेयक के पारित होने में भी आसानी होती है।

अनुदानों की माँगों के बारे में दो और बातें उल्लेखनीय हैं। एक तो, इसमें केवल उन्हीं राशियों पर मत लिया जाता है जो भारत की समेकित निधि पर भारित* न हों अर्थात् यद्यपि माँग पुस्तकों में कुल राशि माँग के रूप में दिखलाई जाती है फिर भी स्वीकृति केवल उसी राशि की लेनी पड़ती है जो मतापेक्ष हो। दूसरे, अनुदान केवल भारत की समेकित निधि से निकाली जाने वाली राशियों के लिए होता है लोक लेखे से नहीं। लोक लेखे में शामिल निक्षेप निधि आदि से यदि राशियाँ निकालना हो तो उनके लिए संसद् की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती।

---

*(क) संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार निम्नलिखित राशियाँ भारत की समेकित निधि पर भारित मानी जाती हैं :—

1. राष्ट्रपति की उपलब्धियाँ और भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्धित अन्य व्यय,
2. राज्य सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा लोक सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते,
3. ऐसे ऋण भार जिनका दायित्व भारत सरकार पर है जिनके अन्तर्गत व्याज, निक्षेप निधि भार और ऋण प्रतिदान भार तथा उधार लेने और ऋण सेवा और ऋण प्रतिदान सम्बन्धी अन्य व्यय भी हैं,
4. (अ) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को दिए जाने वाले निवृत्ति वेतन (Pension) और भत्ते,

   (ब) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को दिए जाने वाले निवृत्ति वेतन,

(ग) **विनियोग विधेयक :** माँगों के पारित होने पर सदन में विनियोग विधेयक लाया जाता है। विनियोग विधेयक का उद्देश्य सभा द्वारा पारित तथा भारित व्यय को, विधिपूर्वक प्रशासकीय विभागों के लिए उपलब्ध कराना है। विनियोग विधेयक के बाहर साधारणतया सरकार को किसी प्रकार का व्यय करने का अधिकार नहीं होता। ऐसी आवश्यकता यदि पड़े तो उन्हें पूरक अनुदान आदि लेने पड़ते हैं जिसका उल्लेख आगे किया गया है। महालेखा परीक्षक तथा वित्त मंत्रालय इस बात पर निगरानी रखते हैं कि व्यय उसी उद्देश्य और सीमा में हुआ है जितना विनियोग विधेयक में निर्दिष्ट था।

(स) सर्वोच्च न्यायालय, भारत राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत किसी क्षेत्र से सम्बन्धित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है अथवा जो प्रथम अनुसूची के भाग (क) में उल्लिखित राज्य के तत्स्थानी प्रान्त के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में इस संविधान के आरम्भ से पूर्व किसी भी समय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था उसके न्यायाधीशों को या उनके बारे में दिए जाने वाले निवृत्ति वेतन,

5. भारत के नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक को या उनके बारे में दिए जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन,

6. किसी न्यायालय या मध्यस्थ न्यायाधिकरण के निर्णय आज्ञप्ति या पंचाट के भुगतान के लिए अपेक्षित राशियाँ,

(ख) संविधान द्वारा अथवा संसद् से विधि द्वारा 'भारित' घोषित किया गया अन्य व्यय। जैसे :—

1. आंध्र राज्य अधिनियम (1959 का 30वाँ) के अन्तर्गत मद्रास, आंध्र तथा मैसूर को भारत की समेकित निधि से दी जाने वाली राशियाँ।
2. केन्द्रीय अधिक उत्पादन कर (वितरण) अधिनियम के अधीन राज्यों को दी जाने वाली राशियाँ।
3. राज्य पुनर्संगठन अधिनियम 1956 के अन्तर्गत राज्यों को दी जाने वाली राशियाँ।

(ग) इसके सिवा संविधान के अन्य अनुच्छेदों के अनुसार निम्नलिखित व्यय भी भारत की संचित निधि पर भारित हैं :—

1. सर्वोच्च न्यायालय का शासकीय व्यय [अनुच्छेद 146(3)]
2. नियंत्रक तथा महालेखापाल के कार्यालय का व्यय [अनुच्छेद 148(6)]
3. राज्यों को दिए गए सहायता अनुदान [अनुच्छेद 273, 275(1)]
4. संघीय लोक सेवा आयोग का व्यय (अनुच्छेद 322)
5. उन्मूलित देशी राज्यों के राजाओं की निजी थैलियाँ (Privy Purses) (अनुच्छेद 271)।

विनियोग विधेयक वित्त मंत्री पेश करते हैं। विधेयक तभी पेश होता है जब अनुदानों की माँगें पारित हो चुकी होती है। माँगें पारित होने की आशा में विनियोग विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इनमें उन सारी भारित तथा मतापेक्ष राशियों का ज़िक्र होता है जो माँगों पर बहस के अन्तर्गत सभा ने पारित की हों। इसमें स्पष्ट शब्दों में इस बात का उल्लेख होता है की किस वर्ष के लिए और किस उद्देश्य के लिए कार्यकारिणी सरकार को यह राशि दी जा रही है। संविधान के अनुच्छेद 114(2) में कहा हुआ है कि जब विनियोग विधेयक सदन के सामने आया हो तो उसमें कोई ऐसा परिवर्तन नही सुझाया जा सकता जिससे कि अनुदान की राशि में फेरफार हो अथवा अनुदान का लक्ष्य बदला जाता हो अथवा भारत की समेकित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार हो। अतएव विनियोग विधेयक पर कोई विशेष बहस नहीं होती, क्योंकि पहले माँगों को पारित करते समय बहस हो चुकी होती है। बहस तभी होती है जब मॉगों के पारित होने और विधेयक के पेश होने के बीच कोई खास बात हुई हो। पेश होने से दो-तीन दिन के अन्दर विनियोग विधेयक सदन में पारित हो जाता है।

प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमों में एक नियम है कि विनियोग विधेयक पर वाद-विवाद सार्वजनिक महत्त्व के या विधेयक में आने वाले अनुदानों मे अन्तर्हित प्रशासनीय नीति के ऐसे विषयों तक ही सीमित रहेंगे जो पहले कभी न उठाए गए हों। यह भी नियम है कि विनियोग विधेयक पर चर्चा में अर्थोपाय प्रस्तावों पर बहस नहीं की जा सकेगी। चर्चा में विनियोग, पुर्नविनियोग, लोक लेखे में त्रुटि, व्यय में मितव्ययता जैसे विषय अलबत्ता उठाए जा सकते हैं। अन्य प्रक्रिया की दृष्टि से विनियोग विधेयक उन्ही अवस्थाओं से गुज़रता है जिन अवस्थाओं से कोई अन्य विधेयक। अर्थात् इसमें भी प्रवर समिति (Select Committee) की आवश्यकता होती है।

(घ) वित्त विधेयक :—विनियोग विधेयक पारित होने पर वित्त विधेयक पर चर्चा प्रारम्भ होती है। वित्त विधेयक* वह विधेयक है जो सरकार द्वारा अगले वित्तीय वर्ष के लिए वित्तीय प्रस्थापनाओं को लागू करने के लिए प्रति वर्ष सदन के सम्मुख लाया जाता है। संसद् के कार्य संचालन तथा प्रक्रिया संचालन सम्बन्धी नियमों के अनुसार किसी कालावधि के लिए अनुपूरक कर आदि को लागू कराने वाले विधेयक भी वित्त विधेयक की परिभाषा में आते हैं। पर ऐसा अवसर बिरले ही आता है। कहते हैं एक बार 1931 में और बाद में 1956 में दो बार पूरक वित्त विधेयक सभा के सम्मुख लाए गए थे। साधारणतया प्रत्येक वर्ष के लिए एक ही वित्त विधेयक होता है जो (फरवरी के आखिरी दिन) आयव्ययक प्रस्तुत करने के बाद वित्त मंत्री द्वारा सभा में तुरंत पेश किया जाता है।

वित्त विधेयक निश्चित दिन सभा में वित्त मंत्री की सलाह से एक प्रस्ताव द्वारा विचारार्थ ग्रहण किया जाता है। प्रस्ताव पर साधारणतया सरकार की सारी व्यय नीति अथवा आय नीति पर सामान्य बहस हो सकती है। जब प्रस्ताव को सदन की स्वीकृति

*वित्त विधेयक के साथ एक ज्ञापन हुआ करता है जिसमें वित्त विधेयक में कल्पित कर तथा शुल्क की दरों के परिवर्तन के परिणामों का ब्योरा दिया जाता है, ताकि यह समझा जा सके कि नवीन कर-व्यवस्था का क्या अर्थ है।

मिल चुकी होती है तो उसे एक प्रवर समिति को भेजा जाता है। प्रवर समिति से वापिस आने के बाद विधेयक पर खंडशः बहस होती है। विचाराधीन वित्त विधेयक में ऐसे कोई संशोधन नहीं सुझाए जा सकते, जिनका परिणाम विधेयक में प्रस्तावित किसी कर में वृद्धि अथवा नया कर जारी कराना हो क्योंकि वित्तीय मामलों की प्रक्रिया के अनुसार ऐसे संशोधन के लिए पहले राष्ट्रपति की आज्ञा चाहिए। लेकिन कर की दर में कमी सुझाने वाले संशोधन स्वीकार हो सकते हैं और प्रायः जनता के मत का ध्यान रखते हुए वित्त मंत्री ऐसा करते भी हैं। बाद में यदि किसी को कुछ नए खण्ड विधेयक में डालने हों तो उस पर विचार किया जाता है और अन्त में विधेयक के परिशिष्ट (जिनमें करों, शुल्कों की दरें विस्तार आदि दिए रहते है) में उन पर विचार होता है और यह हो जाने के बाद विधेयक पर सदन का मत लिया जाता है। वित्त विधेयक पर चर्चा होते समय यह रूढ़ि है कि सरकारी प्रवक्ता अर्थात् मंत्रीगण सदन में उपस्थित हों। वित्त विधेयक में एक महत्त्वपूर्ण घोषणा होती है और वह यह है कि विधेयक के पास होते ही उसमें निर्दिष्ट कर तुरन्त लागू हो जाएँगे। यह क्रिया पहली अप्रैल के पूर्व हो जाती है अतएव नए कर पहली अप्रैल से स्थाई रूप से लागू हो जाते हैं।

विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक दोनों के लोक सभा में पास हो जाने के बाद उन्हें राज्य सभा में भेज दिया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 109 के अनुसार राज्य सभा विनियोग विधेयक तथा वित्त विधेयक में कोई हेर-फेर नहीं कर सकती क्योंकि ये "वित्तीय विधेयक" (Financial Bills) होते हैं। पर सभा को इन पर बहस करने का अधिकार होता है। दोनों विधेयक राज्य सभा के सम्मुख दो-तीन दिन रहते हैं और उनकी अनुमति आने पर वे फिर लोक सभा के सम्मुख आते हैं तब विधेयक पारित समझे जाते हैं। विधेयकों का पास होना संसद् में आयव्ययक की क्रिया का समाप्त होना माना जाता है।

5. विशिष्ट प्रकार के आयव्ययक

यदि सभी घटनाएँ कल्पित अपेक्षाओं के अनुरूप होती रहें तो आयव्ययक एक बार पास होने पर उसमें घटती बढ़ती की आवश्यकता ही न हो। पर परिस्थितियाँ कभी कभी ऐसा रुख लेती हैं कि या तो व्यय अधिक हो जाता है या कम। या कभी ऐसा भी होता है कि राशि कितनी चाहिए यह तो जाना जा सके, पर उसका उद्देश्य न बतलाया जा सके। ऐसी परिस्थितियों का सामना करने के लिए ही संविधान और कार्य संचालन तथा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में ऐसे नियम हैं जो इन असाधारण परिस्थितियों को सुलझा सकें। स्वयं संसदीय कार्यक्रम (रूढ़िगत मार्च से मई अन्त तक की अवधि जिसे 'बजट अधिवेशन' कहते हैं) एक ऐसा काल है जब वित्तीय वर्ष का विशेष ध्यान नहीं रखा जा सकता। अर्थात् वित्तीय वर्ष तो पहली अप्रैल से शुरू होता है पर संसद् की अनुमति केवल मई के अन्त तक ही मिल पाती है। अतएव निम्नलिखित विशेष उपाय अथवा विशिष्ट प्रकार के आयव्ययक व्यवस्थित हैं :

1. लेखानुदान (Vote on Account),
2. पूरक अनुदान (Supplementary Grants),

3. अतिरिक्त अनुदान (Excess Grant),

4. प्रत्ययानुदान (Vote of Credit),

5. अपवादानुदान (Exceptional Grant).

(क) लेखानुदान:—लेखानुदान वह अनुदान है जो संसद् में वार्षिक वित्त विवरण के अन्तर्गत अनुदानों के पास होने तक के काल में कार्यकारिणी को धन उपलब्ध कराता है। संविधान के अनुच्छेद 116(1) (क), जिसमें लेखानुदान विहित है, लेखानुदान किसी खास काल तक होने का जिक्र नहीं। उसमें तब तक के लिए लेखानुदान दिलाना विहित है जब तक कि नैमित्तिक (Regular) अनुदान सदन के सम्मुख लम्बित रहें। पर चूँकि आयव्ययक मई के अन्त तक पास हो ही जाता है साधारणतया लेखानु-दान दो महीने के लिए लेने की प्रथा है। पहला लेखानुदान 1951 के आयव्ययक अधिवेशन में अध्यक्ष तथा केन्द्रीय सरकार की अनुमति से लिया गया था।

लेखानुदान को कोई भिन्न अनुदान न समझना चाहिए। यह सच है कि लेखानुदान के लिए माँग पुस्तक अलग से छपती है पर इसमें अनुदानों की संख्या और क्रम वही रहता है जैसा कि वर्ष भर वाली माँग पुस्तकों में। लेखानुदान बनता भी तभी है जब वर्ष के अनुदानों की सूची तैयार हो जाती है। केवल अनुदानों के सामने दी हुई राशियों में अन्तर होता है। यदि माँग नं० 14 में वर्ष भर के अनुदान में 12 लाख रुपए अंकित हों तो लेखानुदान में उस माँग के आगे केवल दो लाख रुपए अंकित होंगे। अर्थात् वर्ष भर के लिए जितनी राशि दी हुई होती है उसके दो महीने के अनुपात में राशि दी जाती है। साथ ही यह अनुपात उस विस्तार से लेखानुदान में नहीं दिया जाता जिस अनुपात में वह पूर्वोक्त वर्ष भर वाली अनुदान पुस्तकों में होते हैं। यहाँ केवल अनुदान रचना का पहला भाग अर्थात् कुल राशि न कि उसका वितरण दिया जाता है। यह धारणा रहती है कि दो लाख का वितरण उपमाँग शीर्षो में उसी अनुपात में किया जाएगा, जिस अनुपात में पूर्वोक्त 12 लाख का वितरण हुआ हो। यहाँ यह भी बतला देना चाहिए कि भारतीय वित्त व्यवस्था में लेखानुदानों की अक्षरशः पूर्ति पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि इंगलैण्ड में। यदि दो महीने की अवधि में दो लाख से अधिक व्यय भी हो जाए तो विनियोग लेखा परीक्षा के अन्तर्गत महालेखापाल कोई आपत्ति नहीं उठाते। यदि दो महीने के तुरन्त बाद सारे साल के लिए अनुदान के रूप में संसद् ने सरकार को धन उपलब्ध कर दिया हो तो महालेखापाल केवल वर्ष भर की राशि से ही वास्तविक व्यय की तुलना करते हैं। अर्थात् लेखानुदान एक स्थूल उपाय माना जाता है जिसका एकमात्र उद्देश्य सरकार को अस्थाई रूप से धन उपलब्ध कराना है।

संसद् में लेखानुदान के विषय में प्रक्रिया यह है कि आयव्ययक पेश हो चुकने के बाद पहले ही दिन लेखानुदान सभा में पेश किया जाता है। लेखानुदानों की माँगों पर सभा में उसी प्रकार बहस होती है जिस प्रकार अनुदान की माँगों पर। अन्तर केवल यह है कि अनुदानों की माँगों पर प्रत्येक माँग पर अलग से बहस की जाती है। लेखानुदान में सारी माँगों पर एक साथ बहस हो जाती है। माँगों पर बहस होने पर

लेखानुदान के विषय में सभा में एक विनियोग विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। विधेयक की भाषा उसी प्रकार की होती है जिस प्रकार की सामान्य आयव्ययक के विनियोग विधेयक की। विधेयक में पूर्व प्रमाणित माँगों की एक सूची होती है। विधेयक पर मामूली तरह की बहस होती है क्योंकि आगे चल कर पूरे वर्ष के खर्च के लिए विधेयक पर बहस होती ही है। सारी कार्यवाही साधारणतया एक ही दिन में समाप्त हो जाती है। लोक सभा द्वारा लेखानुदान विधेयक पास होने पर उसे राज्य सभा को भेज दिया जाता है वहाँ भी इसी प्रकार की प्रक्रिया होती है।

(ख) पूरक अनुदान:—जैसा कि पहले बतलाया गया था यह सदैव सम्भव नहीं कि व्यय उतनी ही मात्रा में हो जितना कि संसद् ने वार्षिक विनियोग अधिनियम के अन्तर्गत पारित किया हो। अतएव संविधान में यह व्यवस्था है कि आवश्यकता पड़ने पर सरकार पूरक अनुदान ले सकती है। पूरक अनुदान संसद् से यथाशीघ्र लेना चाहिए। अर्थात् आवश्यकता पड़ते ही ले लेना चाहिए क्योंकि बग़ैर संसद् की अनुमति के व्यय करना सम्भव नहीं है। पर बहुत जल्दी भी पूरक अनुदान नहीं लिए जा सकते क्योंकि कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जब प्रगटतः तो अधिक वित्त की आवश्यकता पड़ती है पर बाद में एक अनुदान के किसी अन्य उपशीर्षक से धन उपलब्ध हो सकता है। दूसरे, संसद् के अधिवेशन भी हमेशा नहीं होते। अतएव प्रथा यह है कि पूरक अनुदान तीन-चार महीने की अवधि से लिए जाते हैं। इस अवधि में भारत की आकस्मिकता-निधि से वित्त लिया जाता है और पूरक अनुदान मिलते ही उसकी रिक्तता पूरी कर दी जाती है।

पूरक अनुदान के मुख्य दो भेद हैं :—

(1) पूरी-पूरी राशि के पूरक अनुदान, और

(2) प्रतीकानुदान।

पूरक अनुदान उसी सेवा अथवा उस नवीन सेवा के लिए हो सकते हैं जिनके लिए संसद् ने पहले अनुमति दे दी हो। नियमों में प्रतीकानुदान के लिए योग्य परिस्थितियाँ इस प्रकार गिनाई गई हैं :—

(1) जब वित्त उपलब्ध हो (अर्थात् मूल अनुदानों के गौण शीर्षों में धन बचा हो) पर एक नवीन सेवा के लिए व्यय की आवश्यकता हो।

(2) जब एक नवीन सेवा पर व्यय करना हो तो उसके लिए धन किसी ग़ैर-सरकारी क्षेत्र से विशेष सहायता के रूप में मिलने वाला हो।

(3) तथा जिन अवस्थाओं में मूल अनुदान लिए गए हों, उन अवस्थाओं में ही परिवर्तन हो गया हो यद्यपि परिवर्तन के लिए संसद् की विशिष्ट अनुमति लेना आवश्यक न हो।

पूरक अनुदानों के निर्माण का यह तरीका है कि प्रत्येक संसदीय अधिवेशन के पूर्व शासकीय मंत्रालय वित्त मंत्रालय को यह सूचित करता है कि उन्हें कितनी अधिक राशि की आवश्यकता है। इन माँगों को वार्षिक अनुमानों की भाँति महालेखापाल को भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वित्त मंत्रालय स्वयं उनकी परीक्षा कर

लेता है व यदि आवश्यक हो तो "व्यय वित्त समिति" * (Expenditure Finance Committee) का भी परामर्श ले लिया जाता है। यह क्रिया होने पर उन्हें पूर्वोक्त माँग पुस्तकों की तरह ही एक छोटी माँग पुस्तक के रूप में सभा के सामने प्रस्तुत कर दिया जाता है।

पूरक माँग की पुस्तक पूँजी और राजस्व व्यय के लिए अलग अलग नहीं बनती। सारे पूरक अनुदान एक ही जगह संग्रहीत होते हैं। इसमें कोई बड़ा व्याख्यात्मक ज्ञापन भी नहीं होता, केवल प्रत्येक पूरक माँग के नीचे पूरक माँग लेने की आवश्यकता का उल्लेख करना पड़ता है। तुलना के लिए यह भी उल्लेख करना पड़ता है कि मूल अनुदान की राशि कितनी थी। भारित और मतापेक्ष राशियाँ अलग अलग से दिखलानी पडती हैं। पूरक अनुदानों के विषय में यह सबसे महत्त्व की बात है कि ये माँगे वित्तीय वर्ष पूरे होने के पहले ही सभा से पारित हो जानी चाहिए। इसीलिए अक्सर देखा जाता है कि नवीन वर्ष का आयव्ययक 28 फरवरी को सभा में प्रस्तुत हो जाने पर भी मार्च के महीने में सदन के सम्मुख चालू वर्ष के लिए पूरक माँगें उपस्थित होती हैं।

पूरक अनुदानों पर संसद् में केवल उन मदों तक ही वाद-विवाद सीमित रहता है जिनसे वे अनुदान बने हों। यदि चर्चागत मदों की व्याख्या करने या उन्हें स्पष्ट करने के लिए आवश्यक न हो तो मूल माँगों पर या उनसे सम्बन्धित नीति पर चर्चा नहीं होती। इसी तरह पूरक माँग सम्बन्धी विनियोग विधेयक सभा के सम्मुख रहते हुए केवल स्पष्टीकरण के विषयों पर चर्चा हो सकती है नीति के प्रश्न पर नहीं। रूढ़ि है कि यदि पूरक माँग किसी नवीन सेवा के सम्बन्ध में हो तो उसमें अन्तर्हित नीति के प्रश्न भी बहस में उठाए जा सकते हैं।

लोक सभा में पूरक अनुदानों का विधेयक पास हो जाने पर वह राज्य सभा को भेज दिया जाता है। 1950 में लोक सभा के सम्मुख पूरक माँगें पेश होने पर उन पर चर्चा होने के पूर्व प्राक्कलन समिति ने माँगों की जाँच की थी और समिति के प्रतिवेदन होने पर संसद् ने माँगों को अनुमति दी थी पर तब से प्राक्कलन समिति द्वारा ऐसी कोई जाँच नहीं की गई है।

(ग) **अतिरिक्त अनुदानः**— वित्तीय व्यवहार कितने ही नियन्त्रण के साथ क्यों न किए जाएँ और आवश्यक पूर्ति के लिए यथासमय पूरक अनुदान लेने की कितनी ही सावधानी क्यों न बरती जाए ऐसे अवसर आते हैं (ग़लती से अथवा परिस्थितियों की विवशता से) जब विनियोग अधिनियम में दी हुई राशि से अधिक व्यय हो ही जाता है। संसदीय प्रथा में यह नियम विरुद्ध है क्योंकि कोई ऐसी राशि खर्च नहीं हो सकती जिसके लिए विनियोग विधेयक में अनुमति न हो। अतएव संविधान ने यह व्यवस्था कर दी है कि ऐसी परिस्थितियों में व्यवहार के बाद भी (अर्थात् वित्तीय वर्ष के बाद) संसद् की अनुमति ली जा सकती है। संविधान ने केवल अनुमति की ही बात कही है पर चूँकि अतिरिक्त

*"व्यय वित्त समिति" वित्त मंत्रालय की एक सलाहकार समिति है जो विशेष तरह के व्यय प्रस्तावों की परीक्षा करती है। इसके बारे में अधिक विस्तार से वित्त नियंत्रण के अन्तर्गत अगले अध्याय में बतलाया गया है।

व्यय की कोई हद होनी चाहिए और ऐसे सीमोपरि व्यय सीमोचित रहें, अतएव लोक सभा ने उसमें यह एक और शर्त* लगा दी है कि लोक लेखा समिति द्वारा पहले उनकी भली भाँति परीक्षा की जाए अर्थात् सीमोपरि व्यय की माँगें सभा के सम्मुख आने के पूर्व समिति को यह देख लेना चाहिए कि सीमोपरि व्यय वास्तव में परिस्थितिवश था ; किसी लापरवाही के कारण नहीं । लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन मिल जाने पर वित्त मंत्रालय द्वारा सीमोपरि व्यय की माँगें बनाकर सभा के सम्मुख पेश की जाती हैं । सभा में सीमोपरि व्यय की माँगों पर बहस नहीं होती । माँगों के साथ ही विनियोग विधेयक भी सभा के सम्मुख लाया जाता है । साधारण बहस के बाद यह विधेयक पारित कर दिया जाता है जिस पर राज्य सभा में भी वैसा ही पारण होता है ।

1956-57 तक सीमोपरि अनुदान सभा के सम्मुख तभी आते थे जब कि किसी वित्तीय वर्ष के लेखे बन्द हो चुके होते और उस पर नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन भी सभा में प्रस्तुत हो चुकता (जिसके लिए आसानी से दो तीन साल लग जाते) । पर 1956-57 के लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन के परिणामस्वरूप अब यह प्रथा है कि सारे विनियोग लेखे और उस पर लेखा परीक्षा प्रतिवेदन का इन्तज़ार किए बिना ही नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक सीमोपरि व्यय पर अपनी रिपोर्ट संसद् को पेश करता है ताकि लोक लेखा समिति तुरन्त उसकी परीक्षा कर सके व सरकार भी सीमोपरि व्यय पर यथाशीघ्र संसद् की अनुमति ले सके ।

(घ) **प्रत्ययानुदान**:—प्रत्ययानुदान की व्यवस्था संविधान ने असाधारण समयों के लिए की है । युद्ध जैसी परिस्थितियों में यह सदैव संभव नहीं कि व्यय की माँगें उसी विस्तार व्यवस्था से संसद् के सम्मुख लाई जाएँ जैसी कि साधारण परिस्थितियों में । क्योंकि व्यय की मात्रा इतनी अधिक हो सकती है कि उनका विस्तार देना कठिन हो सकता है अथवा व्यय के प्रयोजन ही बिल्कुल अनिश्चित हो सकते हैं । साथ ही प्रजातन्त्र पद्धति को स्वीकार करते हुए किसी व्यय के लिए संसद् की अनुमति आवश्यक है । अतएव सभा को संविधान ने यह अधिकार दिया है कि वे इस प्रकार के अनुदान भी अनुमोदित कर सकती है जिसमें कोई खास राशि और प्रयोजन इंगित न हों । यह व्यवस्था इंगलैण्ड के "वोट आफ क्रेडिट" का अनुकरण करते हुए भारतीय संविधान में की गई है । भारत की संसद् के सामने ऐसे अनुदान देने की अभी तक कोई परिस्थिति नहीं आई है ।

---

*यह शर्त लोक सभा के कार्य संचालन तथा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में लोक लेखा समिति का ज़िक्र करते हुए नियम 308(4) में दी हुई है, इसकी चर्चा अगले अध्याय में की गई है ।

लोक सभा द्वारा इस नियम के बनाए जाने का कारण लोक लेखा समिति ही थी । 1921-22 की लोक लेखा समिति ने अपने प्रतिवेदन में सिफ़ारिश की थी कि "यदि किसी वित्तीय वर्ष के खाते बन्द होने पर उसमें यह पाया जाए कि किसी भाग के अंतर्गत वास्तविक व्यय अनुदान से अधिक हो गया है तो वह सीमोपरि व्यय सभा द्वारा पास होना चाहिए । यह अतिरिक्त व्यय पहले समिति द्वारा परीक्षित होना चाहिए व बाद में सभा के सम्मुख सीमोपरि व्यय प्रस्तुत करते समय सरकार को समिति का प्रतिवेदन सभा के सम्मुख पेश करना चाहिए" । समिति की यह सिफ़ारिश सरकार ने मान ली थी । तब से लोक सभा की यह नई शर्त व्यवहृत है ।

(च) अपवादानुदान:—अपवादानुदानों की व्यवस्था भी संविधान ने असाधारण परिस्थितियों के लिए की है। प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान में अन्तर यह है कि जहाँ प्रत्ययानुदान में व्यय के विस्तार व वर्णन नहीं दिए जाते हैं वहाँ अपवादानुदान में अनुदान का एक से अधिक वर्ष के लिए लागू होने के नियम का अपवाद किया जाता है। संकट काल में सभा एक से अधिक वर्ष के लिए अनुदान दे सकती है जो साधारण वार्षिक आय व्यय द्वारा संभव नहीं। यह व्यवस्था भी इंगलैण्ड के "वोट आफ़ क्रेडिट" का अनुकरण करते हुए की गई है। प्रत्ययानुदान व अपवादानुदान के विषय में संसदीय प्रक्रिया उसी प्रकार होती है जिस प्रकार की सामान्य आयव्ययक के विषय में।

o o o

अध्याय 7

वित्तीय नियंत्रण

प्रत्येक सुगठित वित्त व्यवस्था में वित्तीय नियंत्रण आवश्यक है। वित्तीय नियंत्रण का उद्देश्य राष्ट्र के धन का अधिक से अधिक फल दिलाना है। भारतीय वित्त व्यवस्था में भी वित्त नियन्त्रण का प्रबन्ध है। यह नियन्त्रण दो प्रकार से होता है।

(1) सरकारी वित्तीय नियंत्रण, तथा

(2) संसदीय वित्तीय नियन्त्रण।

बग़ैर सरकारी वित्तीय नियन्त्रण के संसदीय वित्तीय नियन्त्रण नहीं हो सकता और बग़ैर संसदीय नियन्त्रण के सरकारी नियन्त्रण में बल नहीं। वैसे तो प्रत्येक विभाग तथा प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को अपने क्षेत्र में वित्त नियन्त्रण करना पड़ता है पर इस सम्बन्ध में सरकारी क्षेत्र में वित्त मन्त्रालय का विशष दायित्व है। संसदीय वित्तीय नियन्त्रण की ज़िम्मेदारी उन दो समितियों पर विशेष रूप से है जिन्हें "वित्तीय समितियाँ" कहते है।

1. सरकारी वित्तीय नियंत्रण

सरकारी वित्तीय नियन्त्रण दो अवस्थाओं में होता है: (क) चालू व्यय के समय तथा (ख) भावी व्यय के समय। यह सर्वविदित नियम है कि संसद् द्वारा व्यय प्रस्तावों का पारित हो जाना सरकारी विभागों को खर्च करने के लिए पर्याप्त अधिकार नहीं दिलाता। प्रत्येक व्यय-प्रस्ताव के समय विभागों को एक अनुमति लेनी पड़ती है जो वित्तीय भाषा में "व्यय अनुमति" कहलाती है। संसद् द्वारा व्यय प्रस्तावों के पारित होने से सिर्फ़ इतना ही फ़र्क़ पड़ता है कि व्यय-नियंत्रण क्षेत्र सीमित हो जाता है क्योंकि व्यय कार्यक्रम ऐसे ही होने चाहिए जो संसद् द्वारा पारित हो चुके हैं। पर वास्तव में व्यय के पूर्व मंज़ूरी* का होना आवश्यक है। वित्त मन्त्रालय ने इस सम्बन्ध में प्रत्येक विभाग को कुछ वित्तीय अधिकार दिए हैं पर उन अधिकारों के बाहर का प्रस्ताव होने पर उन्हें वित्त विभाग में भेजना पड़ता है।

---

*व्यय अनुमति के सम्बन्ध में इधर बहुत विवाद चल रहा है। 1954-55 के सिविल विभागों के लेखा प्रतिवेदन में नियंत्रक तथा भूतपूर्व महालेखा परीक्षक श्री अशोक चन्दा ने अपना मत प्रदर्शन किया था कि वित्त मंत्रालय में एक स्थूल जाँच होनी चाहिए और सक्ष्म जाँच मंत्रालय या शासकीय विभागों में ही रहनी चाहिए। इसका समर्थन करते हुए संसद् की लोक लेखा समिति ने अपने आठवें प्रतिवेदन (द्वितीय लोक सभा) में कहा है कि आयव्ययक के प्रस्ताव में शामिल होने के पूर्व वित्त मंत्रालय द्वारा पूरी-पूरी जाँच होनी चाहिए। एक बार प्रस्ताव पास हो जाने पर शासकीय विभागों को पूरे अधिकार होने चाहिएँ और उन्हें व्यय मंज़ूरी के लिए वित्त मंत्रालय के पास पुनः जाने की जरूरत न हो। इसी तरह के विचार प्राक्कलन समिति ने भी अपने 20वें प्रतिवेदन (द्वितीय लोक सभा) में प्रकट किए हैं।

व्यय की मंजूरी में जिन बातों को देखना पड़ता है वे ये हैं :—

(1) क्या विभाग वह व्यय करने में समर्थ है ?

(2) क्या वित्तीय औचित्य के नियम पालन किए गए हैं ? और

(3) क्या व्यय का माप अन्य तत्समान प्रयोजनों पर किए गए व्यय के अनुकूल है ?

इनके सिवा वित्त मन्त्रालय संसद् की सामान्य प्रवृत्तियों को भी ध्यान में रखता है क्योंकि भले ही वित्त मंत्रालय के क्षेत्र में किसी व्यवहार विशेष को कार्यान्वित करने की अनुमति देना न हो पर बाद में यदि उस प्रयोजन की संसद् द्वारा आलोचना होती है तो उसके लिए ज़िम्मेदारी वित्त मन्त्रालय को ही लेनी पड़ती है।

भविष्य में होने वाले व्यय के विषय में वित्त मन्त्रालय को और भी सावधान रहना पड़ता है। किसी नवीन सेवा पर व्यय अथवा पुरानी सेवा पर अधिक होने वाला व्यय संसद् की अनुमति के बिना नहीं हो सकता। इन अधिक व्ययों के लिए पूरक अनुदान लेने पड़ते हैं। पूरक अनुदान लेना बहुत सामान्य बात नहीं मानी जाती क्योंकि जितने ही अधिक पूरक अनुदान लिए जाएँगे उतना ही आय-व्ययक कमज़ोर माना जाएगा। इसीलिए प्रत्येक नवीन सेवा और पुरानी सेवा पर अधिक व्यय के बारे में वित्त मन्त्रालय को बहुत सावधान रहना पड़ता है। यह कार्य वित्त मन्त्रालय में केवल आय-व्ययक के समय ही नहीं होता वरन् साल भर चालू रहता है। सरकार के अपने कार्यक्रम के अनुसार योजनाएँ बनती हैं और उसी समय वित्त नियन्त्रण के सिद्धान्तों की दृष्टि से उनकी परीक्षा की जाती है। यदि कार्यक्रम अत्यधिक आवश्यक हुआ तो पूरक अनुदान लिया जाता है और यदि वह अगले आय-व्ययक तक रुक सकता हुआ तो अगले आय-व्ययक में उसके लिए व्यवस्था की जाती है।

नवीन सेवाओं पर व्यय में जिन बातों का ख्याल किया जाता है वे ये है :

(1) क्या व्यय करना अत्यधिक आवश्यक है ?

(2) क्या उल्लिखित राशि बिल्कुल ज़रूरी है, उसमें कोई कमी नहीं हो सकती ?

(3) क्या सेवा की योजना पूरी तरह से पक्की है ?

पंचवर्षीय योजनाओं में व्यवस्था की दृष्टि से अब एक और बात का ध्यान रखना पड़ता है और वह यह कि नवीन सेवाएँ पंचवर्षीय योजनाओं की परिधि में मोटे तौर पर शामिल होनी चाहिएँ।

(क) **संसद् द्वारा पारित प्रस्तावों की जाँच:**—आय-व्ययक पास होते ही व्यय के लिए उपलब्ध राशियाँ आज्ञापत्रों के रूप में विभागों को सूचित कर दी जाती हैं। आवश्यकतानुसार इन राशियों का पुनः बँटवारा छोटे अधिकारियों के बीच किया जाता है। साधारणतया व्यय करने वाले अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे आज्ञा पत्र में सूचित किसी "विनियोग के प्राथमिक एककों" (Primary Units of Appropriation) के अनुसार ही व्यय करेंगे। विनियोग के प्राथमिक एकक मोटे तौर पर वे हैं जिनके अन्तर्गत व्यय के लिए धन उपलब्ध कराय

जाता है। विभागों की विशेषताओं के अनुसार नवीन प्राथमिक एकक निर्माण किए जा सकते हैं पर साधारणतया उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। प्रमुख प्राथमिक एकक इस प्रकार हैं :

(1) अधिकारियों का वेतन

(2) सिब्बन्दी का वेतन (Pay of Establishment)

(3) भत्ते, मानदेय आदि

(4) अन्य प्रभार (Charges)

(5) सहायक अनुदान, अंशदान और दान

(6) मूल निर्माण कार्य

(7) सुधार तथा विस्तार कार्य

(8) मरम्मत तथा अनुरक्षण

(9) औज़ार तथा संयन्त्र

(10) निधि का नियतन और क्षतिपूर्ति (Assignments and Compensation)

(11) अन्य सरकारी विभागों को दी जाने वाली रक़में

(12) आरक्षित (Reserve)

(13) उचंत (Suspense)

(14) इंग्लैण्ड में व्यय

(15) विनिमय से लाभ या हानि ।

प्राथमिक एककों में पारित (Voted) तथा भारित (Charged) दोनों ही प्रकार की राशियाँ हो सकती हैं।

यह सदैव सम्भव नही कि व्यय इन प्राथमिक एककों के अन्तर्गत उपलब्ध कराई राशियों के अनुसार ही हो। अतएव उपयुक्त अधिकारियों को यह अधिकार दिया जाता है कि वे इनमें कुछ शर्तों का पालन करते हुए फेर बदल कर सकें। दो अलग अनुदानों के प्राथमिक एककों में परस्पर फेर बदल सम्भव नहीं। इसी फेर बदल को पुनर्विनियोग की क्रिया कहते हैं। पुनर्विनियोग की आज्ञा हमेशा उस अधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए जो उस अनुदान का नियन्त्रक हो। संसद् ने पुनर्विनियोग की शर्तें इस प्रकार निर्धारित की हैं :—

(1) भारित व्यय की कमी को पूरा करने के लिए संसद् द्वारा पारित व्यय के बचे धन का उपयोग नहीं किया जा सकता और न भारित व्यय के बचे धन का उपयोग पारित व्यय के लिए।

(2) नवीन सेवाओं के लिए पुनर्विनियोजन नहीं किया जा सकता।

इन शर्तो से स्पष्ट है कि संसद् की इच्छा पूर्ति का शासन को कितना ध्यान रखना पड़ता है। इनके सिवा पुनर्विनियोग की कुछ शर्तें ऐसी भी हैं जो वित्त मंत्रालय ने लागू की हैं और जिनका पालन होना चाहिए। उदाहरणार्थ

अनपेक्षित प्राप्तियों से पुनर्विनियोजन नहीं हो सकता। ऐसी प्राप्तियों को अलग से जमा कराना विभाग विशेष का कर्तव्य है। इसी प्रकार गोपनीय सेवा अनुदान से किसी अन्य सेवा के लिए व्यय नहीं किया जा सकता। इस विषय में वित्त मंत्रालय के अधिकारों पर भी नियंत्रण है। वित्त मंत्रालय केवल गोपनीय सेवा अनुदान के 25 प्रतिशत तक अन्य सेवा पर व्यय करने के लिए विभागों को अनुमति दे सकता है। यदि 25 प्रतिशत से अधिक की आवश्यकता हो तो नियंत्रक तथा महालेखापाल की सम्मति लेनी पड़ती है।

पुनर्विनियोग के प्रस्ताव हमेशा बड़ी सावधानी से देखे जाते हैं चाहे वे शासकीय मंत्रालयों के हों अथवा वित्त मंत्रालय के। परिस्थिति द्वारा बाध्य होने पर ही पुनर्विनियोग के लिए स्वीकृति दी जाती है। पुनर्विनियोग सिर्फ़ इसलिए नहीं करने दिया जाता है कि पैसा काफ़ी बचा हुआ है। हो सकता है किसी विशेष एकक के अन्तर्गत किसी कारण से व्यय न हो सका हो और पर्याप्त राशि बच रही हो। पर वित्त नियंत्रण का नियम है कि यदि आवश्यकता न हो तो ऐसी राशियाँ सरकारी कोष में समर्पित (Surrender) करनी चाहिए। समर्पित होने वाली राशियों का पता लगने से सरकार को अपने उपाय-साधन आयव्ययक (Ways and Means Budget) बनाने में काफ़ी मदद मिलती है। अतएव जहाँ विभाग को पुनर्विनियोग की जरूरत पूरी करनी पड़ता है वहाँ अपेक्षित समर्पण का भी ध्यान रखना पड़ता है। इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि प्रतिवर्ष दिसम्बर तथा फरवरी के मध्य में विभागीय अधिकारी वित्त मंत्रालय को अपेक्षित बचतें सूचित करते हैं। इन सूचनाओं के साथ बचत के कारण भी दिए जाते हैं।

बचत और पुनर्विनियोग के साथ वित्त नियन्त्रण में एक ज़िम्मेदारी और है कि व्यय उतना ही हो जितना अनुदान में बतलाया गया हो। यह तभी हो सकता है जब व्यय की प्रगति पर विभागों का ध्यान हो। इसके लिए प्रत्येक विभाग अथवा अनुदान नियन्त्रक के पास एक रजिस्टर होता है जिसमें वे व्यय की मासिक प्रगति दर्ज़ करते जाते हैं। अध्याय चार में बतलाया गया था कि लेखा विभाग प्रत्येक महीने शासकीय विभागों को कुल व्यय की राशियाँ सूचित करते हैं। इस सूचना का उद्देश्य विभागों द्वारा स्वयं रखे गए व्यय-प्रगति लेखे का मिलान करना है। उक्त प्रगति निरीक्षण के अतिरिक्त विभागों को व्यय नियन्त्रण के लिए एक "दायित्व पंजी" (Liability Register) भी रखनी पड़ती है जिसमें उन्हें किसी प्रयोजन पर कितना और खर्च करना है इसका ब्योरा रखना पड़ता है ताकि किसी भी वक्त यह जाना जा सके कि और कितने व्यय की आवश्यकता पड़ेगी। यह जानकारी व्ययाधिक्य को रोकने के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

(ख) भावी व्ययों की जाँचः—जैसा पहले बतलाया गया था भावी व्ययों से तात्पर्य न केवल नवीन सेवाओं से है वरन् संसद् अनुमोदित प्रयोजनों पर होने वाले अधिक व्यय से भी है। इस सम्बन्ध में साधारणतया नियंत्रण के तीन रूप हैं :

(1) बहुत बड़ी योजनाओं के व्यय की जाँच,

(2) साधारण बड़ी योजनाओं (अर्थात् करीब दस लाख रुपए से ज़्यादा ख़र्च वाली) की जाँच, व

(3) छोटे खर्च वाले प्रस्तावों की जाँच।

बहुत बड़े प्रस्तावों की जाँच के लिए खास रिपोर्टे पहले मँगाई जाती हैं जिसमें योजना के औचित्य व उपयुक्तता पर विचार किया जाता है। दूसरे वर्ग के प्रस्ताओं को एक वित्त नियंत्रण समिति के सम्मुख पेश किया जाता है। 1950 तक इस कार्य के लिए एक संसदीय समिति थी जिसे "स्थायी वित्त समिति"* (Standing Finance Committee) कहा करते थे। पर 1950 से यह कार्य एक विभागीय वित्त समिति को सौंपा गया है। 1954 तक यह समिति "विभागीय वित्त समिति" (Departmental Finance Committee) कहलाती थी पर अब यह "व्यय वित्त समिति" (Expenditure Finance Committee) कहलाती है।

"व्यय वित्त समिति" के सम्मुख निम्नलिखित प्रस्ताव विचारार्थ भेजे जाते हैं :

(1) नवीन सेवाओं के लिए लगने वाले व्यय के सारे प्रस्ताव।

(2) विद्यमान सेवाओं की वृद्धि में प्रतिवर्ष 2.5 लाख आवर्ती और दस लाख अनावर्ती से अधिक लगने वाले व्यय के प्रस्ताव। (कुछ ऐसे भी प्रस्ताव हैं जिसमें नीति का प्रश्न हो यद्यपि प्रारम्भिक व्यय तुलना में थोड़ा हो। ऐसी हालतों में प्रस्ताव को समिति के सामने रखा जाना चाहिए या नहीं यह मन्त्रालय द्वारा निश्चित किया जाता है)।

(3) पूरक अनुदानों के सारे प्रस्ताव। इसमें केवल व्यय वित्त समिति द्वारा सुझाए प्रस्ताव ही शामिल नहीं होते वरन् ऐसी व्यय वृद्धियाँ भी शामिल हैं जो विभिन्न कारणों से साधारण तौर पर हुई हों।

(4) ऐसे अन्य प्रस्ताव जिस पर वित्त मन्त्रालय, समिति की सलाह लेना चाहता हो।

इनके अतिरिक्त ऋण के प्रस्ताव और स्वायत्त संस्थाओं, निगमों से प्राप्त प्रस्ताव भी समिति के विचारार्थ रखे जात हैं।

---

*स्थायी वित्त समिति की स्थापना 1922 में हुई थी। समिति के सामने नवीन सेवा के सार प्रस्ताव भेजे जाते थे। इसी प्रकार पाँच लाख से अधिक के अनावर्ती व एक लाख से अधिक के आवर्ती प्रस्ताव भी उसकी अनुमति के लिए पेश किए जाते थे। अनुपूरक अनुदान के प्रस्ताव व नीति विषयक प्रश्न भी वित्त समिति के सामने रखे जाते थे। समिति के 16 सदस्य हुआ करते थे जिसमें संसदीय कार्यों के मंत्री तथा वित्त मंत्री भी शामिल थे। वित्त मंत्री समिति का सभापति हुआ करता था। समिति की बैठकें संसद् के अधिवेशन काल में हुआ करती थीं। रेल वित्त के लिए एक अलग 'रेल स्थाई वित्त समिति" (Railway Standing Finance Committee) थी, जिसके बारे में अध्याय 9 में उल्लेख किया गया है।

व्यय वित्त समिति का अध्यक्ष वित्त मंत्रालय का संयुक्त सचिव होता है तथा वित्त मंत्रालय के सचिवों के अतिरिक्त अन्य मंत्रालयों के वित्त सलाहकार भी इसके सदस्य होते हैं। समिति के सामने जो प्रश्न आते है उन पर यदि आवश्यकता हो तो वित्त मंत्री की भी सलाह ली जाती है। व्यय वित्त समिति जिन पहलुओं से प्रस्ताव की परीक्षा करती हैं उनमें से कुछ के नमूने इस प्रकार हैं:—

(1) क्या प्रस्ताव या उसके किसी अश पर स्थाई वित्त समिति ने पहले भी विचार किया था और यदि हाँ, तो उसके परिणाम क्या थे ?

(2) क्या प्रस्ताव में भंडार (Store) संयंत्र (Plant and Machinery) खरीदने पड़ेंगें ? यदि हाँ तो,

(क) भंडार, सयंत्र आदि की अन्दाज़न कीमत क्या होगी ? उनके उपलब्ध करने की क्या व्यवस्था की गई है ?

(ख) महानिदेशक निपटान (Director of Disposals) के पास के बचे सामान में जिस सामान की आवश्यकता है वह कितना है।

(3) क्या प्रस्ताव पूर्ण है अथवा इसके पारित होने में भविष्य में और व्यय करने की आवश्यकता होगी ? यदि हाँ, तो भविष्य में कितना और किस तरह का व्यय करना होगा ?

(4) क्या वित्त समिति की अनुमति की प्रत्याशा में पहले ही कुछ व्यय किया जा चुका हैं ? यदि हाँ, तो कितना और क्यों ?

(5) व्यय की पूर्ति के सम्बन्ध में विभाग ने क्या व्यवस्था की है ?

(6) क्या प्रयोजन लाभदायक है ? प्रयोजन में कितनी पूँजी लगने वाली है और उससे कितना मुनाफ़ा होने वाला है ?

प्रस्ताव में इसके सिवा आवर्ती तथा अनावर्ती व्ययों का ब्योरा, कर्मचारियों के वेतन की दर तथा अन्य वित्तीय जानकारी देनी पड़ती है जो वित्तीय नियंत्रण की परिचायक है। छोटे व्यय प्रस्ताव वित्त विभाग में ही मान्य मापदण्डों के आधार पर जाँच कर लिए जाते हैं।

2. संसदीय वित्तीय नियंत्रण

सरकारी वित्त नियन्त्रण कितना ही सूक्ष्म और दृढ़ क्यों न हो पर वह सरकारी ही है। माना कि वित्त मंत्रालय शासकीय मंत्रालयों के प्रस्तावों की भलीभाँति जाँच करता है पर कार्यकारिणी के अंग होने के नाते सम्भव है कि उनमें एक तरह के पक्षपात की भावना आ जाए। इसीलिए संसदीय वित्त नियन्त्रण की भी आवश्यकता होती है। एक प्रख्यात लेखक के शब्दों में "व्यय सावधानी से किया गया हो; वह क़ानूनन उक्त उपयोग के लिए उपलब्ध भी हो व उसके लेखे की संसद् द्वारा नियुक्त एक स्वतन्त्र अधिकारी ने परीक्षा भी की हो पर जब तक संसद् उन लेखा परिणामों को ध्यान में न लेती हो उनका कोई अर्थ नहीं होता और वे प्रक्रियाएँ केवल औपचारिकता मात्र रह जाती हैं।" जैसा कि पहले बतलाया गया था यह कार्य लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति द्वारा किया जाता है।

(क) **लोक-लेखा समिति**:—भारत में लोक लेखा समिति का इतिहास अत्यधिक पुराना है। यह समिति 1921 के माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार काल से केन्द्र में और प्रायः तभी से सभी प्रान्तों में काम करती रही है। समिति का उन दिनों उद्देश्य था कि वह यह देखे कि सरकारी विभागों द्वारा वित्त उन्हीं मात्राओं में व उसी सीमा में व्यय किया गया है जिसके लिए एसेम्बली ने अनुदान दिए हों। समिति का यह भी उद्देश्य था कि वह एसेम्बली को निम्नलिखित घटनाओं की सूचना दे :—

(1) एक अनुदान से दूसरे अनुदान में किए गए पुर्नविनियोग ;

(2) उसी अनुदान में रहते हुए नियम विरुद्ध पुर्नविनियोग ; तथा

(3) वित्त विभाग द्वारा प्राथित अन्य प्रकार के व्यय।

अध्यक्ष को मिला कर उन दिनों समिति के 12 सदस्य हुआ करते थे। जिन में दो तिहाई एसेम्बली के चुने हुए सदस्यों द्वारा निर्वाचित हुआ करते थे और एक तिहाई ग़ैर चुने हुए सदस्यों में से गवर्नर जनरल द्वारा नाम निर्देशित हुआ करते थे। चुनाव अनुपाती प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के आधार पर हुआ करता था। आधे सदस्य वर्ष भर के बाद निवृत्त हुआ करते थे। फाइनेन्स मेम्बर (अर्थात् वित्त मंत्री) इस समिति का अध्यक्ष हुआ करता था और वित्त विभाग का सचिव नियुक्त सदस्य हुआ करता था।

1947 तक बराबर यह रचना चलती रही। स्वतन्त्रता मिलने के साथ समिति को एक वास्तविक स्वतन्त्र संस्था का रूप देने की चेष्टा की गई। 1947 में वित्त मंत्री को समिति की अध्यक्षता से हटाकर एक चुना हुआ अध्यक्ष नियुक्त करने की पद्धति का निर्माण हुआ क्योंकि वित्त मंत्री के अध्यक्ष रहते हुए समिति सरकारी त्रुटियों की पूरी आलोचना नहीं कर सकती थी। इसी वर्ष समिति की सदस्यता 12 से बढ़ाकर 15 कर दी गई। सभी सदस्य अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने जाने लगे। समिति इसी वर्ष से भारित व्यय की भी परीक्षा करने लगी। इसी प्रकार समिति न केवल विनियोग लेखे वरन् अन्य लेखों की भी जाँच करने लगी। 1926 से सैन्य व्यय की जाँच के लिए लोक लेखा समिति की सहायक समिति के नाते (पर संकुचित रूप से) एक स्वतन्त्र "सैन्य लेखा समिति" (Military Accounts Committee) काम करती थी। 1947 से "सैन्य लेखा समिति" का भी अन्त कर दिया गया है और अब किसी अन्य लेखे के समान सैन्य लेखे भी लोक लेखा समिति द्वारा देखे जाने लगे।

पूर्ण रूप से स्वतन्त्र व प्रभावी न होने पर भी 1921 से 1947 तक के काल में लोक लेखा समिति ने वित्त नियंत्रण की दिशा में कई महत्त्वपूर्ण काम किए थे। पहली लोक लेखा समिति ने 1921 में ही यह सिफ़ारिश की थी कि "यदि किसी वित्तीय वर्ष में लेखा पूरा होने पर यह पाया जाएगा कि किसी विभाग ने मंजूर की गई राशि से अधिक व्यय किया है तो उस विभाग के लिए यह आवश्यक होगा कि वह

अवसर मिलते ही एसेंबली से अतिरिक्त अनुदान की स्वीकृति लें"। उसी तरह "एसेम्बली की स्वीकृति के पहले यह आवश्यक होना चाहिए कि लोक लेखा समिति अतिरिक्त कारणों की जाँच करे।" समिति ने वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद् को भी अछूता नहीं छोड़ा था। 1921-22 के लेखे की जाँच करते समय समिति ने सिफ़ारिश की थी कि "काउंसिल के सदस्यों के दौरों के खर्च को भलीभाँति प्राक्कलित करना चाहिए और एक ऐसी संस्था या व्यक्ति होना चाहिए जो उस व्यय की प्रगति की जाँच करे"। भारित अनुदानों पर तो उस समय एसेम्बली का कोई अधिकार नहीं था (यद्यपि आज की तुलना में उस समय भारित व्यय अधिक हुआ करता था)। पर समिति ने 1924-1925 के विनियोग लेखे पर प्रतिवेदन देते हुए सिफ़ारिश की थी "कि वित्त विभाग द्वारा श्रमतापेक्षी व्ययों के अनुपूरक अनुदानों का ब्यौरा एसेम्बली के पटल पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए।" सिफ़ारिश का उद्देश्य था—सरकारी व्यय पर एसेम्बली का नियन्त्रण रखना।

प्रस्तुत समिति की रचना तथा उसके कार्य लोक सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमों के अनुसार इस प्रकार हैं :—

308. (1) भारत सरकार के व्यय के लिए सभा द्वारा मंजूर की गई राशियों का विनियोग दिखलाने वाले लेखों, भारत सरकार के वार्षिक वित्त लेखों, और सभा के सामने रखे गए अन्य लेखों की जाँच के लिए समिति जो ठीक समझे एक लोक लेखा समिति स्थापित करेगी।

(2) भारत सरकार के विनियोग लेखे और उन पर नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की छानबीन करते समय लोक लेखा समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह अपना समाधान कर लें कि—

(क) लेखों में व्यय के रूप में दिखाया गया धन उस सेवा या प्रयोजन के लिए उपलब्ध और लगाए जाने योग्य था जिसमें वह लगाया गया है या भारित किया गया है।

(ख) व्यय उस अधिकार के अनुसार है जिसके वह अधीन है।

(ग) प्रत्येक पुनर्विनियोग सक्षम अधिकारी द्वारा निर्मित नियमों के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में किए गए उपबन्धों (Provisions) के अनुसार किया गया है।

(3) लोक लेखा समिति का यह कर्तव्य भी होगा कि—

*(क) राज्य निगमों, व्यापार तथा निर्माण योजनाओं और परियोजनाओं की आय तथा व्यय दिखलाने वाले लेखा विवरणों की तथा

*प्रथम लोक सभा में सभा की लोक लेखा समिति ने जिन राज्य निगमों के लेखों की छानबीन की थी, वे हैं—

1. दामोदर घाटी निगम के लेखे,
2. उद्योग वित्त निगम के लेखे,
3. पुनर्वास वित्त प्रशासन के लेखे, तथा
4. दिल्ली सड़क यातायात प्राधिकार (बस सेक्शन)।

संतुलन पत्रों और लाभ तथा हानि लेखों के ऐसे विवरणों की जाँच करना जिन्हें तैयार करने की अपेक्षा राष्ट्रपति ने की हो या जो किसी खास निगम व्यापारी सस्था या परियोजना के लिए वित्त व्यवस्था विनियमित करने वाले संविहित नियमों के उपबन्धों के अन्तर्गत तैयार किए गए हों और उन पर नियत्रक महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की जाँच करना।

(ख) स्वायत्तशासी तथा अर्ध-स्वायत्तशासी निकायों की आय तथा व्यय दिखलाने वाले विवरणों की जाँच करना जिसकी लेखा परीक्षा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा राष्ट्रपति के निर्देशों के अन्तर्गत या संसद् की किसी विधि के अनुसार की जा सके। और

(ग) उन मामलों में नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट पर विचार करना जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रपति ने उससे किन्हीं प्राप्तियों की लेखा परीक्षा करने की या भंडार के और स्कन्ध के लेखों की परीक्षा करने की अपेक्षा की हो।

(4) यदि वित्तीय वर्ष के दौरान में किसी सेवा पर उसके प्रयोजन के लिए सभा द्वारा अनुदत्त राशि से कुछ धन व्यय किया गया हो तो समिति प्रत्येक मामले के तथ्यों के सम्बन्ध में उन परिस्थितियों की जाँच करेगी जिनके कारण अधिक व्यय हुआ हो और जो वह ठीक समझे सिफ़ारिश करेगी।

309. (1) समिति में पन्द्रह से अधिक सदस्य न होंगे जो सभा द्वारा प्रत्येक वर्ष उसके सदस्यों में से अनुपाती प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर "एकल संक्रमणीय मत" (Single Transferable Vote) द्वारा निर्वाचित किए जाएँगे। परन्तु कोई मंत्री समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाएगा या यदि कोई सदस्य समिति के लिए निर्वाचित होने के बाद मंत्री नियुक्त हो जाए तो वह नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रहेगा।

(2) समिति के सदस्यों की पदावधि एक वर्ष होगी।

लोक सभा के पन्द्रह सदस्यों के अतिरिक्त लोक लेखा समिति में राज्य सभा के सात* सदस्यों को भी शामिल किया गया है। इस प्रथा का यह आधार

*इन सात सदस्यों की नियुक्ति के विषय में प्रत्येक वर्ष पदनिवर्तक सभापति द्वारा निम्न प्रस्ताव लोक सभा में पेश किया जाता है।

"सभा राज्य सभा को इस बात की सिफ़ारिश करती है कि वह राज्य सभा द्वारा—वर्ष के लिए, लोक लेखा समिति के लिए राज्य सभा द्वारा सात सदस्य नियुक्त किए जाने के लिए तैयार है और वह सभा (अर्थात् राज्य सभा) नियुक्त सदस्यों के नाम लोक सभा को सूचित करे।"

है कि राज्य सभा के सम्मुख भी लेखा परीक्षा प्रतिवेदन पेश किए जाते हैं इसीलिए उस सभा के सदस्यों को भी उन पर बहस करने का मौका मिलना चाहिए। उनके अनुसार समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाएगा। पर यदि उपाध्यक्ष समिति का सदस्य है तो वही पहले सभापति बनेगा। समिति अपने अधीन विषयों की जाँच करने के लिए एक या अधिक उपसमितियाँ नियुक्त कर सकती है। ऐसी उपसमितियों को पूरी समिति जैसे अधिकार प्राप्त होते हैं। उपसमिति सभा को स्वयं प्रतिवेदन नहीं प्रस्तुत कर सकती। उपसमिति के प्रतिवेदन पर पूरी समिति का समर्थन होना चाहिए।

जैसे ही कोई लेखा और लेखा परीक्षा प्रतिवेदन सदनों के सम्मुख रखा जाता है समिति की कार्यवाही शुरू हो जाती है। समिति पहले वित्त मन्त्रालय से परीक्षा प्रतिवेदन में उल्लिखित टीकाओं पर मत माँगती है। इसके बाद समिति के सामने जिन मंत्रालयों की लेखा त्रुटियों पर टीकाएँ हैं उनके सचिव साक्ष्य देन आते हैं। साक्ष्य पूरे होने पर समिति अपना प्रतिवेदन देती है और इस प्रकार समिति की कार्रवाई पूरी होती है। समिति अपनी सिफ़ारिशें कार्यान्वित कराने के लिए भी प्रतिवेदन देती है।

अध्यक्ष के एक आदेश के अनुसार मंत्री समिति के सम्मुख साक्ष्य देने नहीं आ सकते। मंत्री के अतिरिक्त किसी अन्य को साक्ष्य के रूप में बुलाने का समिति को अधिकार होता है। समिति यदि चाहे, तो परीक्षा के अधीन लेखों से सम्बन्धित काग़जात भी मँगा सकती है।

लोक सभा की लोक लेखा समिति की इधर बराबर यह प्रथा रही है कि वह किसी विभाग के लेखों की परीक्षा करने के पूर्व तत्सम्बन्धित कार्यालयों या परियोजनाओं की मौके पर परीक्षा भी एक बार करती है ताकि उसके सम्बन्ध में सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त हो सके। समिति के सामने जो साक्ष्य दिए जाते हैं वे सदैव गोपनीय रखे जाते है केवल उनके कार्यविवरण (Minutes) सभा के पटल पर रखे जाते हैं।

समिति ने अपनी कार्य प्रक्रिया के नियमों के अतिरिक्त कुछ प्रथाएँ भी बनाई हैं जिनका समिति के कार्य में बहुत महत्त्व है। मुख्य प्रथाएँ इस प्रकार हैं :—

(1) समिति के काम जैसा कि ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि एक न एक लेखा त्रुटि तक सीमित हैं पर समिति व्ययों की नियमानुसारिता को छोड़ कर व्यय कहाँ तक योग्य था और वह मितव्ययता के साथ किया है या नहीं, इन प्रश्नों पर भी विचार करती है। लेखा व शासन व्यवस्था में सुधार व वित्तीय नियमों की परीक्षा भी समिति के महत्वपूर्ण काम हैं। जैसा कि उदाहरण स्वरूप दी गई इन सिफ़ारिशों से प्रगट होगा।

लेखा नियम : "प्रत्येक नई योजना (जिसमें काफ़ी व्यय होना हो) के लिए योग्य वित्तीय तथा लेखा व्यवस्था पहले से की जानी चाहिए।" (देखिए, 1952-53 की लोक लेखा समिति के छठे प्रतिवेदन का 85वाँ पैरा।)

शासन व्यवस्था : "जहाँ योजनाओं के पूरे करने के लिए साधारण नियमों में अपवाद करना हो वहाँ वह किस हद तक किया जाए, यह सक्षम अधिकारी द्वारा निर्धारित होना चाहिए।" (**देखिए**, 1952-53 के नवें प्रतिवेदन का 12 वाँ पैरा ।)

बचत : "प्रत्येक मंत्रालय में एक ऐसा एकक होना चाहिए, जिसका काम व्यय पर नियन्त्रण रखना हो।" (**देखिए**, 1952-53 के सातवें प्रतिवेदन के भाग एक में 35 वाँ पैरा ।)

वित्तीय नियम : "सामान मँगाने वाले विभागों को चाहिए कि इसका पहले ही से अन्दाज़ लगा लें कि भंडार वर्ष में कब तक प्राप्त हो सकेंगे व उसके अनुसार अनुदान में से व्यय करें।" (**देखिए**, 1953-54 के दसवें प्रतिवेदन के भाग एक में 50वाँ पैरा ।)

(2) लोक लेखा समिति के प्रतिवेदनों पर सभा में विचार नहीं किया जाता। ऐसी धारणा है यदि समिति के प्रतिवेदनों पर सभा में बहस होने लगे, तो समिति की सूक्ष्म व निष्पक्ष जाँच दलबन्दी के वातावरण में निष्फल हो जाएगी। समिति की भाँति तथ्यों की सूक्ष्म जानकारी सभा के आम लोगों को नहीं होती और न उस निष्पक्षता से विषय पर विचार होता है, जिस निष्पक्षता से समिति ने विचार किया हो। सभा की बहस में पार्टीबन्दी आ जाना मामूली बात है। इसलिए समिति ने यह प्रथा अपनाई है कि उसके प्रतिवेदनों पर सभा में विचार न किया जाएगा। लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन पर आखिरी बार 1946 में सभा में जब श्री लियाकत अली खाँ मंत्री थे बहस हुई थी। भारतीय प्रथा इंग्लैण्ड की लोक लेखा समिति की प्रथाओं से इस मामले में भिन्न है।

(3) समिति की सिफ़ारिशों को जहाँ तक हो सके कार्यान्वित करना सरकार का कर्तव्य है। नियमों के अनुसार समिति की सिफ़ारिशें केवल सलाहमात्र हैं इसलिए सरकार के लिए यह अनिवार्य नहीं कि वह समिति की सिफ़ारिशों को अमल में लाए। पर समिति और सरकार दोनों का एक ही ध्येय होने के कारण और समिति के प्रतिवेदन के पीछे नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक तथा सभा के अनुभवी सदस्यों का परामर्श होने के कारण सरकार की यह चेष्टा होती है कि जहाँ तक हो सके वह समिति की सिफ़ारिशों को स्वीकार कर ले। यदि सरकार को समिति की कोई सिफ़ारिशों को स्वीकार करने में आपत्ति होती है तो प्रथा यह है कि सरकार अपना मत अथवा नवीन तथ्य समिति के सामने पुनः रखती है ताकि समिति उन पर पुर्नविचार कर सके। अधिकतर आपत्तियाँ इसी प्रकार के पुर्नविचार से हल हो जाती हैं।

(4) यद्यपि नियमों में समिति के कार्यसंपादन के लिए नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक का कोई स्थान नहीं पर प्रथा के अनुसार नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक समिति की कार्य प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। वित्तीय नियंत्रण की भाषा में उसे समिति के "मित्र, गुरु और मार्गदर्शक" होने की उपाधि दी गई है। महालेखापरीक्षक समिति की प्रत्येक बैठक में होता है और समिति को बतलाता है कि वह विनियोग तथा अन्य लेखों के पीछे क्या क्या बातें हैं जिससे समिति को जाँच करने में काफ़ी मदद मिलती है। यह भी सच है कि समिति से ही महालेखापरीक्षक की प्रतिष्ठा

है। क्योंकि यदि समिति उसकी आलोचनाओं का समर्थन न करे तो सरकार उसे विशेष महत्त्व नहीं देगी। समिति के साथ इस विशेष सम्बन्ध के ही कारण नियंत्रक तथा महा-लेखापरीक्षक को व्यावहारिक रूप में "संसद् का अधिकारी" होने की उपाधि प्राप्त है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोक लेखा समिति भारतीय वित्त-नियंत्रण व्यवस्था का एक अनिवार्य व महत्त्वपूर्ण स्तम्भ रही है। समिति की उपादेयता के बारे में किसी को कभी सन्देह नहीं हुआ। 1921-22 में स्थापना के समय पर ही समिति ने यह विश्वास प्रगट किया था :

"हमें इस बात का विश्वास है कि लोक लेखा समिति का अस्तित्व व यह जानकारी कि कभी न कभी विभागों को उनकी त्रुटियों के लिए अथवा अतिरेक व्यय के लिए समिति का सामना करना पड़ेगा विभागों को व्यय सम्बन्धी सावधानी बरतने में मदद करेगा। सरकारी विभाग इस बात को भी समझेंगे कि व्यय की आवश्यकताओं के लिए उन्हें सदन के सामने केवल एक बार ही नहीं आना है। वरन् बाद में भी करदाताओं की एक उत्तरदायी संस्था के सामने आना है।"

समिति के कारण विभागाधिकारियों को यह डर बना रहता है कि उन्हें अपनी त्रुटियों के लिए या लापरवाही के लिए लोक लेखा समिति के सम्मुख हाज़िर होना होगा जहाँ उनसे हर एक किस्म के सवाल पूछे जा सकते हैं। समिति का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि मंज़ूर व्यय के अतिरिक्त भारित व्यय की त्रुटियों के बारे में भी समिति को जाँच करने का अधिकार है। संसद् में भारित व्यय को पास किए जाने से रोका नहीं जा सकता पर हाँ, उसमें यदि कोई त्रुटि हुई हो तो उसकी अच्छी खासी टीका हो सकती है। तीसरे यदि संसद् में किसी मंत्री से ही त्रुटि हो जाए तो संसद् में कार्य दलबन्दी के आधार पर होने के नाते ऐसी त्रुटि को दूर करने का कोई विशेष आश्वासन नहीं दिया जाता। पर जब ये विषय समिति में निष्पक्षता के साथ देखे जाते हैं तो यह बात सर्व विदित हो सकती है और इससे भविष्य के लिए कुछ बचाव करने के उपाय ढूँढ़ने में प्रेरणा मिल सकती है।

(ख) **प्राक्कलन समितिः**—महत्त्व की दृष्टि से संसद् की वित्त नियन्त्रक संस्थाओं में लोक लेखा समिति से बराबरी करने वाली प्राक्कलन समिति उल्लेखनीय है। प्राक्कलन समिति की स्थापना ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का अनुकरण करते हुए भारतीय संसद् ने 1950 में की थी। समिति के काम, रचना, कार्य संचालन तथा प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों के अनुसार, ये हैं :

"310. ऐसे प्राक्कलनों की परीक्षा करने के लिए जो समिति को ठीक प्रतीत हों या जो उसे सभा द्वारा निर्दिष्ट हों एक प्राक्कलन समिति होगी। समिति के ये काम होंगे :

(क) प्राक्कलनों से सम्बन्धित नीति से संगत क्या मितव्ययता, संघटन में सुधार, कार्यपटुता या प्रशासनिक सुधार किए जा सकते हैं, इस सम्बन्ध में प्रतिवेदन करना,

(ख) प्रशासन में कार्यपटुता और मितव्ययता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों का सुझाव देना,

(ग) प्राक्कलनों में अन्तर्हित नीति की सीमा में रहते हुए धन ठीक ढंग से लगाया गया है या नहीं इसकी जाँच करना, व

(घ) प्राक्कलन संसद् में किस रूप में प्रस्तुत किया जाएगा, इसका सुझाव देना ।

311. (1) समिति में 30 से अधिक सदस्य नहीं होंगे जो सभा द्वारा प्रत्येक वर्ष उसके सदस्यों में से अनुपाती प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किए जाएँगे ।

कोई मंत्री समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाएगा या यदि कोई सदस्यसमिति के लिए निर्वाचित होने के बाद मंत्री नियुक्त हो जाए तो वह नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य न रहेगा ।

(2) समिति के सदस्यों की पदावधि एक वर्ष होगी ।

312. समिति प्राक्कलनों की जाँच वित्तीय वर्ष में समय समय पर जारी रख सकेगी और जैसे जैसे जाँच करती जाए सभा को प्रतिवेदित करती जाएगी । समिति के लिए किसी एक वर्ष के सब प्राक्कलनों की जाँच करना अनिवार्य नहीं होगा । इस बात के होते हुए भी कि समिति ने कोई प्रतिवेदन नहीं दिया है। अनुदानों की माँग पर अन्तिम रूप से मतदान हो सकता हैं ।"

समिति की सदस्यता पहले 25 हुआ करती थी पर 1955-56 से जब समिति ने उपसमितियों के माध्यम से कार्य करना प्रारम्भ किया यह सदस्यता 25 से 30 कर दी गई ताकि हर एक उपसमिति में यथेष्ट सदस्य रहें । प्रतिवर्ष समिति सात से दस तक उपसमितियाँ नियुक्त करती है जो समिति के मार्फ़त विभिन्न विषयों का सूक्ष्म अध्ययन और स्थानीय निरीक्षण का कार्य करती हैं । इनके सिवा समिति की तीन या चार उपसमितियाँ सदैव समिति के पिछले प्रतिवेदनों की सिफ़ारिशों पर सरकार द्वारा किए गए कार्यों की जाँच करती रहती है ।

लोक लेखा समिति के समान प्राक्कलन समिति को भी व्यक्तिगत या लिखित पत्रों का साक्ष्य लेने का अधिकार होता है । ये सारे साक्ष्य तब तक गोपनीय समझे जाते हैं जब तक कि उन्हें सभा के पटल पर रख न दिया जाए । अभी तक इन्हें सभा के पटल पर रखने की प्रथा नहीं रही है केवल कार्य-विवरण ही सभा पटल पर रखा जाता है ।

समिति का सभापति लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है पर यदि उपाध्यक्ष समिति का सदस्य होता है तो वही समिति का सभा-पति बनता है । समिति की बैठकें प्राय: संसद् भवन में ही हुआ करती हैं पर यदि आवश्यकता हो तो उन्हें किसी राज्य विधान सभा की इमारत में भी आमन्त्रित किया जा सकता है । इसमें उद्देश्य यह है कि समिति जहाँ भी बैठे उचित व प्रतिष्ठित वातावरण होना चाहिए ।

समिति के कामों में "नीति पर विचार" करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोकसभा के अध्यक्ष के निर्देशों के अनुसार नीति का अर्थ—जिसके अन्तर्गत रहते हुए ही समिति को जाँच करनी पड़ती है—केवल उस नीति से है जो संसद् ने निर्धारित की हो और यदि किसी कार्य के पारित होने में शासन ने कोई नीति निर्धारित की हो तो उस नीति की जाँच करने का भी समिति को पूर्ण अधिकार है। संसद् द्वारा निर्धारित नीति के सम्बन्ध में भी यदि तथ्यों के आधार पर यह साबित हो चुका हो कि वह नीति अपव्यय के कारण हो रही है तो समिति का यह कर्तव्य होता है कि वह उन त्रुटियों की ओर संसद् का ध्यान आकर्षित करे।

लोक लेखा समिति की भाँति ही प्राक्कलन समिति को भारित व्यय की जाँच करने का अधिकार होता है यद्यपि वह उसमें कोई कटौती नहीं सुझा सकती।

समिति के कार्यो के बारे में प्राय: लोगों को यह भ्रम होता है कि यह आयव्ययक के आँकड़ों की जाँच करती होगी और उनके कम अधिक होने पर सुझाव देती होगी, पर ऐसी कोई बात नहीं है। समिति से ऐसी आशा करना ही व्यर्थ है क्योंकि समिति सामान्य व्यक्तियों की एक संस्था है। पर जब सरकार के किसी कार्यक्रम की जाँच हो जाती है तो परिणामत: अपने-आप ही प्राक्कलनों की जाँच हो जाती है। समिति देखती है कि—

(क) क्या प्रस्तावित योजना को पूरा करने के लिए लोग उपयुक्त हैं?
(ख) क्या उस प्रयोजन के पारित करने के लिए निर्मित संघटन कार्यकुशल है?
(ग) क्या व्यय के अनुरूप परिणाम निकल रहे हैं?
(घ) क्या कोई खास सेवा अनिवार्य है?
(च) क्या तत्समान किसी अन्य सेवा से काम नहीं चल सकता?

जब ऐसे प्रश्नों की जाँच होती है तो स्वभावत: उनका परिणाम प्राक्कलनों पर पड़ता है और तब यह प्राक्कलनों की जाँच हुई मानी जाती है।

प्राक्कलन समिति का कार्य करने का ढंग इस प्रकार है। समिति के सदस्य नियुक्त होते ही पहले वह विषय या मंत्रालय चुन लेते हैं जिनके प्राक्कलनों की वर्ष में परीक्षा करनी हो। यह आवश्यक नहीं कि सदैव पूरा मंत्रालय परीक्षा के लिये चुना जाए। समिति मंत्रालय के कुछ प्राक्कलन भी चुन सकती है—उदाहरणार्थ 1956-57 की समिति ने संचार मंत्रालय में केवल भारतीय वायुसेना निगमों को ही परीक्षा के लिए चुना था। इसी प्रकार कुछ सर्वव्यापी स्वतन्त्र समस्याएँ भी चुनी जा सकती हैं जैसे कि 1953-54 की समिति ने शासकीय तथा वित्तीय सुधारों के प्रश्न को अपनी परीक्षा का विषय चुना था। स्वयं सदन द्वारा समिति को कुछ खास-प्राक्कलन अनुदानों की जाँच करने का आदेश मिल सकता है जैसा कि अस्थाई संसद काल में हुआ था। विषय चुने जाने पर समिति पहले सम्बन्धित मंत्रालय से लिखित जानकारी प्राप्त करती है। बाद में, यदि आवश्यक हो तो सम्बन्धित कार्यालयों, योजना-स्थलों पर प्रत्यक्ष जाँच के लिए दौरा किया जाता है। बाद में सरकारी और ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों का उस सम्बन्ध में साक्ष्य लिया जाता है और

अन्त में इन सबके आधार पर समिति सभा को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। रक्षा मंत्रालय के प्राक्कलनों की जाँच करने के लिए विशेष प्रथा है जो अध्यक्ष के आदेश नं० 101 में दी हुई है। इसके अनुसार सैन्य विभाग के प्राक्कलनों की परीक्षा एक विशिष्ट उपसमिति द्वारा की जाती है और उपसमिति का प्रतिवेदन यदि मुख्य समिति द्वारा पास हो जाए तो वह समिति का ही प्रतिवेदन समझा जाता है। उपसमिति के प्रतिवेदन के ऐसे भाग जिसे सभापति गोपनीय समझे समिति के सम्मुख नहीं जाते और न वे सदन के सामने ही रखे जाते हैं। वे सभापति द्वारा अध्यक्ष (Speaker) को दिए जाते है, जो जिस तरह अध्यक्ष तय करे, सरकार को भेज दिए जाते हैं, और सदन को इस बात की केवल सूचना दे दी जाती है।

रक्षा मंत्रालय की ही भाँति सरकारी उद्योगों * की परीक्षा करने के लिए एक स्थायी उपसमिति है जो अध्यक्ष के आदेश नं० 101अ के अनुसार प्रत्येक वर्ष समिति द्वारा नियुक्त की जाती है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं। उपसमिति को साक्ष्य लेने का अधिकार होता है। उपसमिति के प्रतिवेदन पर पहले पूरी समिति में विचार होता है और फिर वह प्रतिवेदन सभा को पेश किया जाता है।

समिति को अपनी कार्यवाही के लिए नियम बनाने के अधिकार है जो लोक सभा की प्राक्कलन समिति ने बनाए भी हैं।

लोक लेखा समिति की भाँति प्राक्कलन समिति के बारे में भी कुछ प्रथाएँ है जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं :—

(1) समिति के प्रतिवेदनों पर साधारणतया सभा में बहस नहीं होती, यद्यपि जब तत्सम्बन्धित मंत्रालय के प्राक्कलन सभा में विचारार्थ प्रस्तुत होते हैं, तो सदस्यों को यह अधिकार होता है कि वे समिति के प्रतिवेदन पर बहस करें। इसी प्रथा के अनुरूप सदस्यों से यह भी आशा की जाती है कि जब एक विषय प्राक्कलन समिति के विचारस्थ हो तो वे सदन में उस पर प्रश्न या उपप्रश्न न करें।

(2) मंत्रालयों से अपेक्षा की जाती है कि जहाँ तक हो सके समिति की सिफ़ारिशें कार्यान्वित करें। यदि किसी सिफ़ारिश के विषय में मंत्रालयों का मतभेद हो तो यह आवश्यक है कि वह अपने मत के साथ नवीन तथ्य पुनः समिति के सामने प्रस्तुत करें। इसे देखने पर समिति पुनः अपने विचार प्रगट करती है।

(3) यदि कोई विषय समिति के सामने विचारार्थ प्रस्तुत हो तो सरकार उसी विषय पर दूसरी विशेषज्ञ समिति जिसमें संसद् के भी सदस्य हों नियुक्त नहीं कर सकती। (शुद्ध सरकारी लोगों से निर्मित और विशिष्ट मसौदे की परीक्षा करने के लिए नियुक्त समितियाँ अपवाद हैं।)

---

*कृष्ण मेनन समिति की सिफ़ारिशों के परिणामस्वरूप 1962 में सरकारी तौर पर लोक सभा में एक प्रस्ताव लाया गया था कि राष्ट्रीय उद्योगों की जाँच के लिए एक अलग संसदीय समिति होनी चाहिए पर राज्य सभा के सदस्यों का समिति की रचना के विषय में मतभेद होने के कारण प्रस्ताव वापस ले लिया गया। लेकिन इस बात पर अब सरकार का निश्चय है कि राष्ट्रीय उद्योगों की जाँच के लिए एक अलग संसदीय समिति होनी चाहिए।

(4) समिति की परीक्षा के सम्बन्ध में समिति के सदस्यों को जो जानकारी प्राप्त होती है उसके आधार पर सदस्य संसद् में न तो कोई प्रश्न ही पूछ सकते हैं और न बहस ही छेड़ सकते हैं।

प्राक्कलन समिति भी लोक लेखा समिति की भाँति संसदीय वित्त नियंत्रण की प्रबल स्तम्भ सिद्ध हुई है जैसा कि श्री जॉन मथाई ने जब वे वित्त मंत्री थे कहा था : "प्राक्कलन समिति की जाँच से शासकों में हमेशा यह भय रहता है कि उन्हें व्यय मितव्ययता के साथ और कुशलता के साथ करना है। लोक लेखा समिति अधिकतर लेखा त्रटियों पर ही ध्यान रखती है पर प्राक्कलन समिति संगठन, मितव्ययता आदि गुणों का भी पालन कराती है। लोक लेखा समिति की जाँच व्यय होने के बाद होती है क्योंकि वर्ष भर के लेखे निर्माण होने पर जब वे लेखा परीक्षा फल के साथ संसद्-पटल पर रखे जाते हैं तभी लोक लेखा समिति अपना कार्य प्रारम्भ कर सकती है, पर प्राक्कलन समिति वर्ष के प्राक्कलन सभा के सम्मुख आते ही अपना कार्य प्रारम्भ करती है। समिति का संसद् की दृष्टि से भी एक हित है और वह यह है कि विभागों की कार्य-पद्धति की सूक्ष्मता के साथ जाँच करने के बाद सदस्यों को भी शासन की कठिनाइयों का पता चलता है, जिससे सदन में बहस का स्तर ऊँचा हो सकता है और आलोचना केवल कोरी आलोचना नहीं रहती। समिति में विशषज्ञ रहने पर लोगों को प्रायः आश्चर्य होता है पर सामान्य लोगों की बनी हुई होने में ही समिति का गुण है क्योंकि कितनी ही बातें ऐसी होती हैं जो विशेषज्ञों को तकनीकी दृष्टिकोण से नहीं सूझती, पर जन हित लग्न जनसाधारण को सूझ सकती हैं।"

लोक सभा की प्राक्कलन समिति ने अभी तक 250 से अधिक प्रतिवेदन उपस्थापित किए हैं जिनमें 68 पहली लोक सभा के काल में और 172 दूसरी लोक सभा के काल में पेश किए गए थे व शेष विद्यमान लोक सभा के काल में पेश किए गए हैं। समिति ने वित्तीय व शासकीय सुधार के प्रश्न, योजनेतर व्यय वृद्धि तथा औद्योगिक संगठन के प्रश्नों के अतिरिक्त अभी निम्नलिखित मंत्रालयों की जाँच की है।

1. व्यापार तथा उद्योग मंत्रालय,
2. उत्पादन मंत्रालय,
3. रेल मंत्रालय,
4. यातायात मंत्रालय,
5. खाद्य तथा कृषि मंत्रालय,
6. सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय,
7. सामुदायिक विकास मंत्रालय,
8. सिंचाई तथा बिजली मंत्रालय,

9. परिवहन मंत्रालय,
10. रक्षा मंत्रालय,
11. निर्माण, खनिज तथा बिजली मंत्रालय,
12. शिक्षा तथा वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय,
13. श्रम तथा रोज़गार मंत्रालय,
14. गृह मंत्रालय,
15. वित्त मंत्रालय, तथा
16. पुनर्वास मंत्रालय।

समिति की प्रथम लोक सभा के काल में 9वीं रिपोर्ट, 16 वीं रिपोर्ट, व द्वितीय लोक सभा के काल में 21वीं रिपोर्ट, 55वीं रिपोर्ट, 60वीं रिपोर्ट, 73वीं रिपोर्ट 80वीं रिपोर्ट तथा तृतीय लोक सभा के काल की 11वीं रिपोर्ट वित्तीय व राष्ट्रीय उद्योगों पर संसदीय वित्तीय नियंत्रण के विषय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

o o o

अध्याय 8

संघीय वित्त व्यवस्था

संघीय वित्त व्यवस्था का अर्थ संघ और राज्य सरकारों के बीच वित्तीय सम्बन्धों का प्रबंध है। मोटे तौर पर यह प्रबंध तीन कारणों से होता है। (1) कार्यों की तुलना में संघ और राज्य सरकारों की आय में विषमता, (2) राज्यों में आपस में आर्थिक विकास का विभिन्न स्तर, तथा (3) शासकीय सुविधा। देश की रक्षा व विदेशों के साथ सम्बन्ध जैसे कार्य किसी संघ राज्य में संघ सरकार को ही सौपे जा सकते हैं पर संघ राज्य में संघ सरकार को शासकीय सुविधा के साथ उपलब्ध सारी आमदनी कदाचित् इसके लिए पर्याप्त न हो। अतएव ऐसे कर आदि जो साधारणतया राज्य सरकारों के हक में होने चाहिएँ उनमें से संघ सरकार को हिस्सा दिलाना आवश्यक हो जाता है। यही बात राज्य सरकारों के विषय में भी लागू हो सकती है। उन्हे कुछ ऐसे काम सौंपे जा सकते है जिनके लिए उनके पास तद्नुकल साधन उपलब्ध न हों। जनतन्त्र राज्यों में प्रान्तों की पारस्परिक आर्थिक विषमता दूर करने के लिए भी संघ व राज्य सरकारों के बीच विशेष वित्तीय सहायता आदि के प्रबन्ध करने पड़ते है। शासकीय सुविधा भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कुछ ऐसे कर होते हैं जिन पर राज्य सरकारों का वास्तविक अधिकार हो सकता है पर जिन्हें वसूल करने के लिए संघ सरकार जैसी सक्षम संस्था की ही आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में कर की वसूली उपयुक्त सरकार पर छोड़ दी जाती है और बाद में विभिन्न एककों में उनका विभाजन किया जाता है।

1. संघीय-वित्त-व्यवस्था का पूर्व-इतिहास

भारत में संघ वित्त व्यवस्था का प्रारम्भ सन् 1871 से माना जाता है। इसके पहले या तो जैसा कि 1773 के पहले था, प्रान्त बिल्कुल स्वतन्त्र थे, या जैसा कि 1833 के चार्टर एक्ट से हुआ, प्रान्तों को बिल्कुल स्वतन्त्रता न थी। किंवदंती है कि केन्द्रीय सरकार का प्रान्तों पर इतना प्रभुत्व था कि कोई प्रान्त केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना दस रुपए का भी खर्च न कर सकता था।

(क) **1871 से 1920 तक का कालः**—यह काल केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकारों को क्रमिक वित्तीय अधिकारों के प्रक्रामण (Devolution) का काल है। इसमें पहले तो शासन के सारे अधिकार केन्द्रीकृत थे पर बाद में प्रान्त सरकारों को कुछ अधिकार दे दिए गए। प्रक्रामण की क्रिया राज्य सरकारों को कुछ अनुदान दिए जाने के रूप में प्रारम्भ हुई। बाद में प्रान्त सरकारों को स्वतन्त्र आय स्रोत दिए गए। यह प्रथा 1912 तक पंचवर्षीय पुनरीक्षण के आधार पर चलती रही जिसके बाद इसे स्थाई बना दिया गया। इस प्रथा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के पास व्यापारिक विभागों के समस्त लाभ, तथा ऐसी आयों की प्राप्ति, जिनकी उत्पत्ति का कोई खास स्रोत न था, संघ सरकार के पास होती थीं और शेष राज्य सरकारों के पास। चूंकि इनसे संघ सरकार की आवश्यकता पूरी न होती थी अतएव

आय-कर आदि का भी हिस्सा संघ सरकार को मिलता। यह उल्लेखनीय है कि इस काल में पारस्परिक आवश्यकताओं का कोई मापदण्ड न था अतएव वितरण परिस्थिति के अनुसार ही हुआ करता था।

(ख) **1920 से 1937 तक का काल:**—यह काल संघ व राज्यों के वित्तीय अधिकारों के पृथक्करण का काल है। मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड के सुधार से, जो भारत सरकार अधिनियम 1919 के रूप में कार्यान्वित किए गए थे, निश्चित रूप से प्रान्तीय सरकारों को वित्तीय स्वतन्त्रता देने की चेष्टा की गई थी। इसमें मालगुज़ारी (Land Revenue), स्टाम्प शुल्क, उत्पादन शुल्क, आय-कर तथा सिचाई कर प्रान्तों को दिए गए थे और व्यापारिक विभागों से लाभ आदि संघ सरकार के लिए छोड़ दिए गए थे। इससे संघ सरकार की वित्तीय हालत कमज़ोर पड़ गई अतएव यह व्यवस्था की गई कि प्रान्त सरकारें संघ सरकार को अनुदान दिया करेंगी।

अनुदानों की पद्धति कोई सरल न थी। प्रान्तों में, कौन कितने अनुदान दे, यह झगड़ा पड़ने लगा, अतएव ब्रिटिश सरकार को वित्तीय सम्बन्धों पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त करनी पड़ी जिसके अध्यक्ष लार्ड मेस्टन थे। मेस्टन साहब के निर्णय में प्रान्तों से अपेक्षा की गई थी कि प्रान्तों को वित्तीय अधिकार देने से जिस अनुपात में उनकी आमदनी में वृद्धि हुई थी उसी अनुपात में वे संघ सरकार को अनुदान देंगे। यदि इसके बाद भी संघ सरकार की कुछ आवश्यकता पूर्ति बच जाती तो उसके लिए मेस्टन महोदय ने एक खास उपाय बताया था जिसके अनुसार राज्य सरकारों को संघ सरकार की मदद करनी पड़ती थी। मेस्टन साहब के निर्णय का यह दुर्भाग्य था कि उसे चारों ओर से विरोध का सामना करना पड़ा। प्रत्येक प्रान्त यह समझता था कि दूसरे की तुलना में उसे ज़्यादा देना पड़ रहा है। अतएव ब्रिटिश पार्लियमिन्ट की एक संयुक्त समिति ने, जो उस समय वैधानिक सुधारों के प्रश्न पर विचार कर रही थी यह तय किया कि मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड के आय-कर सम्बन्धी सुझावों को स्थगित कर दिया जाए। यह समिति अनुदानों की व्यवस्था के भी पक्ष में न थी। परिणामतः मान्टेग्यू सुधारों के वित्तीय करार सम्बन्धी प्रायः सभी सुझावों को रद्द कर दिया गया।

यह संशोधित व्यवस्था 1925 तक चलती रही जब तत्कालीन नियुक्त "भारतीय कर-जाँच-समिति" (Indian Taxation Enquiry Committee) ने पुनः संघ वित्त व्यवस्था पर पुनर्विचार किया। समिति ने सिफ़ारिश की कि स्टाम्प शुल्क, उत्पादन कर आदि स्रोत केन्द्र को दे दिए जाएँ और शराब से प्राप्ति भी केन्द्र सरकार को दे दी जाए। समिति का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय यह था कि राज्य और संघ सरकार में संतुलन के लिए यदि कोई उपयुक्त कर है तो वह आय-कर है। और उसकी वसूली संघ सरकार के ही हाथ में रहनी चाहिए। समिति ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि निगम-कर का कुछ अंश प्रान्तों को दे देना चाहिए, जो इस सिद्धान्त की मान्यता का द्योतक था कि आय के मूल स्थान को आयकर से कुछ अंश मिलना आवश्यक है। 1930 में जो "भारतीय विधान आयोग" (Indian Statutory Commission) की रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमें कर-जाँच-समिति के साथ सहमति प्रगट की गयी थी। आयोग ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि कृषि आयों के कर संघ सरकार के आय स्रोतों से हटाकर प्रान्तों को दे देने चाहिएँ। आयोग का यह भी मत था कि औद्योगिक प्रान्तों को

आय-कर से ज्यादा हिस्सा मिलना चाहिए। 1931 और 1932 में क्रमशः "प्रथम पील समिति" तथा "पर्सी समिति" के सम्मुख संघ वित्त व्यवस्था पर पुनः विचार किया गया। ये समितियाँ द्वितीय तथा तृतीय गोल मेज़ परिषद् के तत्वावधान में "संघीय संरचना समिति" (Federal Structure Committee) द्वारा नियुक्त की गई थी। पील समिति का यह मत था कि आय-कर प्रान्तों के अधीन कर देना चाहिए। इस समिति की सिफ़ारिशें रूप रेखा में बिल्कुल मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड की सिफ़ारिशों की तरह थी पर जिस तरह मेस्टन साहब के पंचाट (Award) को तत्कालीन संयुक्त संसदीय समिति ने ठुकरा दिया उसी तरह पील समिति की सिफ़ारिशों को भी पर्सी समिति ने ठुकरा दिया। समिति के अनुसार यह वांछित न था कि आय-कर की सारी प्राप्ति प्रान्तों को दे दी जाए। उसने सिफ़ारिश की कि निगम कर तथा केन्द्रीय बस्तियों व केन्द्रीय अधिकारियों से प्राप्त आय-कर केन्द्र सरकार के पास रहे व शेष अर्थात् (आय-कर से प्राप्त) आय को निवास के आधार पर प्रान्तों में बाँट दिया जाए। समिति ने यह सुझाव दिया कि आय-कर से वितरित राशियाँ जहाँ तक हो सके स्थाई होनी चाहिएँ। इसने केन्द्रीय सरकार को अधिभार (Surcharge) लगाने की स्वतन्त्रता दे दी थी। अन्त में 1933-34 में पुनः एक संसदीय संयुक्त समिति ने संघ वित्त व्यवस्था पर विचार प्रगट किए। यह समिति भारत के वैधानिक सुधारों के लिए नियुक्त हुई थी। समिति ने भी आय-कर को प्रान्तीय सरकारों के हाथ में देने का विरोध किया व सिफ़ारिश की कि प्रान्तों को आय-कर के विभाज्य भाग का निश्चित अंश मिलना चाहिए। समिति ने यह भी सिफ़ारिश की कि प्रान्तों को भी संघ उत्पादन शुल्कों का कुछ अंश मिलना चाहिए। ये ही सारे प्रस्ताव हम 1935 के भारत अधिनियम के अनुच्छेद 138 तथा 140 में पाते हैं। अधिनियम में एक और व्यवस्था की गई थी (देखिए अनुच्छेद 142) कि यदि प्रान्तीय सरकारें सहायता पाने की परिस्थिति में हों तो उन्हें सहायक अनुदान दिए जाएँ।

(ग) **1938 से 1950 तक का काल:**—1935 के अधिनियम में कितनी ही बातें ऐसी थीं कि जिनके ऊपर विस्तृत परीक्षा की आवश्यकता थी। 1936 में सर ऑटो-नेमियर की नियुक्ति इसीलिए हुई थी। आटोनेमियर महोदय का मत था कि संघ सरकार की वित्तीय स्थिरता तथा प्रान्तों की भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए जहाँ तक हो सके यह आवश्यक है कि प्रान्तों को अधिकतम आय दी जाए। आय-कर के वितरण के आधार के सम्बन्ध में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि केवल जनसंख्या अथवा स्रोत के आधार पर प्रान्तों को आय-कर का वितरण करना उपयुक्त नहीं होगा। यह जनसंख्या और स्रोत दोनों ही आधारों पर होना चाहिए। नेमियर साहब ने एक और महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिश की और वह यह कि बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा फ्रन्टियर प्रदेशों को दिए गए (1 अप्रैल 1936 के पूर्व) ऋणों को रद्द कर देना चाहिए तथा मध्य प्रदेश को दिए गए ऋण को घटा देना चाहिए।

नेमियर महोदय की सिफ़ारिशों का पालन 1940 तक होता रहा। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने से संघ सरकार के आय स्रोतों को दृढ़ करने का पुनः विचार किया गया। 1940 के एक आदेश से यह तय किया गया कि प्रान्तों में विभाज्य आयकर के भाग से 4·5 करोड़ रुपए की राशि केन्द्र सरकार को दे दी जाए। युद्ध काल के अगले वर्षों में इसमें प्रति वर्ष 75 लाख रुपए अधिक मिलते रहे। युद्ध खत्म भी न हुआ था कि देश का विभाजन हुआ जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित राज्यों के वित्त सम्बन्ध में परिवर्तन करना पड़ा। देश विभाजन के परिणामस्वरूप सिन्ध

व सीमा प्रान्त बिल्कुल जाते रहे व बंगाल, पंजाब तथा आसाम के कुछ हिस्से चले गए । अतएव इन पृथक्कृत प्रान्तों के आय-कर के हिस्से को शेष प्रान्तों में बाँट दिया गया। बंगाल का जूट उत्पादक भाग पाकिस्तान में चला गया था। शुरू में ये निश्चय केवल सरकारी तौर पर किए गए थे पर प्रभावित प्रान्तों में असंतोष देख 1951 में सरकार को एक विवाचक* (Arbitrator) नियुक्त करना पड़ा जिसका काम देश विभाजन को ध्यान में रखते हुए प्रान्तों के आय-कर के हिस्से का पुनर्निर्धारण तथा बंगाल, पंजाब तथा आसाम के केन्द्र को मिलने वाले हिस्सों का निश्चय करना था । 1950 में सरकार ने देशमुख का पंचाट मंजूर कर लिया जो 1952 तक चलता रहा ।

इस समय की दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करना चाहिए जिनसे भारतीय संघीय वित्त व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए । इनमें पहली घटना 1947 में भारत की संविधान सभा द्वारा संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच वित्तीय सम्बन्धों पर विचार करने के लिए नियुक्त विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट तथा दूसरी देशी राज्यों के विलीनीकरण के परिणामस्वरूप पुनर्गठित राज्यों के साथ वित्तीय क़रार है।

संविधान सभा की वित्त समिति के अध्यक्ष श्री नलिन रंजन सरकार थे और यह समिति "सरकार समिति" के नाम से प्रसिद्ध है । समिति ने सिफ़ारिश की कि सारा का सारा आय-कर जिसमें निगम कर तथा संघ आयों पर लगे कर भी शामिल हैं संघ और राज्य सरकारों में विभाज्य होना चाहिए । समिति का मत था कि कुल प्राप्ति का 60 प्रतिशत प्रान्तों में बाँट देना चाहिए । जूट निर्यात कर के बारे में समिति की सिफ़ारिश थी कि तत्कालीन प्रान्तों के साथ उस उत्पादन शुल्क के विभाजन की व्यवस्था की समाप्ति कर देनी चाहिए । उनके मतानुसार यह कर विभाजन के लिए अनुपयुक्त था । साथ ही जूट उपजाने वाले प्रान्तों को जैसे बंगाल, आसाम आदि इस खात्मे से होने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए कुछ सहायक अनुदान देने का सुझाव दिया । समिति ने यह भी सिफ़ारिश की कि तम्बाकू जैसे उत्पादन कर को 50 प्रतिशत तक प्रान्तों में बाँट देना चाहिए । समिति की सबसे महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिश यह थी कि संघ व राज्य सरकारों के बीच वितरण की समस्या को हल करने के लिए एक "वित्त आयोग" की नियुक्ति की जानी चाहिए ।

देशी राज्यों के वित्तीय एकीकरण (Financial Integration of Indian States) की जाँच के लिए नियुक्त समिति की मुख्य सिफ़ारिशें निम्नलिखित हैं :

"(1) अप्रैल 1950 से आय-कर केन्द्र सरकार द्वारा लगाया जाना चाहिए और उसका (ख) भाग के राज्यों में वितरण उसी सिद्धान्त पर होना चाहिए जिस सिद्धान्त पर वह (क) भाग के राज्यों के बीच होता है ।

(2) राजस्थान व मध्य भारत को छोड़ कर शेष राज्यों में आन्तरिक निर्यात शुल्क का अन्त कर देना चाहिए । इन दो राज्यों में यह अन्त क्रमिक होना चाहिए ।

(3) सभी संघीय सेवाएँ और उनके विभाग केन्द्र सरकार को शीघ्र सौंप देने चाहिएँ । इस प्रकार आयात-निर्यात, रेलों और डाक-तार विभाग (केवल ट्रावनकोर कोच्चिन राज्य को छोड़कर) केन्द्र सरकार को सौंप देने चाहिए ।

*श्री चिन्तामणि देशमुख

(4) चूँकि विलीनीकरण से कुछ राज्यों को हानि होने की संभावना है इसलिए इन राज्यों को केन्द्र सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति की सहायता देनी चाहिए।"

1950 से अभी तक के काल में 1952, 1957 तथा 1961 के आयोग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। 1954 के "कर व्यवस्था जाँच आयोग" भी संघ वित्त व्यवस्था में अपना स्थान रखते हैं। वित्त आयोग की सिफ़ारिशें संघ वित्त व्यवस्था पर भारी परिणाम होने के कारण उन्हें अधिक विस्तार से आगे बतलाया गया है।

2. भारतीय संघीय वित्त व्यवस्था की विशेषताएँ

उपरोक्त संक्षिप्त इतिहास से भारतीय संघ वित्त व्यवस्था की कुछ विशेषताएँ प्रगट होती हैं जो निम्न हैं:

(1) भारतीय संघ वित्त व्यवस्था का परिचालन राज्य सरकार द्वारा न होकर केन्द्र सरकार द्वारा होता रहा है। अर्थात् जहाँ आस्ट्रेलिया या अमरीका की तरह संघ बनाने वाले राज्यों ने अपनी ओर से संघ सरकार के कार्यों के बदले में कुछ उसे आय के स्रोत नहीं सौंपे हैं वरन् प्रवृत्ति यह रही है कि केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को कुछ काम सौंप कर साथ ही आवश्यक आय के स्रोत भी देती रही है। यह होना स्वाभाविक है क्योंकि हमारे देश का राजनैतिक विकास ही ऐसा रहा है। पर वित्तीय दृष्टि से इसका परिणाम यह है कि संघ सरकार संघ वित्त व्यवस्था की नियामक है।

(2) कार्यों के अनुसार राज्यों या भारत सरकार को ऐसे आय स्रोत उपलब्ध कराए जाएँ ताकि विभाजन की आवश्यकता न पड़े। विदेशों की तरह ऐसे प्रयत्न यहाँ भी असफल रहे हैं। संविधान के पूर्व विभिन्न समस्याओं के परीक्षकों की यह चेष्टा रही है कि दोनों प्रकार की सरकारों को एक दूसरे से स्वतन्त्र बना दिया जाए। पर संविधान जैसा कि आगे बतलाया जाएगा, इस बात की पुष्टि करता है कि ऐसा करना संभव नहीं है।

(3) केन्द्र की वित्तीय दृढ़ता पर ही राज्यों की समृद्धि निर्भर है। केवल 1957 के वित्त आयोग को छोड़कर किसी संघ-वित्त व्यवस्था के परीक्षा करने वाले व्यक्ति या समिति ने संघ सरकार की वित्तीय हालत को नीचे नहीं गिरने दिया है। 1957 के आयोग ने यह कहा है कि चूँकि योजना की सफलता का दायित्व राज्यों पर अधिक है इसलिए उनकी वित्तीय हालत को सुदृढ़ करना चाहिए।

(4) आय और सहायक अनुदानों का राज्यों के बीच बँटवारा साम्यपूर्ण होना चाहिए नहीं तो परस्पर द्वेष और मनमुटाव की संभावनाएँ होंगी। वित्त आयोग की पंचवर्षीय स्थापना के बाद इस सम्बन्ध में अब शिकायतें कम हैं पर पहले राज्यों को हमेशा असंतोष रहा करता था। यह कहना ग़लत न होगा कि अनुभव से अब ऐसे आधारों की खोज हो चुकी है जो साम्यपूर्ण हैं।

(5) भारत में आयों का विभाजन अभी तक केवल राज्यों के राजस्व की हालत पर निर्भर था। 1952 और 1957 के वित्त आयोगों में राज्यों के पूँजी व्यय को भी ध्यान में रखा गया है।

(6) राज्यों को दी गई सहायता से यह अपेक्षा न करनी चाहिए कि वह वापस मिलेगी। पहले कितनी ही बार राज्य सरकारों को दिए गए ऋण बट्टे खाते डाले जा चुके हैं। 1957 के वित्त आयोग की ऋण सम्बन्धी सिफ़ारिशों पर भारत सरकार के निर्णय से भी यही प्रगट होता है।

(7) राज्यों की संचित प्राप्ति का विभाजन नही होता केवल केन्द्रीय प्राप्तियों का ही विभाजन होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि राज्य केन्द्र को मदद नहीं देते, वरन् यह है कि ऐसी विभाज्य प्राप्तियाँ सुविधा के लिए पहले केन्द्र प्राप्ति के रूप में संचित की जाती हैं बाद में उनका विभाजन किया जाता है। और

(8) आय कर ही भारतीय संघ वित्त व्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण संतुलक है।

3. संविधान के अन्तर्गत व्यवस्था

संविधान के उपबन्ध (Schedule) 7 की सूचिका एक और दो में क्रमश: जो विषय गिनाए गए हैं उनमें संघ वित्त व्यवस्था की दृष्टि से हम दोनों सरकारों के कार्यों और आय स्रोतों का वर्णन पाते हैं। संघ वित्त व्यवस्था के विद्यार्थी को इन कार्यो को स्मरण रखना चाहिए क्योंकि कोई वित्त व्यवस्था हमेशा कार्यों की तुलना में ही हो सकती है। सूचियों में जो आय-स्रोत गिनाए गए हैं उनमें मुख्य इस प्रकार हैं:

(क) केन्द्र और राज्य आय-स्रोत

(अ) केन्द्र सरकार

(1) कृषि आय को छोड़कर अन्य आयों पर कर

(2) सीमा शुल्क (जिसमें निर्यात शुल्क भी है)

(3) भारत में निर्मित या उत्पादित तम्बाकू तथा

(क) मानव उपभोग के मद्यसारिक पानों
(ख) अफ़ीम, भाँग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियों तथा स्वापकों को छोड़कर

अन्य सब वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क।

(4) निगम कर

(5) व्यक्ति या कंपनियों की संपत्ति में से कृषि भूमि को छोड़कर उसके पूँजी मूल्य पर कर, कंपनियों की पूंजी पर कर

(6) कृषि भूमि को छोड़कर अन्य संपत्ति के बारे में संपदा शुल्क

(7) कृषि भूमि को छोड़ संपदा के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क

(8) रेल समुद्र या वायु से ले जाए जाने वाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर, रेल के जन भाड़े व वस्तु भाड़े पर कर।

(9) मुद्रांक शुल्क को छोड़कर स्टाक बाज़ार (Stock Exchange) और वादा बाज़ार (Future Markets) के सौदों पर कर।

(10) हुंडियों (Bills of Exchange), चेकों, रुक्कों, लदान पत्रों (Bills of Lading), साख पत्रों (Letters of Credit), बीमा पत्रों, अंशों के हस्तान्तरण (Transfer of Share), ऋण पत्रों (Debentures), प्रति पत्रियों (Proxies) और प्राप्तियों (Receipts) के सम्बन्ध में लगने वाले मुद्रांक शुल्क।

(11) समाचार पत्रों के क्रय या विक्रय तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।

(12) ऐसा और कोई कर जो दूसरी और तीसरी सूची में न गिनाया गया हो।

(ब) राज्य सरकार

(1) कृषि आय पर कर (46)

(2) कृषि भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क (47)

(3) कृषि भूमि के विषय में संपत्ति शुल्क (48)

(4) भूमि और भवनों पर कर (49)

(5) संसद् से विधि द्वारा खनिज विकास के सम्बन्ध में लगाई गई परिसीमाओं के अधीन रहते हुए खनिज अधिकार पर कर (50)

(6) राज्य में निर्मित या उत्पादित निम्नलिखित वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क तथा भारत में अन्यत्र निर्मित या उत्पादित तत्सम वस्तुओं पर उसी या कम दर से अधिभार

(क) मानव उपयोग के लिए मद्यसारिक पान

(ख) अफ़ीम, भाँग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियों और स्वापक किन्तु औषधीय और प्रसाधनीय सामग्रियों को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर कर (51)

(7) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए वस्तुओं के प्रयोग पर कर (52)

(8) विद्युत् के उपयोगों या विक्रय पर कर (53)

(9) समाचार पत्रों को छोड़ कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर (54)

(10) समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर (55)

(11) सड़कों या अन्तर्देशीय जलपथों से आनेवाली वस्तुओं और यात्रियों पर कर (56)

(12) सड़कों पर उपयोग के योग्य यानों पर—चाहे वे यन्त्र चालित हों या नहीं—कर (57)

(13) पशुओं और नौकाओं पर कर (58)

(14) पथकर (Tolls) (59)

(15) वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर (60)

(16) व्यक्ति कर (Capitation Tax) (61)

(17) विलास वस्तुओं पर कर जिनके अन्तर्गत आमोद, विनोद, पण लगाने और जुआ खेलने पर कर भी शामिल है (62)।

(ख) बँटवारे की योजना

आय और काम बतलाने के बाद संविधान ने उनके आपस में बाँटने की भी व्यवस्था की है। इस प्रकार कुछ ऐसे कर गिनाए गए हैं जिनकी प्राप्तियों से राज्य सरकारों को हिस्सा देना अनिवार्य है। कुछ ऐसे कर भी हैं जिनके बारे में बँटवारा करने या न करने का अधिकार संविधान ने संसद् पर छोड़ दिया है। कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ भी हैं जिन पर राज्य का कोई हक़ न होते हुए भी राज्यों के हित में संविधान ने निर्धारित की हैं।

राज्य सरकारों को हिस्सा मिलने वाली प्राप्तियों में पहले प्रकार की प्राप्तियाँ इस प्रकार हैं :—

(क) कृषि भूमि से अन्य संपत्ति के उत्तराधिकार विषयक संपत्ति शुल्क

(ख) कृषि भूमि से अन्य संपत्ति विषयक संपत्ति शुल्क

(ग) रेल, समुद्र या वायु से वहित वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर

(घ) रेल भाड़ों और वस्तु भाड़ों पर कर

(ङ) सट्टा बाजारों और वायदा बाजार के सौदों पर स्टाम्प शुल्क से अन्य कर

(च) समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित अन्य विज्ञापनों पर कर।

इन प्राप्तियों के विषय में संविधान ने यह व्यवस्था की है कि ये कर भारत सरकार द्वारा लगाए और संगृहीत किए जाएँगे किन्तु उन्हें राज्यों को सौंप दिया जाएगा। वितरण संसद् द्वारा निर्धारित होगा व संसद् इस मामले में वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के अनुकूल कार्य करेगी।

दूसरे प्रकार की प्राप्तियों में मुद्रा शुल्कों तथा औषधीय और प्रसाधन-सामग्री पर लगाए जाने वाले उत्पादन कर आते हैं। ये कर भारत सरकार द्वारा लगाए जाते हैं पर जिन राज्यों की सीमाओं में वसूल किए जाते हैं उन्हीं राज्यों द्वारा संगृहीत होते हैं। ये प्राप्तियाँ भारत सरकार की समेकित निधि का भाग नहीं होतीं।

तीसरे प्रकार की प्राप्तियों में कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आयों के कर शामिल हैं। ये प्राप्तियाँ भारत सरकार द्वारा लगाई तथा संगृहीत की जाती है पर ये भारत की समेकित निधि का अंश नहीं होतीं और उन्हें राज्यों के बीच बाँट दिया जाता है (ऐसे राज्य जिनमें यह लगाया गया हो)। बाँटने के सम्बन्ध में संविधान का आदेश है कि उसकी रीति राष्ट्रपति द्वारा आदिष्ट होगी। यदि वित्त आयोग नियुक्त हो गया हो तो राष्ट्रपति आयोग की सिफ़ारिशों को ध्यान में रखते हुए ये आदेश देंगे।

वैकल्पिक वितरण के जो कर हैं उनमें संघ सूची में वर्णित औषधीय तथा प्रसाधन सामग्री पर उत्पादन शुल्क से अन्य संघ उत्पादन शुल्क आते है। ये शुल्क भारत सरकार द्वारा लगाए और संगृहीत किए जाते हैं। किन्तु यदि संसद् विधि द्वारा उपबन्धित करे तो शुल्क लगाने वाली विधि जिन राज्यों पर लागू होती है उन राज्यों को भारत की समेकित निधि में से उस शुल्क के शुद्ध राजस्व के पूर्ण अथवा किसी भाग के बराबर राशि दी जाती है और वे राशियाँ उन राज्यों के बीच विधि द्वारा सूत्रबद्ध वितरण के सिद्धान्तों के अनुसार वितरित कर दी जाती हैं।

अन्तिम प्रकार की व्यवस्था वाले राज्यों के राजस्व की कमी को पूरा कराने के लिए दिए गए अनुदानों के अन्तर्गत सहायता अनुदान * और विशेष तरह के अनुदान आते हैं। राजस्व की कमी पूरी करने के लिए दिए गए सहायता अनुदान भारत की समेकित निधि पर भारित होते हैं। कौन से राज्य इस सहायता अनुदान के पात्र होंगे और अनुदान उन्हें किस अनुपात में दिया जाएगा यह निर्णय संसद् को सौंपा गया है।

किसी राज्य की अनुसूचित आदिम जाति (Scheduled Tribe) के कल्याण के लिए अथवा उस राज्य के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तरों को ऊँचा करने के लिए सहायता अनुदान देना अनिवार्य है। संविधान में यहाँ तक कहा गया है कि आसाम राज्य के राजस्वों के सहायता अनुदान के रूप में भारत की समेकित निधि में से मूल तथा आवर्तक राशियाँ दी जाएँगी,

(क) जो छठी अनुसूची की कँडिका 20 से संलग्न सारिणी के (क) भाग में उल्लिखित आदिम जाति क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले दो वर्ष में राजस्वों से औसतन अधिक व्यय के बराबर हो, तथा

(ख) जो उक्त क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को उन्नत करने के प्रयोजनों के लिए उस राज्य द्वारा भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली गई योजनाओं के खर्चों के बराबर हो।

---

*संविधान के अनुच्छेद 273 में एक और प्रकार के सहायता अनुदानों की व्यवस्था है और वह यह कि उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बिहार को पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर निर्यात शुल्क के प्रत्येक वर्ष के शुद्ध राजस्व के किसी हिस्से को भारत की समेकित निधि से दस वर्ष तक सहायता अनुदान के रूप में दिया जाए। तदनुसार प्रथम व द्वितीय वित्त आयोगों ने सहायता अनुदान की मात्रा भी निर्धारित की थी पर अब दस वर्ष बीत चुकने के कारण, सहायता अनुदान का प्रश्न नहीं उठता।

संसद् इस विषय पर वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर सहायता अनुदान निर्धारित करती है। जब आयोग का निर्माण नहीं हुआ था तब संसद् की प्रदत्त शक्तियों (Delegated Powers) के आधार पर इस विषय में राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी किया जाता था।

(ग) वित्त आयोग

अन्त में संविधान की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवस्था वित्त आयोग का निर्माण है। जैसा कि पहले बताया गया था संविधान की वित्त विषयक विशेषज्ञ समिति अर्थात् 'सरकार समिति' ने वित्त आयोग की नियुक्ति की सिफ़ारिश की थी। इसके पूर्व वित्त मंत्रालय के एक विशेषज्ञ मण्डल ने भी जो आस्ट्रेलिया में संघ वित्त व्यवस्था का विशेष अध्ययन करने गया था एक वित्त आयोग की सिफ़ारिश की थी। संविधान ने इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था की है कि प्रत्येक पाँच वर्ष की समाप्ति पर, अथवा उससे पहले, यदि राष्ट्रपति आवश्यक समझें, एक वित्त आयोग नियुक्त किया जाएगा। आयोग के चार सदस्य और एक अध्यक्ष होगा।

आयोग के निम्नलिखित* कर्तव्य होंगे :—

(क) संघ तथा राज्यों के बीच में कर या शुद्ध राजस्व का जो (इस अध्याय के अधीन) उनमें विभाजित होता है या हो उसके वितरण के रूप के बारे में तथा राज्यों के बीच ऐसे राजस्व के तत्सम्बन्धी अंशों के बँटवारे के बारे में,

(ख) भारत की समेकित निधि में से राज्यों के राजस्वों के सहायता अनुदान देने में पालन करने योग्य सिद्धांतों के बारे में, तथा

(ग) स्वस्थ वित्त (Sound Finance) के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे हुए किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफ़ारिश करना।

वित्त आयोग को अपनी प्रक्रिया आप निर्धारित करने का अधिकार होता है। इसकी प्रत्येक सिफ़ारिश पर की गई कार्यवाही का व्याख्यात्मक ज्ञापन राष्ट्रपति द्वारा संसद् के दोनों सदनों के सम्मुख रखा जाता है।

4. वित्त-आयोग 1952, 1957 तथा 1961 के सुझाव

वित्त-आयोग 1952 व 1957.—'वित्त आयोग 1952' संविधान की संघ वित्त् व्यवस्था के अन्तर्गत पहला आयोग था। वित्त आयोग के सभापति श्री नियोगी थे। वित्त आयोग की प्रमुख सिफ़ारिशे इस प्रकार हैं :—

(1) कृषि आय को छोड़कर बाकी आय-कर प्राप्ति को किसी वित्तीय वर्ष में राज्यों के बीच 55 प्रतिशत भाग बाँट देना चाहिए। इसके पूर्व 50 प्रतिशत भाग राज्यों के बीच बाँटा जाता था। आयोग की आय कर

*1956 के पहले आयोग का एक और भी कर्तव्य था, यथा, "अनुच्छेद 298 के खण्ड (1) के अधीन या अनुच्छेद 306 के अधीन भारत सरकार और प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में उल्लिखित किसी राज्य की सरकार के बीच किए गए किसी करार के उपबन्धों के चालू रखने अथवा रूप भेद करने के बारे में" यह संविधान (सप्तम) संशोधन अधिनियम 1956 द्वारा वंचित कर दिया गया है।

विभाजन द्वारा राज्यों व संघ सरकार के बीच संतुलन लाने की पद्धति में विशेष आस्था न थी पर राज्यों की बढ़ती आय तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसे ऐसी सिफ़ारिश करनी पड़ी। राज्यों के बीच इस अंश के वितरण करने के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों और तर्कों की परीक्षा करने के पश्चात् आयोग इस निर्णय पर पहुँचा कि आय-कर से राज्य सरकार का हिस्सा दो बातों पर अवलम्बित होना चाहिए—राज्य विशेष से कितनी प्राप्ति हुई है और जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए उसकी क्या आवश्यकता है।

(2) पटसन व पटसन से बनी वस्तुओं के निर्यात शुल्क की प्राप्ति का राज्यों के बीच विभाजन बढ़ा दिया जाए। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत उक्त कर का 62·5 प्रतिशत सम्बन्धित प्रान्तों को दिया जाता था। देश विभाजन से जूट उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान में जाने के परिणामस्वरूप यह हिस्सा 20 प्रतिशत कर दिया गया। संविधान सभा की विशेषज्ञ समिति की सिफ़ारिश थी कि निर्यात कर का हिस्सा देने की अपेक्षा बदले में सम्बन्धित प्रान्तों को सहायता अनुदान देने चाहिए। आयोग ने इसी व्यवस्था को क़ायम रखा।

(3) सहायता अनुदान उसी हद तक देना चाहिए जिस हद तक राज्य सरकार ने आत्म निर्भरता की चेष्टा की हो। सहायता अनुदान मिलन की यह शर्त होनी चाहिए कि राज्य सरकारें उस सहायता से हुए व्यय में मितव्ययता दिखाएँ। राज्यों को सहायता अनुदान तो दिए जाएँ पर उनसे राज्य सरकारों में यह भावना न उठने पाए कि संघ सरकार ने उनके आयव्ययक की कमी पूरी करने का ठेका ले लिया है।

(4) जहाँ किसी आवश्यक समाज सेवा में कोई राज्य बहुत पिछड़ा हुआ है वहाँ उसे संघ सरकार से विशेष सहायता देने की व्यवस्था होनी चाहिए जैसे प्राइमरी शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष मदद। इस प्रयोग की सफलता के लिए दुबारा अनुदान देने के पहले अगले आयोग द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए।

(5) बम्बई, मध्यप्रदेश व मद्रास को जो उस समय तम्बाकू कर लगाने से वंचित करने के बदले में सहायता अनुदान मिला करते थे वे बन्द कर दिए जाने चाहिए। इसी तरह कुछ क्षेत्रों के विलयन तथा एकीकरण के कारण बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश व पश्चिमी बंगाल को घाटा पूरा करने के लिए जो अनुदान मिलते थे उन्हें बन्द कर देना चाहिए।

(6) आयोग ने तम्बाकू, दियासलाई और वनस्पति उत्पादन से उत्पादन करों की प्राप्ति के वितरण के सम्बन्ध में भी सुझाव दिए। संविधान के अनुच्छेद 272 के अन्तर्गत उत्पादन करों के विभाजन के सम्बन्ध में संसद् को अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 280 (3) के साथ अनुच्छेद 272 को पढ़कर आयोग ने इस विषय में भी सिफ़ारिश करना अपना कर्तव्य समझा। संविधान सभा की वित्त विषयक विशेषज्ञ समिति ने उत्पादन करों के संघ और राज्य सरकारों के बीच वितरण किया था।

1952 के वित्त आयोग ने सुझाया कि पूर्वोक्त करों की प्राप्ति का 40 प्रतिशत जम्मू और काश्मीर को छोड़कर शेष भाग क और ख के राज्यों में बाँट देना चाहिए। राज्यों के परस्पर हिस्से के बारे में आयोग का सुझाव था कि वह जनसंख्या के आधार पर होना चाहिए।

1957 का आयोग ठीक पाँच साल बाद एक सरकारी विज्ञप्ति से पहली जून, 1956 को नियुक्त हुआ था। द्वितीय वित्त आयोग के लिए जहाँ एक ओर संविधान संशोधन अधिनियम के कारण (क) भाग और (ख) भाग के राज्यों के अन्तर की समस्या न थी वहाँ दूसरी ओर राज्य पुनर्संगठन, वित्तीय करारों और क्षेत्रों में परिवर्तन के कारण कितनी ही चीजों की नए सिरे से परीक्षा करने का प्रश्न था। इनके अतिरिक्त प्रथम आयोग की तुलना में द्वितीय आयोग के कार्य भी अधिक थे। राष्ट्रपति ने आयोग की नियुक्ति करते समय आदेश दिया था कि आयोग संविधान के अनुच्छेद 269 मे विहित कृषि-आय से अतिरिक्त संपत्ति कर के संघ व राज्य सरकार के बीच विभाजन के सिद्धान्त के बारे में सिफ़ारिश करे। राष्ट्रपति ने यह भी आदेश दिया था कि आयोग भारत सरकार द्वारा 15 अगस्त 1947 से राज्य सरकारों को दिए गए ऋण के व्याज की दर व लौटाने की शर्तों में आवश्यक सुधारों की सिफ़ारिश करेगा। बाद में 22 मई 1957 को आयोग को दो और कार्य सौंपे गए यथा रेल भाड़े के कर का विभाजन और उत्पादन शुल्क (अधिक) का विभाजन। राज्य सरकारों को द्वितीय पंचवर्षीय योजना की पूर्ति के लिए अधिक अर्थोपाय देने के हेतु संविधान के अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत भारत सरकार के वित्त मंत्री ने 1957-58 का आय-व्ययक लोक सभा में पेश करते समय रेल भाड़े पर कर लगाने का उल्लेख किया था। राज्यों के बीच विभाजन के लिए कोई पूर्वानुभव नहीं था अतएव इस सम्बन्ध में नियम बनाने का काम आयोग पर छोड़ा गया। बिक्री कर से गड़बड़ हुआ करती थी अतएव राज्य सरकारों की सलाह से यह तय किया गया था कि मिल में बने कपड़े चीनी तथा तम्बाकू पर बिक्री कर हटा कर अतिरिक्त उत्पादन कर लगाया जाए जिसकी प्राप्ति फिर बाद में राज्यों के बीच वितरित कर दी जाए। करों के विभाजन के बारे में हमेशा झगड़ा होता रहा है अतएव कर के राज्यों के बीच विभाजन के सम्बन्ध में सिद्धान्तों के प्रतिपादन का कार्य भी आयोग पर आ पड़ा।

द्वितीय आयोग ने प्रथम आयोग की पद्धति के अनुसार व संघ वित्त व्यवस्था को अबाध रूप से चालू रहने देने के लिए नवम्बर 1956 को अपनी अन्तिम सिफ़ारिशें दीं। आयोग की अन्तिम सिफ़ारिशे सितम्बर 1957 में प्रकाशित हुई थीं जिन्हें नवम्बर 1957 में वित्त मंत्री द्वारा संसद् में प्रस्तुत करने पर राज्य ऋण की सिफ़ारिशों को छोड़कर मंजूर कर लिया गया।

द्वितीय वित्त आयोग की मुख्य सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं :—

(1) आय कर के विभाज्य हिस्से में राज्यों का हिस्सा 55 प्रतिशत से बढ़ा कर 60 प्रतिशत कर दिया जाए जिसमें से 10 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और 10 प्रतिशत संग्रह के आधार पर वितरित किया जाए। प्रथम आयोग ने तत्कालीन 50 प्रतिशत हिस्से को बढ़ाकर 55 प्रतिशत किया था। राज्य सरकारों के पिछले पाँच वर्षों के घाटे के आयव्ययक तथा दूसरी ओर उनके द्वारा पंचवर्षीय योजना की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए आयोग ने इसे 55 से 60 प्रतिशत कर दिया।

(2) राज्यों को दियासलाई, तम्बाकू और वनस्पति के केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों की शुद्ध प्राप्ति का 40 प्रतिशत देने के बजाए और अधिक वस्तुओं के शुल्क की शुद्ध प्राप्ति का 25 प्रतिशत दिया जाए। इन वस्तुओं में चीनी, दियासलाई, तम्बाकू, वनस्पति, कहवा, चाय, काग़ज़ और असारीय निर्गन्ध वनस्पति तेल शामिल होने चाहिए। इनका वितरण कुछ मामूली समंजन के साथ जनसंख्या के आधार पर होना चाहिए।

(3) अनुच्छेद 273 के अन्तर्गत संविधान में विहित दस वर्ष की अवधि अर्थात् 1959-60 के बाद जूट उत्पादन प्रान्तों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान बंद हो जाने चाहिए। तब तक वे उसी मात्रा में दिए जाते रहने चाहिए जितने कि अभी हैं अर्थात् आसाम राज्य को 75 लाख रु०, बिहार को 72.31 लाख रु०, उड़ीसा को 15.00 लाख रु० तथा पश्चिमी बंगाल को 152.69 लाख रुपए मिलते रहें।

(4) संविधान के अनुच्छेद 275(1) के पृथक् उपबंध के अधीन बम्बई, मद्रास और उत्तर-प्रदेश को अनुदानों की आवश्यकता नही। शेष प्रान्तो को भी यह साफ समझ लेना चाहिए कि ये उन्हें अनायास ही नहीं मिल रहे है, वरन् उनकी पंचवर्षीय योजना की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही दिए जा रहे है। इसीलिए उन्हें अपनी कमी पूरा करने के लिए कोई कदम उठा नहीं रखना चाहिए। बिना किसी शर्त के दिए जाने वाली ये अनुदान राशियाँ 1959-60 को समाप्त होने वाले तीन वर्षो में प्रत्येक वर्ष 36.25 करोड़ रुपए व 1960-61 तथा 1961-62 में प्रतिवर्ष 39.50 करोड़ होनी चाहिए।

(5) संघीय राज्य क्षेत्रों (Union Territories) के सम्बन्ध में एक प्रतिशत रक़म रखने के बाद बाकी शुद्ध प्राप्तियों को पहले अचल और अन्य संपत्तियों में, प्रत्येक वर्ष निर्धारित कर ऐसी सम्पत्ति के सकल मूल्य के अनुपात से, बाँटा जाना चाहिए। अचल संपत्ति के हिस्से की रकम प्रत्येक राज्य में स्थित ऐसी संपत्ति के मूल्य के अनुपात से, और अन्य संपत्ति के हिस्से की रक़म प्रत्येक राज्य की जनसख्या के अनुपात में बॉटी जानी चाहिए।

(6) संघीय राज्य क्षेत्रों की प्राप्ति के रूप में शुद्ध संग्रह का $\frac{1}{4}$ प्रतिशत रखने के बाद बाक़ी रक़म राज्यों में उसी अनुपात से बॉट देनी चाहिए जो मोटे तौर पर पिछले वर्षो में प्रत्येक राज्य में स्थित विभिन्न रेलों के हिस्से पर यात्रियों से होने वाली प्राप्तियों के अनुपात पर आधारित हो।

(7) भारत सरकार संघीय राज्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में प्रस्तावित अतिरिक्त शुल्कों की शुद्ध प्राप्तियों की एक प्रतिशत रक़म अपने पास रखे और $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत रकम जम्मू और काश्मीर राज्य को दे जहाँ बिक्री कर नहीं लगाया गया है। बाक़ी रक़म में से पहले 32·5 करोड़ रुपया राज्यो को दे दिया जाए जो वस्तुओं पर बिक्री करों से राज्यो को होने वाली वर्तमान अनुमानित आय के बराबर है। यदि कुछ रक़म बाक़ी बचे तो वह राज्यों में अंशतः खपत और अंशतः जनसंख्या के आधार पर विभाजित कर देनी चाहिए।

(8) विस्थापितों के पुनर्वास के लिए दिए गए ऋणों और व्याज-मुक्त ऋणों को छोड़कर 31 मार्च, 1957 को अवशिष्ट ऋणों को इस प्रकार समेकित किया जाए :—

(क) पहली अप्रैल, 1977 को या उसके बाद चुकाए जाने वाले तीन प्रतिशत या उससे अधिक वार्षिक व्याज वाले सभी ऋणों की बक़ाया रक़म को 31 मार्च, 1987 को चुकाए जाने वाले तीन प्रतिशत वार्षिक व्याज वाले केवल एक ऋण के रूप में समेकित किया जाए।

(ख) 31 मार्च, 1977 या उससे पहले चुकाए जाने वाले तीन प्रतिशत या उससे अधिक व्याज वाले सभी ऋणों की बक़ाया रकम को 31 मार्च 1972 को चुकाए जाने वाले तीन प्रतिशत वार्षिक व्याज वाले केवल एक ही ऋण में समेकित किया जाए।

(ग) पहली अप्रैल 1977 को या उसके बाद चुकाए जाने वाले तीन प्रतिशत से कम वार्षिक व्याज वाले सभी ऋणों की बक़ाया रकम 31 मार्च, 1987 को चुकाए जाने वाले $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत वार्षिक व्याज वाले केवल एक ही ऋण में समेकित किया जाए।

(घ) 31 मार्च, 1972 को या उससे पहले चुकाए जाने वाले तीन प्रतिशत से कम वार्षिक व्याज वाले सभी ऋणों की बक़ाया रकम 31 मार्च, 1972 को चुकाए जाने वाले $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत वार्षिक व्याज वाले केवल एक ही ऋण में समेकित किया जाए।

वित्त आयोग 1961:—तृतीय वित्त आयोग की नियुक्ति 1961 में होनी चाहिए थी पर वित्त आयोग की सिफ़ारिशों व वितरण की व्यवस्था पंचवर्षीय योजना की अवधि के अनुरूप बढ़ाने के लिए इसकी नियुक्ति एक साल पहले की गई। पिछले वित्त आयोगों के विपरीत तृतीय वित्त आयोग की सिफ़ारिशें भी पहली अप्रैल, 1962 से प्रारम्भ हो कर चार वर्ष के लिए ह। तृतीय वित्त आयोग के कर्तव्यों के बारे में यह उल्लेखनीय है कि संविधान के 275 (2) के अन्तर्गत एक नवीन प्रकार के सहायता अनुदान की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार उन उत्पादनों की सूची में भी वृद्धि की है जिन उत्पादन करों की प्राप्ति राज्यों व केन्द्रीय सरकार में बाँटी जाती हैं। 1957 के वित्त आयोग ने केवल नौ वस्तुओं के उत्पादन शुल्कों का ही बँटवारा सुझाया था, पर तृतीय वित्त आयोग ने इसमें 26 और उत्पादन कर शामिल किए हैं।

वित्त आयोग 1961 की मुख्य सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं :

(अ)—संपत्ति कर

1. प्रत्येक वित्तीय वर्ष में कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य संपत्ति से प्राप्त नियत संपत्ति कर का एक प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा संघीय क्षेत्रों के लिए रख लेना चाहिए।
2. फिर बाकी प्राप्तियों को अचल और चल हिस्सों में, प्रत्येक वर्ष में निर्धारित कर ऐसी संपत्ति के सकल मूल्य के अनुपात में बाँट देना चाहिए।
3. अचल सपत्ति के हिस्से की रक़म फिर राज्य सरकारों के बीच राज्य में स्थित ऐसी संपत्ति के मूल्य के अनुपात में बाँटी जानी चाहिए।

(ब)—रेल भाड़े पर कर

रेल भाड़े पर जो कर पहले लगता था वह 1961 में संसद् के एक अधिनियम के अनुसार बंद कर दिया गया। फिर भी रेल अभिसमय समिति 1961 ने केन्द्रीय सामान्य राजस्व को 1961-66 काल के लिए 12.5 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष देने की सिफ़ारिश की थी। वित्त आयोग ने इस रक़म को राज्यों के बीच वितरण करने की सिफ़ारिश की है।

(स)—आयकर

किसी वित्तीय वर्ष में कृषि आय को छोड़ कर बाक़ी आय पर प्राप्त कर, (जिसमें संघीय क्षेत्रों से प्राप्त आय कर अथवा संघीय आयों से प्राप्त आय कर वर्ज्य हैं) का $66\frac{2}{3}$ भाग राज्य सरकारों के बीच वितरित किया जाना चाहिए। आय-कर की शुद्ध प्राप्तियों का $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत संघीय क्षेत्रों से प्राप्त आय-कर माना जाना चाहिए।

(द)—केन्द्रीय उत्पादन कर

पहली अप्रैल, 1962 से, अनुसूचित वस्तुओं पर प्राप्त उत्पादन शुल्क का 20 प्रतिशत भारत की समेकित निधि से राज्यों को दिया जाना चाहिए। अनुसूचित वस्तुएँ इस प्रकार हैं: चीनी, काफी, चाय, तम्बाकू, मिट्टी का तेल, परिष्कृत डीज़ल तेल और वाष्पशील तेल (Refined diesel oils and vaporising oils) डीज़ल तेल, भट्टी तेल (furnace oil), वामर और बिटूमन (Asphalt and Bituman), रंजक (pigment), रंग (colours), रोग़न (paints,) तामचीनी (enamels), वार्निश, काले और सेलूलोज़ प्रलाक्षारस (Blacks and cellulose liquors), साबुन, टायर और ट्यूब, कागज़, रेयन, संश्लिष्ट तंतु और सूत (synthetic fibre and yarn), सूती कपड़े, ऊनी कपड़े, रेयन या कृत्रिम रेश्मी कपड़े, सीमेंट, कच्चा लोहा (pig iron), इस्पात सीलें (steel ingots), एल्यूमिनियम, टीन की पट्टी (tin plate), टीन की चादरें (tin sheets including tin taggers, cutting of such plates, sheets or taggers), अंतर्दहन इंजन (internal combustion engines), बिजली की मोटरें और उनके पुर्ज़े (electric motors and parts thereof), बिजली की बैटरियाँ और उनके पुर्ज़े, बिजली के बल्ब, प्रतिदीप्त प्रकाशन बल्ब (fluorescent lighting bulbs) बिजली के पंखे (electric fans), मोटर गाड़ियाँ (Motor vehicles), साइकिलें, मोटर साइकिलों के अतिरिक्त अन्य साइकिलों के पुर्ज़े, जूते, दियासलाइयाँ तथा सीनेमेटोग्राफ़ एक्सपोज्ड् फिल्में।

(ई)—अतिरिक्त उत्पादन कर

पहली अप्रैल, 1962 से बिक्री कर को हटाकर, सूती कपड़े, रेयन, बनावटी सिल्क, सिल्क के कपड़े, ऊनी कपड़े तथा चीनी व तम्बाकू पर लगाए जाने वाले अधिक उत्पादन कर की शुद्ध प्राप्तियों में से:—

(1) संघीय क्षेत्रों से हुई प्राप्तियाँ मानकर संघीय क्षेत्रों के लिए एक प्रतिशत निकाल लेना चाहिए।

(2) जम्मू तथा काश्मीर के लिए $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत निकाल लेना चाहिए ।

(3) बाक़ी का निर्धारित (जिसके बारे में आगे बतलाया गया है) अनुपात में राज्य सरकारों को दिया जाना चाहिए ।

(ए)—सहायता अनुदान

वित्त आयोग ने संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के अन्तर्गत पहली अप्रैल, 1962 से अगले चार वर्षो में प्रत्येक राज्य के लिए कितनी रक़म दी जानी चाहिए यह निर्धारित किया है । इसी प्रकार उसने कुछ और सहायता अनुदान भी (राज्यों में संचार विकास) के लिए निर्धारित किए हैं ।

5. विद्यमान संघीय वित्त व्यवस्था

जैसा कि होना आवश्यक है विद्यमान राज्य और संघ सरकार के बीच वितरण तृतीय आयोग की सिफ़ारिशों के अनुरूप हैं । इस व्यवस्था में राज्यों और संघ सरकार को परस्पर हिस्से इस प्रकार मिलते हैं ।

(1) आयकर:—कुल आयकर प्राप्ति का $66\frac{2}{3}$ प्रतिशत राज्यों में बाँटा जाता है और $33\frac{1}{3}$ प्रतिशत संघ सरकार के पास रहता है । विभाज्य ($66\frac{2}{3}$ प्रतिशत) का विभिन्न राज्यों में वितरण इस प्रकार है :

सारिणी 4

आयकर का राज्यों में वितरण

राज्य	विभाज्य अंश का प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	7·71
आसाम	2·44
बिहार	9·33
गुजरात	4·78
जम्मू तथा कश्मीर	0·70
केरल	3·55
मध्य प्रदेश	6·41
मद्रास	8·13
महाराष्ट्र	13·41
मैसूर	5·13
उड़ीसा	3·44
पंजाब	4·49
राजस्थान	3·97
उ० प्रदेश	14·42
प० बंगाल	12·09

(2) केन्द्रीय उत्पादन शुल्क:—केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों की कुल प्राप्ति का 25 प्रतिशत राज्यों में बाँटा जाता है। शेष भारत सरकार के पास रहता है। राज्यों के बीच 25 प्रतिशत का वितरण इस प्रकार होता है :

सारिणी 5

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क का राज्यों में वितरण

राज्य	विभाज्य अंश का प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	8·23
आसाम	4·73
बिहार	11·46
गुजरात	6·45
जम्मू तथा कश्मीर	2·02
केरल	5·46
मध्य प्रदेश	8·46
मद्रास	6·08
महाराष्ट्र	5·73
मैसूर	5·82
उड़ीसा	7·07
पंजाब	6·71
राजस्थान	5·93
उ० प्रदेश	10·68
प० बंगाल	5·07

(3) अनुच्छेद 205 (1) के अधीन सहायता अनुदान:—तृतीय वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के अनसार राजस्व की पूर्ति के लिए विभिन्न राज्यों को सहायता अनुदान प्रतिवर्ष निम्नलिखित मात्रा में दिए जाते हैं :

सारिणी 6

राज्यों को दिए गए सहायता अनुदान

राज्य	लाख रुपए
आन्ध्र प्रदेश	1,200
आसाम	900
बिहार	800
गुजरात	950
जम्मू तथा कश्मीर	325
केरल	850
मध्य प्रदेश	625
मद्रास	800
मैसूर	775
उड़ीसा	1,600
पंजाब	275
राजस्थान	875
उ० प्रदेश	200
प० बंगाल	850

यातायात के सुधार के लिए कुछ राज्यों को प्रतिवर्ष निम्नलिखित सहायता अनुदान देने की भी व्यवस्था है :

राज्य	लाख रुपए
आन्ध्र प्रदेश	50
आसाम	75
बिहार	75
गुजरात	100
जम्मू तथा कश्मीर	50
केरल	75
मध्य प्रदेश	175
मैसूर	50
उड़ीसा	175
राजस्थान	75

(4) संपत्तिशुल्क (Estate Duty) :—वित्तीय वर्ष की कुल निवल प्राप्ति का एक प्रतिशत संघ क्षेत्रों के बीच वितरण के लिए पहले अलग कर लिया जाता है। शेष को फिर चल और अचल संपत्ति की प्राप्तियों के अनुसार अलग-अलग कर लिया जाता है। अचल संपत्ति से प्राप्त शुल्कों को राज्यों को निम्नलिखित अनुपात में बाँटा जाता है :

सारिणी 7

संपत्ति शुल्क का राज्यों में वितरण

राज्य	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	8·34
आसाम	2·75
बिहार	10·78
गुजरात	4·78
जम्मू तथा कश्मीर	0·83
केरल	3·92
मध्य प्रदेश	7·51
मद्रास	7·80
महाराष्ट्र	9·16
मैसूर	5·46
उड़ीसा	4·08
पंजाब	4·71
राजस्थान	4·67
उ० प्रदेश	17·10
प० बंगाल	8·11

(5) अनुच्छेद 282 के अधीनः—रेल भाड़े के बजाय रेलों द्वारा केन्द्रीय सरकार को अगले पाँच वर्षों में प्रतिवर्ष दिए गए 12.5 करोड़ रुपए का राज्यों के बीच वितरण इस प्रकार होता है :

सारिणी 8

रेल्वे द्वारा दी गई राशि का राज्यों के बीच वितरण

राज्य	करोड़ रुपए
आन्ध्र प्रदेश	1·11
आसाम	0·34
बिहार	1·17
गुजरात	0·68
केरल	0·23
मध्य प्रदेश	1·04
मद्रास	0·81
मैसूर	0·56
महाराष्ट्र	1·35
उड़ीसा	0·32
पंजाब	1·01
राजस्थान	0·85
उ० प्रदेश	2·34
प० बंगाल	0·79

(6) अतिरिक्त उत्पादन शुल्कः—राज्यों के बिक्री कर को हटाकर केन्द्रीय अतिरिक्त उत्पादन शुल्क की प्राप्ति राज्यों में स्तम्भ (2) में दिए हुए अनुपात में बाँटी जाती है।

बची हुई राशि का वितरण पुनः स्तम्भ (3) में दिए हुए प्रतिशत के अनुसार होता है।

सारिणी 9

अतिरिक्त उत्पादन शुल्क का राज्यों में वितरण

राज्य	लाख रुपए	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	235·24	7·75
आसाम	85·08	2·50
बिहार	130·16	10·00
गुजरात	323·45	5·40
केरल	95·08	4·25
मध्य प्रदेश	115·17	7·00
मद्रास	285·34	9·00
महाराष्ट्र	637·77	10·60
मैसूर	100·10	5·25
उड़ीसा	85·10	4·50
पंजाब	175·19	5·25
राजस्थान	90·10	4·00
उ० प्रदेश	575·81	15·50
प० बंगाल	280·41	9·00

6. संघीय वित्त व्यवस्था की प्रक्रिया:—संघीय वित्त व्यवस्था के लागू होने की चार रीतियाँ है :

(1) राष्ट्रपति की आज्ञा द्वारा,

(2) संसद् द्वारा विहित विधि के अनुसार, पर ऐसी विधि निर्माण होने तक राष्ट्रपति की आज्ञा द्वारा,

(3) संसद् द्वारा विहित विधि के अनुसार, व

(4) सरकारी आज्ञप्ति द्वारा।

अनुच्छेद 271 तथा 273 में क्रमशः बतलाए आय-कर के हिस्से तथा पटसन तथा पटसन से बनी वस्तुओं के बदले में निर्यात कर के हिस्से का वितरण राष्ट्रपति की आज्ञा द्वारा किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 269, 275(1) तथा 272 के अन्तर्गत रेल भाड़ा कर, संपत्ति कर, राज्यों को सहायता अनुदान तथा संघ उत्पादन करों का वितरण संसद् द्वारा विशेष कानून बना कर लागू किया जाता है। राज्यों को सहायता अनुदान के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि संविधान के निर्माणकर्ताओं ने यह ध्यान में रखते हुए कि जब संसद्-सत्र न हो रहा हो तब भी राज्यों को हानि न पहुँचे, यह व्यवस्था की है कि संसद् द्वारा विधि निर्माण होने तक सहायता अनुदान राष्ट्रपति की आज्ञा द्वारा लागू किए जाएँ। अन्य सिफ़ारिशें, जैसे ऋणों का समेकन, ब्याज की दर का निर्धारण करना आदि सरकारी आज्ञप्ति द्वारा लागू किए जाते हैं।

राष्ट्रपति की आज्ञा प्रायः वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के पेश होते ही "संविधान (कर वितरण) आज्ञा" [Constitution (Distribution of Taxes) Order] के रूप में जारी कर दी जाती है पर संसद् द्वारा अपेक्षित विधि संसद् के तुरन्त बाद में होने वाले अधिवेशन में ही अधिनियम के रूप में पास हो जाती है। राष्ट्रपति की आज्ञा की वही मान्यता होती है जो संसद् द्वारा पास किए गए अधिनियम की। राष्ट्रपति की आज्ञा में इस के स्वरूप का विशेष उल्लेख होता है।

वास्तविक वितरण इस प्रकार होता है :—

(1) संविधान के अनुच्छेद 275(1) में विहित सहायता अनुदान तिमाही आधार पर अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर और जनवरी में पेशगी दिए जाते हैं।

(2) आय-कर में राज्यों का अंश पहले इस प्रकार दिया जाता था : बजट में शामिल रक़म का एक चौथाई भाग 15 अक्टूबर को और बाक़ी रक़म, आय-कर के संशोधित अनुमानों के आधार पर 15 मार्च को। अब सारे वर्ष के हिस्से का दस प्रतिशत जुलाई में, 20 प्रतिशत अक्टूबर में, 25 प्रतिशत जनवरी में और बाक़ी हिस्सा संशोधित अनुमानों के आधारों पर मार्च में दिया जाता है।

(3) आधारभूत उत्पादन शुल्कों का हिस्सा पहले हर तिमाही के लिए तिमाही की समाप्ति पर दिया जाता था, अब आधारभूत उत्पादन शुल्कों और उत्पादन शुल्कों का अंश मई के महीने से शुरू होकर 11 मासिक किस्तोंमें

दिया जाता है। पहली दस किस्तों में से प्रत्येक किस्त वर्ष के बजट अनुमानों में दिए गए राज्य के हिस्से के $\frac{1}{12}$ के बराबर होती है। चुकाई गई रक़म को वर्ष के संशोधित अनुमानों में दी गई रक़म से घटाने पर बचने वाली रक़म आखिरी किस्त में दी जाती है।

(4) रेल यात्री किराए पर कर मई के महीने से शुरू होकर 11 माहवारी किस्तों में अदा किया जाता है। पहली दस किस्तों में से प्रत्येक उस वर्ष के बजट अनुमानों में दिखलाए गए राज्य के हिस्से के $\frac{1}{12}$ के बराबर होती है। वर्ष के संशोधित अनुमानों में दिए गए राज्य के हिस्से की रक़म में से वह रक़म घटाए जाने पर बाक़ी बचने वाली रक़म ग्यारहवी किस्त में दी जाती है।

(5) संपत्ति शुल्क की प्राप्तियों का वर्ष में दो बार अक्टूबर तथा मार्च में आधे-आधे हिस्सों में राज्यों के ीच वितरण होता है।

अनुमान के लिए राशियाँ नियंत्रक तथा महालेखापाल की सलाह से निर्धारित की जाती हैं। आय-कर के हिस्से, पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात कर के बदले में दिए अनुदान आदि राज्य को मिलने वाले सभी हिस्सों के अनुमान केन्द्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों को सूचित किए जाते हैं ताकि वे राज्य सरकारें अपने आयव्ययक बनाते समय इन राशियों को अपेक्षित प्राप्तियों के रूप में शामिल कर लें। संविधान में जो व्यवस्था है कि आय-कर की प्राप्ति भारत की समेकित निधि का अंग न बनेगी, उसमें प्रक्रिया यह है कि खज़ाने में जमा करते समय राशि तो अवश्य भारत की समेकित निधि के खाते में जमा की जाती है पर आयव्ययक में उसे भारत की समेकित निधि में प्राप्त होने वाली राशि के रूप में शामिल नहीं किया जाता। आयव्ययक में इस मद्द पर केन्द्रीय हिस्से की शुद्ध राशि ही भारत की समेकित राशि में होने वाली प्राप्ति के रूप में दिखलाई जाती है।

o o o

अध्याय 9

रेल वित्त व्यवस्था

रेल यातायात भारतीय सरकार का एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है यह तो सभी जानते होंगे पर कदाचित् यह सभी को ज्ञात न होगा कि रेल व्यवसाय वित्तीय दृष्टि से भी सरकारी वित्त व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भाग रखता है। रेलों से सरकार को प्रति-वष हुई प्राप्ति—जिसे "सामान्य राजस्व का लाभांश" (Dividend to the General Revenue) कहते ह—इस महत्त्व को सिद्ध करती है।

सभी आय स्रोतों से रेल से प्राप्ति सब से अधिक है। व्यय की दृष्टि से भी रेल व्यय रक्षा व्यय को छोड़ कर और मंत्रालयों से कहीं अधिक है। रेलों की आय पांच, छह बड़े राज्यों की सम्मिलित आय के वराबर है। इनके अतिरिक्त रेल वित्त की अपनी कुछ विचित्रताएँ हैं जो उसे एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय बना देती हैं। उदाहरणार्थ

(1) रेलों का रिज़र्व बैंक से अपना सम्बन्ध* है। डाक तार आदि भी अन्य व्यापारी विभाग हैं पर उनका रिज़र्व बैंक से अपना अलग सम्बन्ध नहीं है।

(2) रेलों के आयव्ययक का निर्माण तथा संसद् में उपस्थापन अलग से किया जाता है।

(3) रेलों की वित्तीय व्यवस्था इतनी परिवर्तनशील है कि उसके विचारार्थ प्रति पाँचव वष एक संसदीय समिति नियुक्त करनी पड़ती है।

1. रेल वित्त-व्यवस्था का इतिहास

रेल वित्त व्यवस्था का इतिहास सन् 1924 से प्रारम्भ होता है जब केन्द्रीय एसेम्बली ने एक संकल्प (Resolution) से रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग रखने की सिफ़ारिश की। रेल वित्त पर जाँच के लिए पहले भी एक समिति व विशेषज्ञ नियुक्त हो चुके थे पर उनकी सिफ़ारिशों को अमल में न लाया गया था। 1859 में प्राइवेट कम्पनियों को रेल लाइनें निर्माण करने का अधिकार दे कर पुन: 1862 में उससे यह अधिकार छीन लेने के प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया था कि रेलों की अबाध प्रगति के लिए पर्याप्त व स्वतन्त्र वित्त होना चाहिए। 1903 में राबर्टसन महोदय नियुक्त हुए थे जिन्होंने सिफ़ारिश की कि एक रेल निधि निर्माण की जाए जिसमें प्रारम्भ में 15 करोड़ रखे जाएँ व बाद में रेल व्यवसाय से जितना लाभ हो उसमें संचित किया जाए। 1907 में इसी प्रश्न पर विचार करने के लिए "मैके समिति" नियुक्त हुई थी जिसने सिफ़ारिश की कि जहाँ तक हो सके रेलों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। पर मान्यता मिलने का सौभाग्य "एक्वर्थ समिति" को था जिसने 1920 में पृथक्करण के लिए

---

*1935 के अधिनियम में तो रेलों के लिए एक अलग निधि (समेकित निधि के बाहर) भी बनाने का विचार था (देखिए, भारत सरकार अधिनियम 1935 धारा 186(1)। पर अधिनियम की इस धारा को कार्यान्वित न किए जाने के कारण अलग निधि निर्माण न हो सकी। फिर भी रिज़र्व बैंक अब भी रेल वित्त का अलग लेखा रखता है।

सिफ़ारिश की। पृथक्करण के लिए एक्वर्थ समिति ने तीन कारण दिए थे। (अ) इससे भारत सरकार के सामान्य वित्त में जो अनिश्चितता आती है वह दूर हो जाएगी। (ब) सामान्य वित्त से मिले रहने के कारण प्रमुख रेलों को अपने पूँजी विभाग के लिए पर्याप्त धन नहीं मिलता, पृथक्करण से मिलने लगेगा और (स) सरकार को रेल विकास की अलग से चिन्ता न करनी पड़ेगी। एक्वर्थ समिति ने और भी सिफ़ारिशें की थीं जिनमें मुख्य ये हैं—(क) रेलों का भिन्न आयव्ययक होना चाहिए (ख) रेलों की अलग लेखा पद्धति होनी चाहिए। एक्वर्थ समिति के प्रस्ताव संसद् में 20 सितम्बर 1924 को अनुमति के लिए लाए गए थे जो 1924 के* रेल अभिसमय के नाम से प्रख्यात हैं।

1924 के अभिसमय से रेल वित्त का जो स्वतन्त्र अस्तित्व प्रारम्भ हुआ उसकी विशेषताएँ इस प्रकार थीं।

1. 1 अप्रैल 1924 से रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग कर दिया गया जिसके बदले में यह व्यवस्था की गयी कि सामान्य वित्त रेल वित्त से प्रतिवर्ष एक निश्चित राशि अंशदान के रूप में प्राप्त करेगा। यह अंशदान रेलों की निवल प्राप्ति पर पहला भार हुआ करता था। लगाई हुई पूँजी (Capital at Charge) पर भार अंशदान से पहले दिया जा सकता है। अंशदान निर्धारित करते समय व्याजदेय पूँजी देने के बाद अतिरिक्त लाभ का पाँचवाँ हिस्सा भी शामिल किया जाता था।

2. उपरोक्त रीति से सामान्य वित्त का अंशदान देने के बाद यदि वितरण के लिए लाभ बचा रहता तो एक संचित निधि में जमा कर दिया जाता। यदि किसी वर्ष इस प्रकार का संचय तीन करोड़ से अधिक हो तो उस अतिरिक्त धन का दो तृतीयाँश ही संचित निधि में जमा कराया जाता, शेष सामान्य वित्त को दिया जाता। संचित राशि का उपयोग सामान्य वित्त को दिए जाने वाले अंशदान के लिए, मूल्य ह्रास निधि (Balance of Depreciation) से बकाया के लिए व किसी हानि के बट्टे खाते डालने के लिए किया जाता था।

1924 के अभिसमय निश्चय की व्यवस्था 1943 तक चलती रही जब 1929 की आर्थिक मन्दी (Economic Depression) के अनुभव और द्वितीय महायुद्ध के कारण अभिसमय की आवृत्ति करनी पड़ी। 1929 के मंदी काल में यह अनुभव किया गया कि रेलों के स्वतन्त्र वित्त के कारण काफ़ी अपव्ययता आ गई थी। इस अपव्ययता को रोकने के लिए तीन समितियों की नियुक्ति की गई थी—(1) 1931 की रिट्रेंच्चमेण्ट कमेटी (2) पोप कमेटी व (3) वेजवुड कमेटी। 1931-32 के करीब यह परिस्थिति आ गई थी कि साधारण वित्त को दिए जाने वाला अंशदान बिल्कुल बन्द हो गया था। उल्टे रेल वित्त के लिए एक 'भुगतान स्थगन' (Moratorium) घोषित करना पड़ा था। इन समितियों की सिफ़ारिशों के परिणाम स्वरूप रेल व्यवसाय कुछ सुधर ही रहा था कि 1939 में द्वितीय महायुद्ध के शुरू हो जाने से रेलों के वित्त की फिर समस्या उत्पन्न हुई। रेलों

*1924 के अभिसमय के लिए "रेल वित्त से साधारण वित्त के पृथक्करण का संकल्प" 1924 देखिए जो परिशिष्ट 7 में दिया हुआ है।

के पास इतना धन न रहा कि वे सामान्य वित्त को कुछ अंशदान दे सकें। युद्ध काल में कितनी ही बार "भुगतान-स्थगन" जारी करना पड़ा था। अतएव 1943 में एसेम्बली ने 1924 की व्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन जारी किए।

(1) अप्रैल 1943 से, 1924 के अभिसमय के उस आदेश का जिसके अन्तर्गत रेलों के अतिरेक लाभ का अंश साधारण वित्त को दिया जाता था स्थगित कर दिया गया।

(2) व्यापारिक लाइनों से हुए लाभ को मूल्य ह्रास निधि की क्षति पूर्ति के लिए प्रयोग किया जाने लगा।

(3) मूल्य ह्रास निधि में दे चुकने के बाद 25 प्रतिशत पुनः रेलवे आरक्षित निधि को और 75 प्रतिशत सामान्य आयव्ययक को दिया जाने लगा। किन्तु यह भी प्रबन्ध था कि यदि युद्धावश्यक लाइनों पर नुकसान हो तो वह क्षतिपूर्ति सामान्य वित्त से की जानी चाहिए।

(4) युद्धोत्तर काल में नवीन अभिसमय बनने तक व्यापारिक लाइनों से हुए लाभ का रेल व सामान्य वित्त में प्रतिवर्ष दोनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए परस्पर वितरण किया जाना चाहिए।

1943 के संशोधन का उद्देश्य सामान्य वित्त को स्थायित्व देना तथा रेल वित्त व्यवस्था में लोच लाना था पर 1949 तक यह प्रगट हो गया कि प्रचलित व्यवस्था से वे उद्देश्यपूर्ण नहीं हो रहे थे। सामान्य वित्त को प्राप्तव्य अंशदान रेलों की आय के अनुपात में होने के कारण उसमें एक तरह की अनिश्चितता आ गई थी। दूसरी ओर रेलों में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं थी जिससे कि वे कष्ट के दिनों के लिए अपने समृद्धि के दिनों के लाभांशों को अलग कर रखती। 1924-25 से 1945-49 के बीच रेलों के अतिरेक लाभ (जो करीब 269 करोड़ रुपए था) का एक बड़ा हिस्सा (222 करोड़ रुपए) सामान्य वित्त को दिया गया था और रेलों के पास उनकी विभिन्न संचित राशियों में केवल 47 करोड़ रुपए थे। एक मत है कि यदि इस काल में रेल विभाग को अन्य व्यापारिक विभागों की तरह बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से कार्य करने दिया जाता तो आय कर देने के बाद उसके पास 76 करोड़ रुपए बचते। 1931-32 से 1936-37 के बीच जब रेलों को अपने व्यवसाय से कोई लाभ नहीं हो रहा था, उस समय भी रेलों को अपनी मूल्य ह्रास निधि से 20 करोड़ रुपए सामान्य वित्त को देने पड़े थे। अतएव 1949 में रेल वित्त व्यवस्था में पुनः परिवर्तन करना पड़ा। इसी बीच 1947 में देश स्वतन्त्र हो गया व स्वतन्त्रता के साथ राष्ट्रीय विकास के दृष्टिकोण के कारण लोगों को रेलों के वित्त नियम भी बहुत प्रतिगामी मालूम होने लगे। विकास के लिए किया गया व्यय 1943 की व्यवस्था के अन्तर्गत पूँजी व्यय माना जाता था जिससे रेलों के व्याज दायित्व में वृद्धि होती जा रही थी। 1947 के देश विभाजन से भी रेलों की वित्तीय व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा हो गई थी। देश विभाजन से रेलों की आय में तो कमी हो गई थी पर व्यय में वृद्धि। साथ ही 1924 के रेल अभिसमय में हर पाँचवें साल व्यवस्था के पुनरीक्षण का प्रबन्ध था ही अतएव संसद् के सदस्यों के आग्रह पर 1949 में श्री मावलंकर की अध्यक्षता में रेलवे अभिसमय समिति (Railway Convention Committee) की पुनः स्थापना हुई जिसकी सिफ़ारिशें संसद् ने स्वीकार कीं और परिणामस्वरूप 1949 की नवीन वित्त व्यवस्था लागू की गई।

1949 की वित्त व्यवस्था की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

(1) इससे सामान्य वित्त से लेकर नियोजित की गई रेल पूँजी पर प्रतिवर्ष एक निश्चित दर पर अंशदान दिया जाने लगा। यह अंशदान चार प्रतिशत था। अलाभप्रद पर सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लाइनों (Strategic Lines) में नियुक्त पूँजी पर अंशदान देने की ज़रूरत न समझी गई। यह भी तय किया गया कि पाँच वर्ष बाद रेलों की राजस्व प्राप्तियों को तथा सरकार की औसत उधारी दर (Average Borrowing Rate) व अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अंशदान राशि का पाँच साल बाद संसद् द्वारा पुनरीक्षण होना चाहिए।

(2) रेलवे आरक्षित निधि (Railway Reserve Fund) नाम की जो निक्षेप निधि थी उसका नाम बदलकर रेलवे राजस्व आरक्षित निधि (Railway Revenue Reserve Fund) कर दिया गया। इस नई निधि का उद्देश्य था कि यदि सामान्य राजस्व को दी जाने वाली निश्चित राशि में कमी पड़ रही हो तो उसके लिए इस निधि का उपयोग किया जाए और इसी तरह अन्य किसी प्रकार से रेल संचालन में कमी हो तो उसकी भी पूर्ति की जाए।

(3) एक और नई निधि का निर्माण किया गया जिसका नाम था विकास निधि। विकास निधि का उद्देश्य निम्नलिखित व्ययों के लिए धन जुटाना था :

(अ) यात्री सुविधाएँ,
(ब) मज़दूर कल्याण,
(स) रेल परियोजनाएँ, जो आवश्यक तो हैं पर अलाभप्रद हैं।

(4) मूल्य ह्रास आरक्षित निधि जारी रखी गई पर इसमें रखी जाने वाली राशियों का आधार बदल दिया गया। पहले के क्लिष्ट आधार अर्थात् नाशोन्मुख परिसम्पत्तियों की आयु की जगह पर यह कहा गया कि अगले पाँच वर्षों के लिए निधि में 15 करोड़ रुपए सारी रेलवे के लिए डाले जाएँ जो रेल के संचालन व्यय से लिए जाएँगे।

(5) निवल (net) प्राप्तियों से सारे अंशदानों व व्ययों के बाद यदि फिर भी कुछ बच रहता है तो उसका पुनः राजस्व आरक्षित निधि, विकास निधि और मूल्य ह्रास आरक्षित निधि में बँटवारा होना चाहिए ताकि इन निधियों को समृद्ध किया जा सके।

(6) रेलों के लिए एक स्थाई वित्त समिति (Railway Standing Finance Committee) और एक रेलवे सलाहकार समिति (Railway Advisory Committee) की स्थापना की गई जो सदन द्वारा रेल अनुदानों पर विचार करने के पूर्व रेलों के प्राक्कलन की जाँच करती थी।

(7) रेल आयव्ययक सामान्य आयव्ययक के कुछ दिन पहले पेश किया जाने लगा और उस पर रेल मंत्री रेल लेखों तथा रेलों के संचालन परिणामों पर अलग से एक वक्तव्य देने लगे।

1949 की व्यवस्था 1954 तक चलती रही जब 1949 के अभिसमय में विहित नियम के कारण व रेलों में अनावश्यक तौर पर अधिक पूँजी विनियोजित होने के अनुभव के कारण रेल व्यवस्था फिर परिवर्तित की गई। इसी समय यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मूल्य ह्रास आरक्षित निधि और विकास निधि के बीच अवशिष्ट लाभ का वितरण अनुपयुक्त है। यह भी भय होने लगा कि विकास योजनाओं की लाइनों पर उनके लाभ प्रवण होने के पहले ही अंशदान देना पड़ेगा। अतएव 1954 में श्री अनन्तशयनम् अय्यंगर के तत्त्वावधान में पुनः एक संसदीय रेल अभिसमय समिति की स्थापना की गई। संसदीय समिति की सिफ़ारिशों को संसद् ने 15 दिसम्बर 1954 को स्वीकार कर लिया जो 1954 के अभिसमय के नाम से प्रख्यात है। 1959 में पुनः रेलवे अभिसमय समिति की स्थापना होने वाली थी पर संसद् ने अप्रैल तथा मई 1959 में दो संकल्प पास कर 1954 की अभिसमय-व्यवस्था की अवधि को एक साल और बढ़ा दिया। प्रस्तुत रेल वित्त व्यवस्था 1961 के अभिसमय के अनुरूप है जो 1959 में नियुक्त रेल अभिसमय समिति की सिफ़ारिशों पर बना था।

2. रेलों की विद्यमान वित्त-व्यवस्था

रेलों के आय स्रोत निम्नलिखित हैं :—

(1) यात्री यातायात से आमदनी :

(क) ऊँचे दर्जे से

(ख) तीसरे दर्जे से

(2) पार्सल आदि से (Other coaching earnings)

(3) माल यातायात से (Good Earnings)

(4) अन्य फुटकर आमदनी (Other Sundry Earnings)

रेलों की अपनी कोई पूँजी नहीं होती। पूँजी की व्यवस्था सामान्य आयव्ययक में की जाती है।

इन आय स्रोतों से जो प्राप्ति होती है उनमें से पहले रेलों के परिचालन व्यय को अलग कर लिया जाता है। परिचालन व्यय के अंतर्गत निम्नलिखित हैं।

(1) प्रशासन

(2) मरम्मत और अनुरक्षण

(3) परिचालक कर्मचारी (Operating Staff)

(4) परिचालन ईंधन

(5) परिचालन (कर्मचारियों और ईंधन को छोड़कर)

(6) विविध व्यय (जैसे रेल दुर्घटना से संबंधित दावों की क्षतिपूर्ति, पेंशन प्रकार आदि) तथा

(7) मज़दूर-कल्याण

य साधारण परिचालन व्यय कहलाते हैं । इनके अतिरिक्त मूल्य ह्रास आरक्षित निधि में डाली जाने वाली राशियाँ व चालित लाइनों (Worked lines) के प्रतिशोधन भी सकल परिचालन व्यय में शामिल होते हैं ।

सकल परिचालन व्यय निकालने के बाद जो राशि शेष रहती है उसमें से सामान्य राजस्व को अंशदान दिया* जाता है । अंशदान 1960 के अभिसयम के अनुसार 1963-64 तक विनियोजित पूँजी पर $4\frac{1}{4}$ प्रतिशत की दर से दिया जाता था। पर 1963-64 के आयव्ययक से तृतीय पंचवर्षीय योजना के शेष वर्षों के लिए $4\frac{1}{2}$ प्रतिशत की दर से देना निश्चित हुआ है। अंशदान का उद्देश्य सामान्य वित्त को उस वित्त से रेलों में लगाई गई पूँजी पर व्याज देना है । 1949 से पहले जैसा कि विगत इतिहास के अन्तर्गत पढ़ा होगा अंशदान में रेलों के लाभ का हिस्सा भी सामान्य राजस्व को दिया जाता था। अब रेलों के लाभ का हिस्सा अलग से नही दिया जाता पर अंशदान की दर निश्चित करते समय रेल व्यवसाय की कुल लाभप्रदता का ध्यान अवश्य रखा जाता है। अर्थात् व्याज इस पर ही अवलंबित नहीं होता कि सरकार अन्य व्यवसायों से क्या व्याज लेती है वरन् इस बात पर भी अवलंबित होता है कि विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए रेलों की लाभप्रदता किस स्तर पर है। साथ ही रेलों के पूँजी विनियोजन के स्वरूप को भी ध्यान में रखना पड़ता है। 1949 तथा 1955 में नियुक्त दोनों रेल अभिसमय समितियों का यह मत था कि रेलों में पूँजी आवश्यकता से अधिक नियुक्त हुई है । चूँकि यह विनियोजन अधिकतर भारत सरकार के ही आदेश से किया गया था इसलिए यह वांछित न समझा गया कि रेल वित्त से इस अयुक्तिसंगत पूँजी विनियोग के लिए व्याज वसूल किया जाए। अतएव 1954 के अभिसमय निश्चय में इन अतिरेक पूँजी विनियोजन के लिए विशेष सहूलियतें थीं। इसी प्रकार दो अन्य प्रकार के विनियोजन के लिए सहूलियतें भी थीं जैसे नई लाइनें और रक्षा की दृष्टि से निर्मित लाइनें। नई लाइनों के निर्माण होते ही उनसे वह प्राप्ति नहीं होती जो अपेक्षित है। 1954 के अभिसमय ने यह सिफ़ारिश की थी कि उनमें नियोजित पूँजी पर पाँच साल के लिए कोई व्याज न दिया जाए। रक्षा के लिए निर्मित लाइनों पर भी 1961 तक तुरन्त व्याज न देने की व्यवस्था थी। 1960 के अभिसमय निश्चय से जो आजकल लागू है रक्षा के लिए निर्मित लाइनों पर न केवल व्याज न देने की छूट है वरन् यदि उन पर कोई घाटा होता हो तो वह भी केन्द्रीय सामान्य राजस्व को भुगतना पड़ता है। इसी प्रकार उत्तर-पूर्वी सीमा रेल के बारे में सुरक्षा के अतिरिक्त हिस्से पर अब उस रेल को अपनी पूँजी पर सरकार के सामान्य उधारी की दर पर केन्द्रीय राजस्व को व्याज देना पडता है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सामान्य राजस्व को दिया जाने वाला अंशदान निम्न प्रकार से तय किया जाता है ।

मान लीजिए 1963-64 के लिए सामान्य राजस्व को दिया जाने वाला अंशदान तय करना हो—तो पहले 1962-63 के अंत तक रेलों पर कुल कितनी पूँजी नियोजित

*1959-60 से यह तय किया गया है कि रेलवे के समान डाक व तार विभाग भी सामान्य राजस्व को अंशदान दिया करेंगे। अंशदान वर्ष की औसतन नियोजित पूँजी पर उसी दर से दिया जाएगा जिस दर से रेल विभाग देता है । अंशदान देने के बाद अपने लाभ का जो हिस्सा बचा करेगा वह डाक व तार विभाग की निधियों में खासकर पुनःस्थापन आरक्षित निधि में जमा किया जाएगा ।

हुई है इसका अनुमान लगाया जाएगा। पूँजी जितनी लगाई गई है यह इससे जाना जाता है कि कुल कितनी पूँजी व्यय हुई है। फिर इस राशि से रक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण व नई लाइनों के पूंजी व्यय को घटा दिया जाएगा। अवशिष्ट निवल राशि में फिर 1963-64 में प्रस्तावित पूँजी का अर्धांश जोड़ दिया जाएगा। इस अर्धांश प्रस्तावित पूँजी में, अलाभप्रद और रक्षार्थ निर्मित लाइनों में नियोजित होने वाली तथा नवीन लाइनों में लगने वाली पूँजी को शामिल नहीं किया जाता। जोड़ की हुई राशि मे अतिरेक पूँजी तथा उत्तर-पूर्वी सीमा रेलवे में लगाई गई पूँजी घटा दी जाती है। इस तरह प्राप्त निवल राशि ही कुल पूँजी है जिस पर रेलों को अंशदान देना पड़ेगा। लेकिन अंशदान की राशि निश्चित करते समय पुनः जोड़ बाकी करना पड़ता है। उपरोक्त निवल राशि पर विद्यमान दर के अन्तर्गत $4\frac{1}{2}$ प्रतिशत से व्याज जोड़ा जाता है। उस पर पुनः अतिरेक पूँजी के हिस्से पर 3.77 प्रतिशत की दर से व्याज जोड़ा जाता है इस जोड़ में से सामरिक महत्व की लाईनों पर हुई हानि घटा दी जानी हैं। जो शेष बचता है वही सामान्य राजस्व को दी जाने वाली अंशदान की शुद्ध राशि है।

सामान्य राजस्व को अंशदान देने के बाद जो राशि बच रहती है उसे रेलों की विशिष्ट निधियों में डाला जाता है। विशिष्ट निधियाँ हैं: (1) राजस्व आरक्षित निधि तथा (2) विकास निधि। इन दो निधियों में से बची राशि पहले किस में डाली जाएगी इसके बारे में कोई खास नियम नहीं। यह रेलों की विकास आवश्यकताओं व अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रख कर किया जाता है।

जिस मूल्य ह्रास आरक्षित निधि का उल्लेख पहले किया गया था उसकी स्थापना के समय यह नियम था कि यदि कोई सम्पत्ति (Asset) नष्ट होती तो उसके पुनः स्थापन के लिए मूल्य का क्रय मूल्य हिस्सा आरक्षित निधि से वा शेप पूँजी से लिया जाता था। 1936-37 में यह तय किया गया कि प्रतिस्थापन के लिए धन आरक्षित निधि से लिया जाय यदि वह एक नवीन छोटे प्रमाण के निर्माण कार्य में लगने वाले मूल्य से कम हो तो, यदि अधिक हो तो पूँजी से लिया जाना चाहिए। 1946 से 1949 तक फिर सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन में मूल्य क्रय मूल्य की दर पर आधारित निधि से लिया जाता था, मँहगाई के कारण मूल्य में जो फ़र्क पड़ता था वह राजस्व से लिया जाता था। 1949 में नए अभिसमय के अनुसार यह नियंत्रण भी जाता रहा और सारा का सारा मूल्य आरक्षित निधि से लिया जाने लगा। 1961 के अभिसमय के अन्तर्गत भी सारा का सारा मूल्य आरक्षित निधि से लिया जाता है।

विकास निधि का उद्देश्य निम्नलिखित प्रकार के व्ययों की पूर्ति करना है:

(1) यात्री सुविधा

(2) श्रमिक कल्याण

(3) अलाभप्रद पर परिचालन की कुशलता बढ़ाने वाले कार्य

(4) अलाभप्रद नवीन लाइनों के निर्माण पर प्रारम्भिक व्यय/यात्री सुविधा के लिए जितने निर्माण कार्य होते हैं वे सारे के सारे विकास निधि से करने पड़ते हैं। इसी प्रकार श्रमिक कल्याण के जितने नवीन लघु निर्माण कार्य हैं वे यदि प्रति प्रयोजन 2,000 रुपए से कम की लागत के हों तो विकास निधि से ही पूरे किए जाते हैं। परिचालन कौशल को बढ़ाने वाली अलाभप्रद परियोजनाओं के बारे में तीन लाख रुपए से अधिक

राशि भी विकास निधि से ली जाती है। अलाभप्रद नवीन लाइनों पर होने वाला व्यय पहले विकास निधि से लिया जाता है व बाद में, उसकी पूर्ति रेलवे राजस्व से की जाती है। साधारणतया नवीन लाइनों से उनके निर्माण मूल्य की तुलना में प्रति वर्ष दो प्रतिशत लाभ होना चाहिए। यदि कम होता हो तो वह अलाभप्रद समझा जाता है। चूंकि पिछले वर्षों में ऐसे अनुभव रह चुके हैं कि विकास निधि से व्यय मुख्यतः नवीन लाइनों के निर्माण के लिए हुआ और यात्री सुविधा की ओर ध्यान न दिया गया अतएव 1954 और 1960 के अभिसमय के अनुरूप अब विकास निधि से यात्री सुविधा के कार्यों के लिए तीन करोड़ रुपया प्रतिवर्ष अलग किया जाता है।

विकास निधि के बारे में यह भी व्यवस्था है कि यदि विकास निधि में सारे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन न हो तो उस निधि के लिए सामान्य वित्त से अलग उधार लिया जा सकता है। ये उधार राशियाँ रेलों की पूंजी लागत (जिस पर अंशदान देना पडता है) में शामिल नहीं होतीं। पिछले तीन सालों में विकास निधि में औसतन 23 करोड़ रुपया प्रतिवर्ष जमा होता रहा है।

राजस्व आरक्षित निधि का उद्देश्य सामान्य वित्त को दिए जाने वाले अंशदान में यदि किसी वर्ष कोई कमी हो तो उसके लिए उपयोग करना है। पहले इसका उपयोग रेलों में नियोजित पूँजी के अपलेखन के लिए भी किया जाता था पर अब ऐसे कोई प्रयोजन नही। राजस्व आरक्षित निधि में कोई निश्चित राशि प्रतिवर्ष नहीं डाली जाती। 1954 की अभिसमय समिति ने इस पर विचार किया था पर इस पर निर्णय अगली समिति के लिए स्थगित * कर दिया। राशि में विनियोग बहुत अनिश्चित ढंग से होता है अन्यथा कई वर्ष कोई विनियोग नहीं होता।

इन निधियों से होने वाले खर्चों के बारे में यह उल्लेखनीय है कि ये पहले भारत की समेकित निधि से संपादित होते हैं और बाद में लोक लेखा के अन्तर्गत आने वाली इन निधियों से उचित राशियों का समेकित निधि में संभरन कर दिया जाता है। इसी प्रकार यह भी उल्लेखनीय है कि रेलों की प्राप्तियाँ और उसका संचालन व्यय भी समेकित निधि के नाम ही होता है क्योंकि रेलों की कोई अलग समेकित निधि नहीं है। केवल उनका एक प्रपत्र लेखा रिज़र्व बैंक द्वारा रखा जाता है ताकि यह जाना जा सके कि रेलों की अवशेष निधि (अर्थात् आय और व्यय का अन्तर) कितनी है।

3. रेल आयव्ययक

1924 की पृथक्करण रिपोर्ट में रेल आयव्ययक के अलग से निर्माण करने व एसेम्बली में उसे सामान्य आयव्ययक के पहले पेश करने की सिफ़ारिश की गई थी। 1949 की समिति के प्रतिवेदन पर हुए संकल्प में इसका और भी समर्थन हुआ। तब से रेल आयव्ययक सभा में† अलग से प्रस्तुत व पारित किया

---

*1960 की रेल अभिसमय समिति ने इस प्रश्न पर विचार किया था पर उसने इस संबंध में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं समझी।

†18 जुलाई, 1957 को लोकसभा में एक सदस्य ने एक उचित प्रश्न उठाया था कि क्या संविधान के अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत रेलों का अलग आयव्ययक होना अवैध नहीं। इसके उत्तर में अध्यक्ष महोदय ने निर्णय दिया था कि अनुच्छेद 112 का ऐसा कोई अर्थ नहीं। (देखिए, लोक सभा वाद-विवाद भाग-2, 18-7-57)।

जाता है। रेल आयव्ययक सामान्य आयव्ययक से सर्वदा पहले ही उपस्थित किया जाए ऐसी कोई सैद्धान्तिक आवश्यकता नहीं है पर जिन परिस्थितियों में भारतीय आयव्ययक संसद् के सम्मुख लाया जाता है अर्थात् वित्तीय वर्ष की सीमाएँ तथा संसद् की बठकों की तारीखें—उनको ध्यान में रखते हुए यदि रेल आयव्ययक सामान्य आय-व्ययक के पहले सभा में पेश न किया जाए तो उसके लिए भी लेखा अनुदान की आवश्यकता होगी जैसी कि सामान्य आयव्ययक के लिए होती है। अतएव रेल आयव्ययक को सामान्य आयव्ययक से पहले ही प्रस्तुत किया जाता है और वित्तीय वर्ष प्रारम्भ होने के पहले ही पास भी कर लिया जाता है।

रेल आयव्ययक * का स्वरूप सामान्य आयव्ययक से निम्नलिखित बातों में भिन्न है।

(1) सामान्य आयव्ययक में जहाँ अनुदान, मंत्रालयों के अनुदान अथवा एक ही मंत्रालय के अन्तर्गत विषय विभाजन के अनुसार होते हैं वहाँ रेलों में विभाग एक होते हुए भी उसके कई अनुदान हैं। यह भी देखा गया है कि जहाँ सामान्य आयव्ययक में एक विषय के अधीन बाकी उप-विषय होते हुए भी उन उप-विषयों के लिए अलग अनुदान नहीं होते वहाँ रेलों में ऐसा होता है। उदाहरणार्थ चालू लाइनों का निर्माण इस विषय के अन्तर्गत वृद्धि, प्रति-स्थान तथा विकास निधि प्रत्येक के लिए अलग अनुदान हैं।

(2) सामान्य आयव्ययक के अनुदानों में पूँजी-व्यय के अनुदान साधारणतया अलग से दिए जाते हैं पर रेल अनुदानों में ये शामिल होते हैं अर्थात् अनुदान केवल प्रयोजनों के अनुसार दिए जाते हैं न कि राजस्व और पूंजी इस स्रोत के विभाजन के अनुसार।

(3) रेल आयव्ययक में आय के स्रोतों का विवरण सामान्य आयव्ययक के तत्समान स्रोत के विवरण से अधिक विस्तार में दिया जाता है। उदाहरणार्थ "यात्री यातायात से आमदनी" के अन्तर्गत "ऊँचे दर्जे से आमदनी", "तीसरे दर्जे से आमदनी", "पार्सल आदि से आमदनी" इनके आँकड़े दिए जाते हैं पर तत्समान सामान्य आयव्ययक के विवरण में उत्पादन शुल्क आदि के नीचे उनके घटक नहीं दिए जाते।

(4) रेल आयव्ययक पुस्तकों में व्याख्यात्मक ज्ञापक के अतिरिक्त निर्माण, मशीन और चलस्टाक के कार्यक्रम (Programme of Works, Machine and Rolling Stock) अर्थात् पूंजी व्यय की आयोजनाओं पर विशेष रूप से एक विस्तृत ज्ञापक प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार का व्यय विवरण सामान्य आयव्ययक के साथ नहीं होता। निर्माण मशीन और चल स्टाक के कार्यक्रम में निम्नलिखित प्रकार के पूँजी व्यय शामिल होते हैं :

(क) चल स्टाक (बिजली संबंधी स्टाक को छोड़कर);

(ख) मशीन और स्थिर यंत्र ;

* देखिए, परिशिष्ट 8।

(ग) पटरियों का पुनर्नवीयन;

(ध) यातायात की सुविधाएँ;

(च) कर्मचारियों के लिए सुविधाएँ;

(छ) रेलवे लाइनों की खरीद;

(ज) सिगनल और अन्तर्पाश के काम आदि।

निर्माण की दृष्टि से रेल आयव्ययक का निर्माण इस प्रकार होता है। पहले प्रत्येक क्षेत्र की रेलवे, जैसे उत्तरी-पश्चिमी आदि रेलवे अपना आयव्ययक बनाती हैं। बाद में उन्हें एकत्रित कर रेलवे बोर्ड द्वारा एक संयुक्त आयव्ययक का रूप दिया जाता है। वैसे तो प्रत्येक रेलवे द्वारा भेजे गए सभी प्राक्कलनों की बोर्ड में सूक्ष्म जाँच होती है पर निर्माण मशीन और चल स्टाक आदि के कार्यक्रमों के प्राक्कलनों की रेलवे बोर्ड में विशेष रूप से जाँच होती है। इन प्राक्कलनों के बारे में यह प्रथा है कि रेलवे बोर्ड में आने के बाद उन पर विभिन्न रेलों के अधिकारियों की एक सामूहिक बैठक में विचार किया जाता है। बोर्ड इस बात पर भी निर्णय करता है कि पूर्वोक्त कार्यक्रम से लगने वाले व्यय का वितरण मूल्य ह्रास आरक्षित निधि, विकास निधि तथा राजस्व में किस प्रकार हो।

क्षेत्रीय रेलों में आय के प्राक्कलन प्रमुखतः वहाँ के प्रधान व्यावसायिक व्यवस्थापक (Chief Commercial Superintendent) द्वारा बनाए जाते है। ये निम्नलिखित विषयों के अन्तर्गत होते हैं। (1) यात्री यातायात (2) माल यातायात (3) फुटकर आमदनी तथा (4) उचंत (Suspense) आमदनी। इन प्राक्कलनों को उनके उपांगों में प्राक्कलित किया जाता है। "यात्री यातायात से आमदनी" में रेलों का विस्तार कितना है और औसतन किराया कितना है इसके आधार पर प्राक्कलन बनाया जाता है। फुटकर आमदनी और उचंत आमदनी के अनुमान केवल विगत अनुभव और प्रवृत्ति-अध्ययन के आधार पर बनते हैं।

व्यय के अनुमान बनाने की जिम्मेदारी सभी व्यय करने वाले विभागों पर है। सभी विभागाध्यक्ष अपने अपने विभागों के निमित्त पूर्वानुभव के आधार पर व्यय अनुमान बनाते हैं जो लेखा विभाग द्वारा जाँच होकर अन्त में जनरल मैनेजर द्वारा अनुमोदित होते हैं। व्यय के प्राक्कलन के विषय निम्नलिखित हैं :

(क) साधारण परिचालन व्यय :— जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं :

(1) प्रशासन;

(2) मरम्मत और अनुरक्षण;

(3) परिचालन कर्मचारी;

(4) परिचालन ईंधन ;

(5) कर्मचारियों और ईंधन को छोड़कर परिचालन के मद में दूसरे खर्च।

(6) विविध व्यय ;

(7) मजदूर-कल्याण।

(ख) विविध-व्यवहार:—जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

(1) छूट;

(2) सरकारी सहायता ;

(3) भूमि;

(4) सर्वेक्षण;

(5) विविध व्यय;

(6) चालू लाइन निर्माण राजस्व ।

(ग) सामान्य राजस्व को लाभांश:—पूँजी व्यय के प्राक्कलनों के संबंध में यह प्रथा है कि रेलवे बोर्ड में उन पर उचित जाँच होती है फिर उन्हें वित्त मंत्रालय भेज दिया जाता है ताकि उपाय और साधन आयव्ययक (Ways and Means Budget) बनाते समय उन पर ध्यान रखा जा सके। जब वित्त मंत्रालय की स्वीकृति मिल जाती है तो उन्हें रेल मंत्री के सम्मुख रखा जाता है । साधारणतया यह अवस्था रेल आयव्ययक निर्माण की आखिरी अवस्था समझनी चाहिए पर चूँकि मशीन, चल स्टाक जैसी चीज़ें विदेश से न आने अथवा अन्य किसी कारण से घट-बढ़ सकती हैं अत: उनके प्राक्कलनों में यदि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो तो मंत्री द्वारा स्वीकृत होने पर भी, सभा में उपस्थापित किए जाने के पूर्व उनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

आयव्ययक बन जाने पर उसे संसद् में प्रस्तुत किया जाता है । सामान्य आयव्ययक की भांति रेल आयव्ययक को भी उन्ही अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिससे सामान्य आयव्ययक गुज़रता है, अर्थात् (1) सामान्य चर्चा (2) अनुदान की माँगों पर बहस, व (3) विनियोग विधेयक । रेल आयव्ययक के लिए वित्त विधेयक की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि रेलों के कोई अपने कर आदि नही होते । हाँ, रेल मंत्री को अपने भाषण में रेल भाड़े की वृद्धि आदि के बारे में सूचित करना पड़ता है ।

वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ होने के पूर्व ही रेल आयव्ययक पास हो जाने के कारण रेल आयव्ययक में लेखा-अनुदान की आवश्यकता नही पड़ती पर आवश्यकता पड़ने पर लेखा-अनुदान लिए जाने के लिए भी कोई प्रतिबन्ध नही। 1958 में 1957-58 वर्ष के लिए संसद् का अधिवेशन देर से होने के कारण चार महीने के लिए लेखा-अनुदान लिए गए थे। यह लेखा-अनुदान उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार सामान्य आयव्ययक का लेखा-अनुदान । रेल आयव्ययक में पूरक अनुदान लेने की पद्धति है। पहले पूरक अनुदान के प्रस्ताव "रेल स्थाई वित्त समिति" के सम्मुख उपस्थित किए जाते थे पर समिति समाप्त होने के बाद अब ये केवल रेल मंत्री के सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं ।

रेल आयव्ययक 15 फरवरी के आसपास संसद् में पेश किया जाता है। एक दिन उस पर सामान्य चर्चा होती है। तीन दिन अनुदानों पर बहस और एक-दो दिन विनियोग विधेयक पास करने में जाता है। रेल आयव्ययक रेल मंत्री द्वारा सभा में पेश किया जाता है न कि वित्त मंत्री द्वारा ।

पारित होने पर रेलवे बोर्ड आयव्ययक आदेश के रूप में विभिन्न अधिकारियों को सूचित कर देता है कि उन्हें कितना व्यय करने का अधिकार है। साधारणतया ये राशियाँ उसी अनुपात में होती हैं जिस अनुपात में विभिन्न अधिकारियों ने अपने प्राक्कलन भेजे होते हैं।

4. रेल लेखा और लेखा परीक्षा

प्रारम्भिक लेखे का निर्माण रेल विभाग में किस प्रकार होता है यह अध्याय 3 में बतलाया जा चुका है। प्रारम्भिक लेखे डिवीज़नल दफ़्तरों से प्राप्त होने पर उन्हे पूरी एक क्षेत्रीय रेल के लिए संग्रहीत किया जाता है। संग्रहीत लेखों को पूँजी तथा राजस्व का वर्तमान खाता (Account Current Capital and Revenue) कहते हैं। प्रत्येक महीने की छह तारीख तक इन लेखों को रेलवे बोर्ड भेज दिया जाता है जहाँ सारी रेलों के लिए एक सामूहिक लेखा बनता है। सामान्यतया रेल लेखा के सम्बन्ध में भी वही प्रक्रिया है जो सिविल विभागों में। पर व्यापारिक विभाग होने के कारण रेल लेखे में कुछ विशेपताएँ बरतनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित अन्य लेखों की रचना (1) पूँजी तथा राजस्व लेखा (2) निधि लेखे (3) सरकारी तथा व्यापारिक व्यवहारों को संबंधित करने वाले लेखे। कुछ और गौण लेखे होते हैं जैसे—

(1) खुद का और एजेन्सी लाइनों का अलग अलग लेखा;

(2) केन्द्रीय राजस्व द्वारा विशेष रूप से दिए गए धन तथा रेलों की ही अतिरेक प्राप्तियों (Excess receipts) से भुगतान के लेखे;

(3) सहायता प्राप्त कम्पनियाँ तथा दायित्व भुगतान व्यवहारों का अलग लेखा;

(4) व्यापारिक लेखे;

(5) रेल और सामान्य वित्त के अलग होने के कारण प्रत्येक अवस्था में ध्यान रखना;

(6) चालू लाइनों व निर्माण की अवस्था की लाइनों का अलग अलग रखना। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सामान्य लेखा रेलों को रखना ही नहीं पड़ता। रेलों की कोई अलग समेकित निधि न होने के कारण उसका सामान्य लेखा तो बनाना ही पड़ता है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक परिणामों को मालूम करने के लिए उपरोक्त अलग लेखे भी बनाने पड़ते हैं। सामान्य लेखे, अन्ततोगत्वा वित्त लेखे का रूप लेते हैं और भारत सरकार के वित्त लेखे का अंग बन जाते हैं। रेल लेखा विभाग रेलों के प्रति इस सामान्य वित्त लेखे को बनाकर महालेखापाल केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय में संकलन के लिए भेज देते हैं।

रेल वित्त लेखे के दो भाग होते हैं:

(1) विभिन्न रेल लेखा शीर्षकों के सार जिसके साथ विस्तृत अनुसूचियाँ दी हुई होती हैं;

(2) परिशिष्ट।

सार मे रेल प्राप्तियों तथा भुगतानों को मुख्य तथा गौण शीर्षों के अनुसार प्रदर्शित किया जाता है। अनुसूचियों के उदाहरण इस प्रकार हैं :

(क) रेल लेखा पुस्तकों में अवशिष्ट राशियाँ;

(ख) राजस्व लेखे के बाहर रेल निर्माण पर हुए पूँजी व्यय का विस्तृत लेखा।

परिशिष्टों का उद्देश्य ऐसे व्यवहारों को प्रगट करना है जो प्रकाशित लेखे से साधारणतया प्रगट नहीं होते पर जिन्हें वित्तीय हालत को समझने के लिए जानना आवश्यक है। परिशिष्टों के उदाहरण हैं :

(1) पूँजी तथा राजस्व व्यवहारों से संबंधित परोक्ष प्रभारो का विवरण;

(2) रक्षा विभाग की मार्फ़त किए गए निर्माण कार्यों का विवरण जिन पर उस विभाग से पोषण तथा व्याज के प्रभार मिलते हों।

पूँजी तथा राजस्व लेखे के निम्न प्रभाग होते हैं :

(1) अधिकृत तथा नियोजित पूँजी (इस विवरण का शामिल किया जाना या न किया जाना रेलों के अपने निर्णय पर निर्भर होता है)। इस विवरण में अधिकृत पूँजी अथवा हिस्से दिए जाते हैं ;

(2) नियोजित पूँजी का हिस्से तथा प्रतिभूति के अनुसार विवरण;

(3) प्राप्त पूँजी का ऋण, ऋणपत्र तथा ऋणपत्र स्टाक के अनुसार विवरण;

(4) पूँजी खाते में प्राप्तियाँ तथा व्यय;

(5) पूँजी व्यय का व्योरा—इसमें चालित लाइनों व नवीन निर्माणों के अन्तर्गत पूँजी व्यय का विवरण दिया जाता है ;

(6) पूँजी खाते से होने वाले और व्यय का प्राक्कलन— इसमें मुख्य शीर्षों के अनुसार (1) दो साल से अधिक तक यात्रियों के लिए प्रयुक्त लाइनों; तथा (2) निर्माण हो रही लाइनों के लिए लगने वाले पूँजी व्यय का विकास दिया होता है;

(7) और व्यय करने के लिए उपलब्ध सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा अन्य सम्पत्तियाँ (Assets) (यह केवल कम्पनियों द्वारा शासित लाइनों के लिए दिया जाता है);

(8) पूँजी खाता/पूँजी संतुलन पत्र;

(9) राजस्व खाता ;

(10) परिचालन व्यय का सारपत्र ;

(11) राजस्व परिचालन व्यय का बिस्तृत लेखा (इसमें मुख्य और गौण लेखा शीर्षो के अन्तर्गत पिछले व चालू वर्ष के व्यय का वर्णन होता है) ;

(12) राजस्व प्राप्तियों का विस्तृत लेखा ;

(13) अप्राप्त प्राप्तियों का विवरण ;

(14) अतिरिक्त लाभ (excess profit);

(15) शुद्ध राजस्व लेखा (शुद्ध प्राप्तियों से कुल पूँजी पर व्याज को घटा कर यह राशि मालूम की जाती है) ;

(16) कुल शुद्ध प्राप्तियों का लेखा;

(17) व्याज का लेखा;

(18) राजस्व संतुलन पत्र;

(19) मूल्य ह्रास आरक्षित निधि लेखा ।

पूँजी तथा राजस्व लेखे का उद्देश्य रेलों के वित्तीय परिणामों को जान सकना है । अतएव इसमें कुछ काल्पनिक लेखा शीर्ष भी होते हैं । पूँजी तथा राजस्व लेखा प्रति वर्ष रेलों की वार्षिक रिपोर्ट के दूसरे भाग में दिया जाता है। यह प्रत्येक क्षेत्रीय रेलवे के अनुसार अलग अलग बनता है । प्रत्येक लेखे के अन्त में प्रमुख रेल-अधिकारी द्वारा एक प्रमाण पत्र होता है जो लेखा परीक्षक द्वारा प्रमाणित किया जाता है ।

भारतीय रेलों का एकीकरण करके उसे एक आर्थिक संस्था बना देने पर रेलों के हिसाब किताब के काम और आर्थिक ढाँचे में 1953 में अस्थाई रूप से कुछ परिवर्तन किए गए थे । पर 1953 में ही रेलवे बोर्ड ने पुन: स्थाई परिवर्तनों के शोध के लिए एक समिति नियुक्त की । अब उस समिति की सिफ़ारिशों के अनुसार अप्रैल 1954 से रेल लेखा पद्धति में निम्नलिखित मुख्य परिवर्तन किए गए हैं :—

(1) हर क्षेत्र की आमदनी जानने के लिए अन्तर्क्षेत्रीय यातायात की आमदनी का विभाजन फिर शुरू कर दिया गया है । लेकिन उसकी विभाजन प्रणाली को इस तरह सरल बना दिया गया है कि हर रेलवे की आमदनी का बँटवारा करते समय माल और पार्सल यातायात पर पूँजी, यातान्तरण, और थोड़ी दूर के भाड़े की आमदनी का बँटवारा नहीं किया जाता और यात्री यातायात की आमदनी के बँटवारे में हर लाइन की हर दर्जे की आमदनी को एक मद मान लिया जाता है ।

(2) नीचे दिए हुए मदों को छोड़कर रेलों के बीच सभी लेन देन में विलयन किया जाता है :

(क) पाँच सौ रुपए तक की छोटी रक़म का विलयन नहीं किया जाता ।

(ख) चल स्टाक पर किराया, डिब्बों के वहन का खर्च और जुर्माना । स्टाक की अदला बदली में नुक़सान व कमी, प्रयोगशालाओं में विश्लेषण के काम और प्रचार और विज्ञापन के खर्च के संबंध में वित्तीय विलयन ज़रूरी नहीं है ।

रेलों का अपना अलग लेखा विभाग है। इसका सर्वोच्च अधिकारी रेल वित्त आयुक्त होता है जो वित्त मंत्रालय के सचिव के स्तर का होता है। वित्त आयुक्त के नीचे निदेशक वित्त (लेखा) तथा संचालक वित्त (व्यय) दो अधिकारी होते हैं। क्षेत्रीय रेलों मे तथा बड़ी परियोजनाओं मे जैसे चितरंजन लोकोमोटिव फैक्टरी व परम्बूर कोच फैक्टरी तथा पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी रेलों के विद्युतीकरण योजनाओं में वित्त सलाहकार तथा प्रमुख लेखा-अधिकारी होते है। उसके नीचे उपवित्तीय सलाहकार तथा लेखा-अधिकारी होते है। वित्तीय सलाहकार की हैसियत से ये अधिकारी लेखा निर्माण के अतिरिक्त वित्तीय मामलों मे सलाह भी देते हैं।

रेल लेखा परीक्षा के वही सिद्धान्त हैं जो कि अन्य लेखा परीक्षा के। सिर्फ़ अन्तर इतना है कि इसमें व्यापारिक लेखे होने के कारण लेखा परीक्षक को इनके व्यापारिक सिद्धान्तों से भी परिचित होना पड़ता है। एक अन्तर यह भी है कि जहॉ सामान्य वित्त के लेखे की परीक्षा शतप्रतिशत होती हैं वहाँ रेल लेखे की परीक्षा आंशिक लेखा परीक्षा (test audit) के आधार पर होती है।

रेल लेखा परीक्षा विभाग का संगठन रेल लेखा विभाग की तरह है। सर्वोपरि निदेशक रेल लेखा परीक्षक होता है जिसके नीचे हर एक रेलवे के लिए एक मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी होता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक कार्यालय में उस की मदद करने के लिए भी एक उप-नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक (रेलवे) होता है।

5, रेलों की वित्तीय हालत

अन्त में रेलवे की विद्यमान वित्तीय हालत का परिचय हो जाना चाहिए। 1963-64 के आयव्ययक के अनुसार रेलों की यातायात से कुल प्राप्ति 599·69 करोड़ रुपए है। नौ वर्ष पूर्व अर्थात् 1954-55 में यही आमदनी 286·7 करोड़ थी। इस प्रकार कुल यातायात आमदनी में लगभग 100 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

1963-64 में कुल साधारण संचालन व्यय 433·76 करोड़ रुपए है। यही व्यय 1954-55 में 205·8 करोड़ रुपए था। अर्थात् 1954-55 की तुलना में इस मद पर लगभग 62·4 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

मूल्य ह्रास आरक्षित निधि जो कुल परिचालन व्यय का अंश होती है उसमें 1954-55 में 30 करोड़ रुपए प्रति वर्ष 1949 के अभिसमय के निश्चय से पड़ा करता था। पर 1954 के अभिसमय ने उसे 35 करोड़ रुपए स्थिर किया। 1954 में वह राशि संसद् की अनुमति से 45 करोड़ रुपया प्रति वर्ष कर दी गई और 1960 के अभिसमय के अनुसार यह राशि 70 करोड़ रुपए प्रति वर्ष अभी तक थी पर अब 80 करोड़ रुपए है।

सामान्य राजस्व को 1963-64 में अंशदान 80·61 करोड़ रुपए दिया जाने वाला है। यही अंशदान 1954-55 में 34·96 करोड़ था अर्थात् सामान्य राजस्व को मिलने वाले अंशदान में पिछले वर्षो में काफ़ी वृद्धि हुई है।

विकास निधि में 1963-64 में 31·00 करोड़ रुपए जमा किए जाने वाले हैं। 1954-55 में यही राशि 9·70 करोड़ रुपए थी। लेकिन विकास निधि के बारे

सारिणी

रेलों की

	1953-54	1954-55	1955-56	1956-57	1957-58
1. यातायात से कुल प्राप्ति	247·29	286·78	316·29	347·57	379·78
2. साधारण परिचालन व्यय .	201·47	205·87	212·95	233·94	264·18
3. सामान्य राजस्व को अंशदान .	34·56	34·96	36·12	38·16	44·40
4. कुल लगी हुई पूंजी .	869·30	701·58	968·98	1071·71	1222·44
5. मूल्य ह्रास आरक्षित निधि में जमा	30·00	30·00	30·00	45·00	45·00
6. विकास निधि में जमा .	2·56	9·10	7·00	20·22	13·88
7. राजस्व आरक्षित निधि में जमा	1·13	1·18	8·53	1·52	1·61
8. परिचालन अनुपात .	85·05%	81·77%	81·94%	79·91%	41·24%

* आँकड़े अभी

10

वित्तीय हालत (करोड़ रुपए में)

1958-59	1959-60	1960-61	1961-62	1962-63	1963-64
390·21	422·33	456·80	500·50	545·36	549·62
321·31	289·52	313·15	325·33	356·80	363·14
50·39	54·43	55·86	62·85	69·35	68·73
1956·59	1432·28	1520·87	1682·98	*	*
45·17	45·00	45·00	65·00	67·00	67·00
19·13	35·12	36·07	25·23	23·56	31·50
1·09	1·90	1·84	1·93	2·03	2·17
82·72%	79·2%	78·4%	78·0%	78·3%	76·5%

उपलब्ध नहीं हैं।

में कोई सरल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता क्योंकि यह इस पर निर्भर होता है कि कितनी बचत रही है इसलिए विकास निधि में जमा हर वर्ष प्राक्कलित राशि से कहीं कम हो पाती है। उल्लेखनीय है कि 1954 की तुलना में अब विकास निधि से निकाली गई राशि में काफ़ी फ़र्क है। 1954-55 में यह राशि 12·78 करोड़ रुपए थी। 1963-64 के आयव्ययक में यह राशि 26·00 करोड़ रुपए है।

रेलों के पूँजीगत व्यय में भी वृद्धि हुई है। पूँजी व्यय 1963-64 में 68,79,93,000 रुपए किया जाने वाला है। 1954-55 में वह 32,25,46,000 रुपए था।

अन्त में रेलों के एक और आँकड़े का परिचय देना चाहिए अर्थात् रेलों का परिचालन अनुपात। अवर्गित मदों को छोड़ कर (पर मूल्य ह्रास आरक्षित निधि में जमा को शामिल करते हुए) संचालन व्यय की कुल प्राप्तियों की तुलना में अनुपात को संचालन अनुपात कहते हैं। परिचालन अनुपात इस बात का निर्देशक है कि रेल व्यवसाय सुदृढ़ है या नहीं। वह यह बतलाता है कि आय की तुलना में परिचालन व्यय कितना है। 1963-64 के आँकड़ों के आधार पर परिचालन अनुपात 78·3 प्रतिशत है। 1954-55 में वह 81·77 प्रतिशत था।

उपरोक्त आय व्यय और अन्य महत्वपूर्ण वित्तीय तथ्यों का विकास पिछले सालों में किस प्रकार होता रहा है यह पिछले दो पृष्ठों पर दी गई सारिणी से प्रकट होगा।

० ० ०

अध्याय 10

वित्त-व्यवस्था संबंधी कुछ समस्याएं

1. आयव्ययक संबंधी सुधार

संसदीय नियन्त्रण का साधन और राजकीय अर्थनीति का दिग्दर्शक होने के नाते यह आवश्यक है कि आयव्ययक का स्वरूप और उसके सम्बन्ध की संसदीय प्रक्रिया ऐसी हो जो उपरोक्त उद्देश्य को पूरा कर सके। इस सम्बन्ध में पिछले कई वर्षों से आयव्ययक की व्यवस्था में लोगों ने त्रुटियाँ पाई हैं। सरकार* तथा संसदीय समितियों द्वारा इस प्रश्न पर विचार किए जाने के बाद ऐसी धारणा है कि अब भी आयव्ययक में सुधार करने की दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है। यह कहना कठिन है कि कौन सी त्रुटियों में तथ्य है और कौन सी में नहीं। उन त्रुटियों में से किस के पीछे क्या तर्क है और उस त्रुटि को दूर करने के लिए सुझाए गए उपायों के पीछे क्या तर्क है, यह आगे बतलाने की चेष्टा की गई है।

(**क**) **आयव्ययक में त्रुटियाँ** :—(1) आयव्ययक में पहली त्रुटि यह बतलाई जाती है कि इससे सरकारी वित्तीय व्यवहारों का पूरा-पूरा दिग्दर्शन नहीं होता। केन्द्रीय सरकार के आयव्ययक के सम्बन्ध में आलोचकों का आक्षेप है कि इसमें राज्य सरकारों के कामों का (जैसे यदि भारत सरकार राज्य सरकारों को ऋण अथवा सहायक अनुदान देती है तो उस राशि से उन्होंने क्या किया) समावेश नहीं होता। इसी प्रकार उनका आक्षेप यह भी है कि सामाजिक रक्षा व सरकारी उद्योगों पर व्यय किए गए वित्त के परिणामों का उसमें विस्तार से जिक्र नहीं होता।

(2) आयव्ययक में दूसरी त्रुटि यह बतलाई जाती है कि आयव्ययक के व्याख्यात्मक ज्ञापक दुर्बोध और अपर्याप्त हैं। आलोचकों का कहना है कि ज्ञापक में बड़ी योजनाओं के बारे में उल्लेख उतने विस्तार से नहीं होता जितना कि व्यय प्रस्तावों को समझने के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ—राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान तथा ऋणों का क्या प्रयोजन है, वे कैसे खर्च किए जाने हैं, आदि जानकारी ज्ञापक में नहीं होती।

(3) आयव्ययक में तीसरी त्रुटि यह बतलाई जाती है कि इससे यह नहीं जाना जा सकता कि किसी एक सेवा पर कुल कितना व्यय हुआ है क्योंकि एक ही सेवा के प्राक्कलन कई माँगों व मंत्रालयों के अन्तर्गत दिखलाए हुए होते हैं जैसे

---

*सरकारी प्रयत्न के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—

(1) 1951-52 से अनुदानों की माँगें मंत्रालयों के अनुसार पेश की जाती हैं न कि एक साथ तीन-चार मंत्रालयों के लिए।

(2) 1952-53 से माँगें निवल के स्थान पर कुल राशियों के रूप में ली जाती हैं ताकि अनपेक्षित प्राप्तियों का प्रयोग सरकार, संसद् की आज्ञा के बिना न कर सके।

शिक्षा-कार्य पर खर्च शिक्षा विभाग की माँगों में दिखलाया जाता है पर स्कूल की बिल्डिंग का खर्च "निर्माण, आवास तथा पूर्ति मंत्रालय" के अन्तर्गत दिया जाता है।

(4) आयव्ययक में चौथी त्रुटि यह बतलाई जाती है कि इसमें प्राक्कलनों का आधार बहुत कमज़ोर होता है। आलोचकों का कहना है कि सितम्बर-अक्टूबर में बनाये जाने के कारण आयव्ययक प्राक्कलन केवल छह महीने के आय-व्यय की प्रगति के आधार पर ही बनते हैं जो संतोषपूर्ण नहीं है। उनका यह भी कहना है कि कई मदों का तो प्राक्कलन करना ही ग़लत है जिनके बारे मे किसी प्रकार का अन्दाज़ लगना व्यर्थ है जैसे विदेशों से आने वाली मशीनों आदि का व्यय अथवा विदेशों से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता आदि।

(5) आयव्ययक में पाँचवी त्रुटि यह बतलाई जाती है कि उसमें योजना व्यय (Plan Expenditure) को अलग से जानने का कोई तरीका नहीं। आलोचकों का मत है कि पंचवर्षीय योजना पर किए गए व्यय को माँग पुस्तकों* में अलग से दिखलाने से इसका अन्दाज़ लग सकता है कि पंचवर्षीय योजना की प्रगति कैसी हो रही है और सरकार के सामान्य कार्य किस प्रकार बढ़ रहे हैं।

(6) आयव्ययक में छठी त्रुटि यह बतलाई जाती है कि प्रस्तुत प्रणाली में संसद् में विवाद के लिए सदस्यों को पर्याप्त समय नहीं मिलता। आलोचक इस सम्बन्ध में इंगलैण्ड की पद्धति का उदाहरण देते है जहाँ व्यय प्रस्ताव सभा के सम्मुख चार महीने पड़ रहते हैं यद्यपि वहाँ भी व्यय-माँगों पर बहस कुल 20—21 दिन ही होती है। इंगलैण्ड का ही उदाहरण देकर उनका यह भी कहना है कि भारतीय संसद् में व्यय-प्रस्तावों की परीक्षा उस सूक्ष्मता से नहीं होती जिस सूक्ष्मता से इंग्लैण्ड में "कमेटी आन सप्लाई" की सहायता से होती है। "कमेटी आन सप्लाई" इंगलैण्ड के 'हाउस ऑफ़ कामन्स' की उस समिति का नाम है जो पूरे सदन के सदस्यों की होती है। संसद् की औपचारिकता से बचने के लिए वहाँ सारे सदन की समिति बनाने की प्रथा है जिसमें व्यय-प्रस्तावों पर विचार किया जाता है।

(7) आयव्ययक के सम्बन्ध में अन्तिम और सातवीं त्रुटि यह बतलाई जाती है कि वित्तीय वर्ष (जिसके लिए आयव्ययक प्रस्तुत किया जाता है) की अवधि उपयुक्त नहीं है। त्रुटि बतलाने वालों का कहना है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान है और लगान आदि से प्राप्तियाँ प्राय: अक्तूबर के अन्त में ही शुरू हो पाती हैं अतः उसके पहले आय के कोई प्राक्कलन बनाना ग़लत है। दूसरे, व्यय की दृष्टि से भी यद्यपि वित्तीय वर्ष अप्रैल में शुरू हो जाता है पर बीच में वर्षा ऋतु (जून-जुलाई) होने के कारण कोई निर्माण-कार्य नहीं हो पाता। फिर वित्तीय वर्ष के अन्त में व्यय के लिए जल्दबाज़ी होने लगती है। इसलिए कुछ लोगों का यह कहना है कि वित्तीय वर्ष अक्तूबर से शुरू होना चाहिए। दूसरों का कहना है कि भारतीय वित्त-वर्ष दिवाली से प्रारम्भ होना चाहिए जो व्यापारिक दृष्टि से भी उपयुक्त है।

*प्रत्येक व्यय मद के लिए तो नहीं पर माँग-पुस्तकों में जहाँ भी व्यय का कुल जोड़ दिखाया जाता है वहाँ उस कुल में कितना योजना पर व्यय है और कितना अन्यथा यह 1959-60 के आयव्ययक से दिखलाया जाने लगा है। इन्हीं योजना व्ययों की प्रत्येक माँग के अन्त में 1963-64 से एक सूची भी दी जाती है।

(ख) **त्रुटियों के उपायः**—(1) पहली त्रुटि के सम्बन्ध में यह उपाय बताया जाता है कि समाज, रक्षा तथा राजकीय उद्योगों के वित्तीय परिणामों को विश्लेषण के साथ आयव्ययक में दिया जाना चाहिए ताकि व्यय प्रस्तावों का पूर्ण ज्ञान हो सके। इस सम्बन्ध में अमरीका में प्रचलित कार्यफल आयव्ययक (Performance Budget) प्रथा को उद्धृत कया जाता है जिसमें यह दिया जाता है कि प्रत्येक व्यय प्रस्ताव का भौतिक परिणाम क्या होने वाला है। यह सुधार आदर्श आयव्ययक की दृष्टि से तो ठीक है पर उसके लिए राष्ट्रीय वित्त लेखे का समुचित आधार होना चाहिए। किन्तु राष्ट्रीय अर्थ लेखा अभी नहीं बना इसलिए यह सम्भव नहीं। इस प्रकार यह जाना जा सकता है कि प्रस्तुत सरकारी उद्योगों ने क्या प्रगति की है, और उनसे क्या लाभ या हानि हुई है। परन्तु यह नहीं जाना जा सकता कि राष्ट्र की कुल-अर्थ स्थिति पर उनका क्या परिणाम होगा। यह तभी सम्भव है जब सामूहिक रूप से अर्थ प्रगति का अध्ययन हो रहा हो। जब तक सामूहिकता नहीं लाई जाती, तब तक सरकारी आय-व्यय के परिणामों को अलग से जानना कठिन है और राष्ट्रीय उद्योगों के परिणामों को जानना तो और भी कठिन।

(2) द्वितीय त्रुटि के सम्बन्ध में यह बताया जाता है कि व्याख्यात्मक ज्ञापक इतना व्यापक होना चाहिए कि उससे त्रुटि में बतलाई गई सारी कमी पूरी हो सके। कुछ लोगों का इस सम्बन्ध में सुझाव है कि प्रत्येक मंत्रालय* के नाम अलग अलग व्याख्यात्मक ज्ञापक हो जिसमें उन मंत्रालयों की वार्षिक रिपोर्ट भी शामिल की जा सकती है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि प्रत्येक मंत्रालय के लिए अलग से आयव्ययक पेश होना चाहिए जैसा कि रेल विभाग के लिए होता है। दूसरी ओर विद्यमान प्रथा के समर्थकों का यह कहना है कि व्याख्यात्मक ज्ञापक को वृथा बृहत बनाने से कोई लाभ न होगा। व्याख्यात्मक ज्ञापक पिछले वर्षों में अनिवार्य जानकारी के लिए बढ़ता रहा है। वास्तव में व्याख्यात्मक ज्ञापक इतना बड़ा भी न होना चाहिए कि फिर उसे खोलने की इच्छा ही न हो। मंत्रालयों की वार्षिक रिपोर्टों को व्याख्यात्मक ज्ञापक में शामिल करना सरकार की दृष्टि में उपयुक्त नहीं क्योंकि बजट के समय संसद् के पटल पर रखी जाने वाली मंत्रालयों की वार्षिक रिपोर्टों में पिछले वर्ष के कार्यों का विवरण होता है और व्याख्यात्मक ज्ञापक में केवल आने वाले वर्ष के सम्बन्ध में व्यय-प्रस्तावों की वित्तीय दृष्टि से चर्चा होती है। एक और कारण यह है कि व्याख्यात्मक ज्ञापक में आय और व्यय दोनों ही तरह के प्रस्तावों पर टीका होती है, जबकि वार्षिक रिपोर्टों में केवल व्यय परिणामों का ही विवरण होता है अतएव व्याख्यात्मक ज्ञापक में विशेष परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं।

(3) तीसरी त्रुटि के निवारण के सम्बन्ध में यह बताया जाता है कि माँगों की पुनर्रचना होनी चाहिए ताकि किसी एक सेवा पर किए गए सारे व्यय एक ही माँग

*प्रत्येक मंत्रालय के अलग से व्याख्यात्मक ज्ञापक तो नहीं पर प्राक्कलित राशियों के पिछले वर्षों के वास्तविक व्यय से भिन्न होने के कारणों को जो पहले व्याख्यात्मक ज्ञापक में दिया जाता था, अब विभिन्न मंत्रालयों की माँग-पुस्तकों के साथ दिया जाता है। इसी प्रकार पाँच लाख से अधिक व्यय वाली परियोजनाओं पर टिप्पणियाँ भी मंत्रालयों की माँग-पुस्तकों के साथ अलग-अलग दी जाती हैं।

में रखे जा सकें। यह सुधार बतलाना आसान है पर इसे कार्यान्वित करना कठिन। विद्यमान व्यवस्था के समर्थकों का इस विषय में कहना है कि एक तो जब तक संसदीय शासन प्रणाली में सरकारी कार्यो का दायित्व विभिन्न मंत्रालयों में अलग अलग है तब तक पूरी तौर पर सारी सेवाओं को एक ही माँग और तदनुसार एक ही मंत्रालय के अन्तर्गत रखना कठिन है। शिक्षा पर हुए व्यय को ही लीजिए, यदि स्कूल की बिल्डिंग का निर्माण, निर्माण विभाग द्वारा होना है तो इस सम्बन्ध की व्यय माँग केवल निर्माण मंत्रालय के अन्तर्गत ही दिखलाई जा सकती है। दूसरे, कुछ ऐसे विषय हैं जिनका वितरण करना कठिन है जैसे लेखा परीक्षा की फीस, पेन्शन आदि। जैसा कि अध्याय चार में पाठकों ने पढ़ा होगा कि राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार के लिए संविधान में लेखा परीक्षा एक विभाग है जो सामूहिक रूप से दोनों सरकारों के विभिन्न विभागों के लेखे की लेखा परीक्षा करता है। इसलिए यह तय करना कठिन है कि कितना व्यय शिक्षा विभाग के लेखे की जाँच के लिए करना पड़ता है और कितना व्यय अन्य किसी विभाग की लेखा परीक्षा के लिए करना पड़ता है। अर्थात् पूरा-पूरा सेवा व्यय (सब दृष्टि से) नियत करना ही कठिन है। लेकिन सेवाओं के व्यय को मोटे तौर पर अवश्य एकत्रित* किया जा सकता है जैसा कि इंगलैण्ड में होता है। वहाँ भले ही सेवाओं/माँगों की रचना मंत्रालयों के अंतर्गत हो पर माँग के नीचे एक टिप्पणी दी हुई होती है जिसमें यदि तत्संम्बन्धित कोई माँग किसी अन्य मंत्रालय के अन्तर्गत हो तो उन्हें एक साथ इस टिप्पणी में दिखा कर यह दिखलाया जाता है कि उस सेवा पर कुल कितना व्यय हुआ है। भारतीय आयव्ययक में भी यह अवश्य किया जा सकता है।

(4) आयव्ययक की चौथी त्रुटि के उपाय स्वरूप यह बतलाया जाता है कि आय और व्यय दोनों के प्रस्तावों को संसद् के सम्मुख एक साथ उपस्थित न करके उन्हें अलग-अलग (अर्थात् पहले व्यय के प्रस्ताव, बाद में आय के प्रस्ताव) पेश करने चाहिए। कहा जाता है कि इंगलैण्ड में ऐसा ही होता है। इंगलैण्ड में व्यय के प्रस्ताव 'हाउस ऑफ़ कामन्स' के सम्मुख फरवरी में आते हैं व आय के अप्रैल में। बगैर इंगलैण्ड की नकल किए भारत में ऐसे अवसर आये हैं जब आय और व्यय दोनों प्रस्ताव एक साथ प्रस्तुत करने से आयव्ययक के सारे संतुलन में प्रगटतः गड़बड़ी पड़ चुकी है। 1951 में अनुदानों की माँगों पर बहस के समय वित्त मंत्री ने सभा को सूचित किया था कि आगामी वर्ष के अर्थोपाय के एक अंग अर्थात् गतवर्ष के रोकड़ अवशेष 15 करोड़ न होकर अब 155 करोड़ रहेंगे। इस पर संसद् में काफ़ी सरगर्मी हुई थी और कहा गया था कि यदि सरकार ने रोकड़ अवशेषों का ठीक-ठीक अन्दाज लगाया होता तो कदाचित जनता को कोई शुल्क या कर न देना पड़ता, या कम देना पड़ता। वित्त मंत्री ने इस आरोप का उत्तर देते हुए यह कहा था कि जिस आधार पर आय के प्राक्कलन बनाए जाते हैं उनको दृष्टि में रखते हुए रोकड़-बाकी में अन्तर होना स्वाभाविक है। कहा जाता है कि इसी कमज़ोरी को दूर करने के लिए आय के प्राक्कलन सभा के सम्मुख देर से लाए जाने चाहिए जिससे पहले से जाना जा सके कि कुल रोकड़ अवशेष कितने रहे हैं। लेकिन इसके विरुद्ध यह तर्क है कि

*यद्यपि माँगों की रचना तो अभी भारतीय आयव्ययक में इस आधार पर नहीं होती पर लोक लेखे को इस आधार पर रखने की दिशा में 1961-62 से क़दम उठ जा रहे हैं। (देखिए, व्याख्यात्मक ज्ञापक 1961-62)

जब तक आय का सर्वागीण अन्दाज़ नहीं लगता तब तक व्यय के प्राक्कलनों को भी अन्तिम रूप देना कठिन है। आय-व्यय के प्राक्कलन अलग हो सकते हैं, लेकिन दोनों को दृष्टि में रखना अनिवार्य है। व्यय आखिर उतना ही तो किया जा सकता है जितनी की आय हो अथवा जितने के लिए अर्थोपाय किए जा सकें। अतएव आय के प्राक्कलन उसी अवस्था में तैयार किए जाने और सदन के सामने पेश किए जाने स्वाभाविक हैं।

इस त्रुटि का एक और उपाय यह बतलाया जाता है कि आय और व्यय सदन में देर से पेश किए जाएँ ताकि दोनों के आँकड़े अधिक शुद्ध हों। पर इसके विरुद्ध यह तर्क है कि यदि आयव्ययक के प्राक्कलन बनाना देर से शुरू किया जाए तो लेखानुदान भी देर से सभा के सम्मुख लाना पड़ेगा। क्योंकि लेखानुदान की माँगें मुख्य माँगों के तय हो जाने के बाद ही बनती हैं और लेखानुदान की माँगें देर से आने पर पहली अप्रैल से शुरू होने वाले वित्तीय वर्ष के सिद्धान्त में गड़बड़ी पैदा हो सकती है। अतएव जब तक लेखानुदान बिल्कुल ही काल्पनिक राशि के लिए न लिया जाए तब तक यह सुधार संभव नहीं है।

आयव्ययक के आधारों को ही दृढ़ बनाने की दृष्टि से एक और उपाय बताया जाता है, जैसा कि नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक, श्री अशोक चन्दा ने सिविल विनियोग लेखा प्रतिवेदन 1955 के परिशिष्ट में बताया है कि व्यय के विस्तृत प्राक्कलन बनाने की आवश्यकता ही नहीं। सरकार को संसद् से केवल प्रतीकानुदान लेने चाहिए। विभागों को संसद् से पूरक अनुदान के रूप में और अर्थोपाय तब लेने चाहिए जब कि पुख्ता आधार पर शुद्ध प्राक्कलन बन सकें। पर इसके बारे में कहा जाता है कि ऐसा करने से आय और व्यय में संतुलन लाना कठिन हो सकता है। कहते हैं कि इससे सरकार के कार्यक्रम में कठिनाई हो सकती है। दूसरे सरकार के लिए वैधानिक दृष्टि से भी यह उचित न होगा कि वे अपना कार्यक्रम (आगामी वर्ष के लिए) जानते हुए भी सदन के सामने पूरी माँगें न रखें।

(5) पाँचवी त्रुटि के निवारणार्थ यह बतलाया जाता है कि आयव्ययक वैसा ही पेश किया जाए जैसा कि आजकल किया जाता है पर उसके साथ एक गौण आयव्ययक योजना-व्यय के लिए भी पेश किया जाना चाहिए। इसके उत्तर में 1955-56 की वित्त मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट में सरकार ने अपने विचार इस प्रकार प्रगट किए हैं:—

> "समय-समय पर इस बात के सुझाव दिए गए हैं कि हिसाब रखने के ढंग में ऐसा संशोधन करना चाहिए कि योजना-व्यय योजनेतर-व्यय से पृथक् हो जाए। समस्या बहुत पेचीदा है। सरकार के लगभग सभी क्रिया-कलापों में योजना व्याप्त है और इस समय का योजना-व्यय बाद में अधिकतर सामान्य व्यय का ही अंग बन जाएगा। फिर योजना की अवधि में भी हर साल ऐसे परिवर्तन हो सकते हैं। इस तरह, योजना-व्यय और योजनेतर-व्यय के बीच अन्तर बतलाना कठिन है। योजना-व्यय की निरन्तर बदलती हुई परिभाषाओं में सामंजस्य बिठाने के लिए लेखा प्रणाली को बदलना वांच्छनीय नहीं है। लेखे में ऐसी पृथक् व्यवस्था करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी हैं। क्योंकि योजना-व्यय और सामान्य

व्यय कई स्थितियों में अभिन्न रूप से मिला हुआ होता है। उदाहरणार्थ, इस साल योजना के अंग के रूप में जो स्कूल खोले गए हैं वे अगले साल सामान्य दायित्व में आ जाएँगे। इसी प्रकार किसी विभाग विशेष में योजना के अंग के रूप में की गई वेतन वृद्धि हर साल मौजूदा वृद्धि से भिन्न नहीं दिखलाई जा सकती।

यदि पृथक्करण सिद्धान्ततः संभव भी हो तो उसके लिए भुगतान अधिकारियों, खजानों और लेखा कार्यालयों को आरम्भ से ही पृथक् रसीदें (Voucher) बनानी पड़ेंगी। इससे काम भी बहुत बढ़ जाएगा और कर्मचारियों की संख्या में भी वृद्धि करनी पड़ेगी। इस मामले पर बड़ी सावधानी से विचार किया गया है और सरकार तथा नियन्त्रक व महालेखा-परीक्षक दोनों इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि योजना-व्यय और योजनेतर-व्यय को बिल्कुल अलग-अलग रखना व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव नहीं। परन्तु प्रबन्ध अधिकारियों के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि वे अपने अभिलेखों से तथा सरकारी व्यय के मुख्य, छोटे और सविवरण शीर्षकों के अधीन दिए गए पूरे व्यौरों की सहायता से, जैसा कि अब भी हो रहा है, योजना-व्यय के मोटे-मोटे अंक अपनी वार्षिक रिपोर्ट के लिए निकाल सके।"

(6) छठी त्रुटि के उपाय स्वरूप यह बतलाया जाता है कि भारत में भी संसद् की एक समिति होनी चाहिए जो सूक्ष्मता से व्यय प्रस्तावों की जाँच कर सके। लोक सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्तशायनम् अय्यंगार* स्वयं कई बार इस बात पर अपना विचार प्रगट कर चुके हैं। उनका मत है कि इंगलैण्ड की भाँति यहाँ भी "कमेटी आफ़ दि होल हाउस" की प्रथा को लागू करना चाहिए। पर उसके विरोध में यह तर्क है कि समिति प्रथा से कहाँ तक आयव्ययक अधिक सूक्ष्मता से देखा जा सकेगा, यह सन्देहात्मक है। इंगलैण्ड में परम्परा से कुछ पद्धतियाँ बन चली हैं पर यदि भारत में सारे सदन की ही समिति बननी हो तो सम्भव है कि वह कुछ भी काम न कर सके। दूसरे, इंगलैण्ड की पद्धति को अपनाने का अर्थ यह होगा कि लेखानुदान अधिक समय के लिए लेना पड़ेगा। दीर्घ काल के लिए लेखानुदान लेने में शासकीय असुविधाएँ (लेखा निर्माण की दृष्टि से) तथा बाज़ार में अनिश्चय रहने का खतरा है और यदि सदन की कोई छोटी समिति आयव्ययक की जाँच करने वाली हो तो प्राक्कलन समिति है ही जो प्राक्कलन प्रस्तुत होते ही उनकी परीक्षा कर सकती है, और बहस शुरू होने के पहले सभा को रिपोर्ट दे सकती है जैसा कि 1956-57 की प्राक्कलन समिति ने रेल आयव्ययक के सम्बन्ध में किया था।

---

*आठ मार्च, 1956 तथा पाँच अप्रैल, 1956 को सदन में अनुदानों की माँगों पर बहस होते समय उन्होंने अपने विचार प्रगट किए थे। पहले अवसर पर उन्होंने इस प्रकार कहा था: "मैं इस पर भी विचार कर रहा हूँ कि आयव्ययक के विषय में सारा सदन एक समिति का रूप क्यों न ग्रहण कर ले। सामान्य चर्चा के बाद वे विभिन्न विषयों पर अनौपचारिक ढंग से चर्चा कर सकते हैं और कुछ निर्णयों पर पहुँच सकते हैं जो सदन के सामने रखे जाएं। यह प्रथा विदेशों में प्रचलित है। इससे सदन के रूप में एकत्रित होने की औपचारिकता का अन्त हो सकता है।"

(7) अन्त में सातवीं त्रुटि के सम्बन्ध में यह बतलाया जाता है कि वित्तीय वर्ष तुरन्त बदल देना चाहिए। पर इसके विरोधकों का कहना है कि वित्तीय वर्ष बदलने से कोई फ़ायदा न होगा क्योंकि जहाँ तक वर्षा ऋतु आदि की कठिनाई है वह तो वर्ष में कभी न कभी होगी ही अतः आय-प्राक्कलन की दृष्टि से अप्रैल से मार्च तक के वर्ष में ही अनुमान बनाना ज़्यादा सुविधाजनक होता है। सरकारी वित्तीय वर्ष को व्यापारिक वित्तीय वर्ष के अनुकूल बनाने की कोई आवश्यकता नहीं।

(ग) **समीक्षा:**—उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जहाँ सभी को स्थूल रूप से सुधार की आवश्यकता अनुभव हो रही है वहाँ एक खास उपाय ढूँढ़ निकालना कोई आसान बात नहीं जान पड़ती। सरकार द्वारा पिछले वर्षों में उठाए गए कदम आयव्ययक को कुछ हद तक अधिक उपयोगी बनाने में सिद्ध हुए हैं जैसे आयव्ययक के साथ एक आर्थिक सर्वेक्षण दिया जाना, आयव्ययक के आँकड़ों का आर्थिक दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण, ऐसे अनुदान के बारे में जो पुनः नहीं लिए जा रहे हैं अलग पुस्तक, माँगों में सकल (Gross) आँकड़े देना न कि शुद्ध। प्रथम लोक सभा की प्राक्कलन समिति ने भी अपने 20वें प्रतिवेदन में आयव्ययक सम्बन्धी सुधार पर अपने विचार प्रगट किए हैं। उपर्युक्त सभी सुझावों का कम-ज़्यादा समर्थन करने के साथ साथ समिति ने कुछ मौलिक सुझाव भी दिए हैं जैसे—

(1) प्रस्तुत आयव्ययक लेखा रूढ़ है, उसे आर्थिक विवरण प्रधान होना चाहिए।

(2) आयव्ययक में स्थूल रूप से प्रकाशित राशियों की अर्थात् "एक मुश्त राशि" (Lump sum Provisions) प्रालक्कनों की मात्रा कम होनी चाहिए।

(3) रक्षा सेवा सम्बन्धी प्राक्कलन प्रणाली में आमूल परिवर्तन होना चाहिए। उसे पढ़कर विभिन्न घटकों (Units), संस्थाओं, अन्तर सेवा संगठनों (Inter-Services Organisation) पर क्या व्यय हो रहा है यह जानना सम्भव होना चाहिए।

(4) स्थाई वित्त समिति को पुनः जीवित कराना चाहिए भले ही समिति की सलाह केवल सलाह के रूप में हो और सरकार उससे बाध्य न हो।

(5) सरकार को चाहिए कि वह बाजार से ऋण लेने से पहले इस सम्बन्ध में हमेशा संसद् को पूर्व सूचना दे। ऋण का ब्योरा भी संसद् को सूचित करना चाहिए, और

(6) वित्त विधेयक में ऐसे ही संशोधन शामिल किए जाने चाहिएं जो कर या शुल्क परिवर्तन से प्रत्यक्ष संम्बन्धित हों।

देखना है, अभी इस दिशा में और कौन-कौन से क़दम उठाए जाते हैं। सच पूछा जाए तो यह अनवरत पुनरीक्षण का विषय है और जैसे-जैसे हमारा आर्थिक या राजनैतिक विकास होगा, हमें आयव्ययक में हेरफेर भी करना होगा।

2. राष्ट्रीय उद्योगों/व्यवसायों पर संसदीय नियंत्रण

राष्ट्रीय वित्त व्यवस्था में सबसे विवादपूर्ण कोई विषय रहा है तो वह राष्ट्रीय उद्योगों पर संसदीय नियंत्रण है । सामान्य सरकारी विभाग में हर कदम पर उच्च अधिकारी और स्वयं संसद् का नियंत्रण (बग़ैर किसी रुकावट के) हो सकता है पर यदि यही सिद्धान्त राजकीय उद्योगों के विषय में लागू किया जाए तो उनका काम चलना ही मुश्किल हो जाए । उद्योग अथवा व्यवसायों में अभिक्रम की आवश्यकता होती है, परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है न कि जब तक बजट संसद् द्वारा पास न हो जाए एक कौड़ी न खर्च कर सकें और जब तक कि उच्चतम अधिकारी की आज्ञा प्राप्त न हो जाए वे इधर का उधर कुछ न हिला सकें । उसमें लोच व उद्यम की आवश्यकता होती है । पर साथ ही इसके माने यह भी नहीं कि राष्ट्रीय उद्योग कार्य की स्वतन्त्रता के नाम पर जो चाहें करें, क्योंकि भले ही सरकार और संसद् ने स्वयं उन्हें कार्य करने की स्वतन्त्रता दी हो, परन्तु उन व्यवसायों और उद्योगों में सरकारी अर्थात् जनता का पैसा लगा है और उनमें से बहुतों के पीछे जन सेवा का हेतु रहा है । अतएव आवश्यक है कि वे संसद् के प्रति अपनी नीति व काम के लिए उत्तरदायी हों । यहाँ यह समस्या उत्पन्न होती है कि कार्य की स्वतन्त्रता और संसदीय नियन्त्रण परस्पर किस अनुपात में रखा जाए ताकि दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हो सके ।

(क) भारत में नियंत्रण की विद्यमान व्यवस्था:— 1950 से पहले राष्ट्रीय उद्योगों या व्यवसायों पर संसद् के नियन्त्रण की समस्या न थी क्योंकि एक तो उद्योगों या व्यवसायों की संख्या ही कम थी और दूसरे जो थे भी वे पूर्ण रूप से सरकारी विभागों के अंग ही हुआ करते थे । केवल पृथक् व्यवस्था के लिए उनका व्यापारिक लेखा आदि अलग रखा जाता था । (जैसा कि अध्याय 3 में बतलाया गया है) । उनके लेखे की जाँच भी नियन्त्रक तथा महालेखापाल द्वारा होने के कारण लेखा परीक्षा प्रतिवेदन के रूप में संसद् को उनकी जाँच करने का अवसर मिलता था । पर 1948 में औद्योगिक नीति और 1950 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर उद्योगों* की वृद्धि के लिए उन्हें कम्पनी या निगमों का रूप देने के समय यह समस्या उत्पन्न हुई । इस सम्बन्ध में पहले तत्कालीन नियन्त्रक तथा महालेखापाल श्री नरहरि राव ने प्रश्न उपस्थित किया था कि यह कहाँ तक उचित है कि भारत की समेकित निधि से निकाले गए वित्त से प्रारम्भ उद्योगों को ऐसे स्वरूप में रखा जाए कि उसे (अर्थात् महालेखा परीक्षक को) उनके लेखे की परीक्षा करने का अवसर न मिले (क्योंकि कम्पनी के तौर पर रजिस्टर्ड होने पर यह आवश्यक न था कि महालेखा परीक्षक द्वारा ही जाँच हो) जब कि संविधान के अन्तर्गत उसका यह दायित्व है कि भारत की समेकित निधि से हुए सारे व्यय की वह लेखापरीक्षा करे। नियन्त्रक ने लोक लेखा समिति का ध्यान भी इस बात की ओर आकर्षित किया । लोक लेखा समिति ने यह सिफ़ारिश की कि राष्ट्रीय उद्योगों पर संसदीय नियन्त्रण की आवश्यकता है । इसी समय प्राक्कलन समिति ने भी अपनी 16वीं रिपोर्ट में यह सिफ़ारिश की कि संसद् को सविस्तार यह जानने का अधिकार होना चाहिए कि राष्ट्रीय उद्योगों की क्या प्रगति हो रही है । राष्ट्रीय उद्योगों को संसद् के सम्मुख वार्षिक प्रतिवेदन देने चाहिए।

* भारत सरकार के उद्योग, व्यवसाय व अन्य स्वायत्त निकायों की सूची के लिए परिशिष्ट 9 देखिए ।

इन सब आलोचनाओं के फलस्वरूप अब सरकार ने संसदीय नियन्त्रण सिद्धान्त स्थूल रूप से स्वीकार कर लिया है और उसके लिए नीचे लिखे कदम उठाए हैं—

(1) प्राय: प्रत्येक राष्ट्रीय उद्योग और व्यवसाय के लेखे की परीक्षा करने का अधिकार अब नियन्त्रक को दिया गया है।

(2) सरकार को अब उद्योग की व्यवस्था के बारे में भी निर्देश देने का अधिकार है। और चूंकि सरकार संसद् के प्रति उत्तरदायी होती है अतएव संसद् को भी उस पर नियन्त्रण का अधिकार मिल गया है।

(3) पूँजी निवेश (Capital Investment), बड़े क़रार आदि के विषय में अब राष्ट्रीय उद्योगों के लिए वित्त मंत्रालय की सलाह लेनी ज़रूरी है। यदि क़रार विदेशों से होते हैं तो उस अवस्था में करारों की प्रति संसद् के सन्मुख भी रखी जाती है।

(4) राष्ट्रीय उद्योगों के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपनी वार्षिक कार्यवाही की रिपोर्टें तथा लाभ-हानि के लेखे आदि संसद् के सन्मुख रखें।

(5) उद्योगों के लिए अब सलाहकार समितियाँ नियुक्त की गई हैं जिनमें ग़ैर सरकारी व्यक्ति भी होते हैं ताकि जनता के हित को ध्यान में रखा जा सके।

ये उपाय कम्पनियों के विषय में अर्थात् ऐसे उद्योग जिनकी रचना कम्पनी के रूप में की गई है उनके विषय में (भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956) में तथा निगमों के विषय में निगमस्थापक अधिनियमों में दिए गए है। विस्तृत जानकारी के लिए इन के कुछ उद्धरण परिशिष्ट 9 में दिए गए हैं।

इनके अतिरिक्त पूर्ण संसदीय नियन्त्रण के भी कुछ मार्ग उपलब्ध हैं जो इस प्रकार है —

(1) संसद्-सदस्य राष्ट्रीय उद्योग के सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछ सकते हैं और अत्यधिक सूक्ष्म प्रश्नों को छोड़कर मंत्री बाकी प्रश्नों का उत्तर देते भी हैं।

(2) आयव्ययक पर बहस के समय भी संसद् राष्ट्रीय उद्योगों की परीक्षा कर सकती है। बाद में भले ही ये उद्योग स्वतन्त्र रूप धारण कर लें पर उनकी स्थापना करते समय तो सरकारी कोष से ही धन जाता है। उस समय उस उद्योग की नीति की चर्चा हो सकती है। बाद में भी किसी न किसी विकास के लिए सरकार से और धन लेने के लिए इन कम्पनियों को सरकार के सम्मुख आना ही पड़ता है। उस समय भी संसद् को उद्योगों पर नियन्त्रण रखने का मौका मिलता है।

(3) नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक को लेखा परीक्षा करने का अधिकार देने के नाते संसद् की लोक लेखा समिति को भी अब राष्ट्रीय उद्योगों पर नियन्त्रण रखने का अवसर मिल गया है क्योंकि महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन हमेशा संसद् के सामने पेश होता है। लोक लेखा समिति ने औद्योगिक वित्त निगम आदि कई उद्योग व्यवसायों की जाँच भी की है।

(4) प्राक्कलन समिति की एक उपसमिति अब राष्ट्रीय उद्योगों की बारी-बारी से अनवरत परीक्षा करती रहती है। उपसमिति के कायम होने से पहले भी प्राक्कलन समिति ने हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल फैक्टरी लिमिटेड, नाहन फाउन्ड्री लिमिटेड, सिन्द्री फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान हाउसिग फैक्टरी लिमिटेड, हिन्दुस्तान इन्सेक्टिसाइड लिमिटेड, नैशनल इन्स्ट्रयूमेन्ट फैक्टरी लिमिटेड, हिन्दुस्तान एयरक्रैफ्ट लिमिटेड, भारत एलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड जैसे उद्योगों की परीक्षा की थी। समिति ने भारतीय वायु निगम तथा अन्तर्राष्ट्रीय वायु निगम जैसे निगमों की भी जाँच की थी। समिति की राष्ट्रीय उद्योगों की सैद्धान्तिक चर्चा (16वीं रिपोर्ट में) प्रसिद्ध ही है। उपसमिति की स्थापना के बाद से समिति ने इण्डियन टेलीफ़ोन इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, ईस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन, वेस्टर्न शिपिग कारपोरेशन आदि की सूक्ष्म परीक्षा की है। 1960-61 में "राष्ट्रीय उद्योगों के प्रकार व संगठन" व "राष्ट्रीय उद्योगों में आयव्ययक निर्माण व उनके वार्षिक विवरण के संसद् पटल पर रखे जाने की प्रथा" के संबंध में समिति ने बहुमूल्य रिपोर्टें पेश की हैं।

(ख) **विदेशों में नियंत्रण की व्यवस्था:**—इस सम्बन्ध में कदाचित विदेशों के अनुभव जानना उपयुक्त होगा।

(1) इंग्लैण्ड : इंग्लैण्ड उन देशों में से है जिसने लेबर पार्टी के शासन काल में पहली बार राष्ट्रीय उद्योगों को बड़े पैमाने पर प्रारम्भ किया था। यह कहना तो ग़लत होगा कि इंग्लैण्ड ने राष्ट्रीय उद्योगों पर संसदीय नियन्त्रण के प्रश्न को पूरी तरह से सुलझा लिया है पर समय के गुज़रने के साथ-साथ उन्होंने कुछ पद्धतियाँ निकाली हैं जिनसे यह प्रश्न काफ़ी सुलझा सा लगता है। 1948 में एक विशेष जाँच समिति की परीक्षा के परिणामस्वरूप संसद् ने वहाँ एक विशिष्ट समिति "कमेटी आन नैशनलाइज़्ड अण्डर-टेकिंग्ज़" स्थापित की है। जो उद्योग/व्यवसाय द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के आधार पर उनकी जाँच करती है और संसद् को अपनी रिपोर्ट पेश करती है। इसके अतिरिक्त भारत की ही भाँति वहाँ के सभी राष्ट्रीय उद्योग स्थापक अधिनियमों में एक नियम यह भी है कि सरकार उन्हें कार्य सम्बन्धी आदेश दे सकती है जिस आदेश पर स्वभावतः संसद् में भी चर्चा हो सकती है। वहाँ केवल "ब्रिटिश ओवरसीज़ एयरवेज़ कॉरपोरेशन" तथा "ब्रिटिश ईस्ट एयरवेज़ कारपोरेशन" को छोड़कर शेष उद्योगों को बाज़ार से ऋण लेने से पहले वित्त मंत्रालय से भी सलाह लेनी पड़ती है।

आन्तरिक कार्य करने की स्वतन्त्रता कीदृष्टि से इंग्लैण्ड में यह प्रथा है कि यदि मंत्री को हस्तक्षेप करने का अधिकार हो तो संसद् भी उसके बारे में जानकारी हासिल कर सकती है। अर्थात् दिन प्रतिदिन के मामलों में संसद् को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। उपभोक्ताओं के हित के लिए इंग्लैण्ड में एक और पद्धति है जिसे "कंज़्यूमर्स काउंसिल" अर्थात्

'उपभोक्ता' समिति कहते है। राष्ट्रीय उद्योग स्वतंत्र तो हो पर उसका यह अर्थ नहीं कि वे भी प्राइवेट उद्योगों की तरह केवल अपने लाभ की कसौटी पर काम करें। अगर ऐसा हो तो राष्ट्रीयकरण का कोई मतलब ही नहीं। अतएव वहाँ उपभोक्ता समिति की व्यवस्था है जिसमें उपभोक्ताओं की भी राय ली जाती है।

(2) फ्रान्स : इंग्लैण्ड की अपेक्षा फ्रान्स में राष्ट्रीय उद्योगों पर संसदीय नियंत्रण अधिक प्रभावशाली है। वहाँ प्रत्येक राष्ट्रीय उद्योग को अपने कार्य की एक वार्षिक रिपोर्ट संसद् को देनी पड़ती है। संसद् के दोनों सदनों में एक-एक उपसमिति नियुक्त है जो इन रिपोर्टों की परीक्षा करती है। साथ ही सरकार ने वहाँ कुछ परीक्षक नियुक्त किए है जिनका काम यह होता है कि वे समय-समय पर सरकार को रिपोर्ट दें कि उद्योग व्यवस्थित रूप से चल रहे हैं या नहीं। इसके अतिरिक्त वहाँ दो अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ हैं : (1) "कमीशन दे वेरीफिकेशन दे काम्पलेस दे इन्टरप्राइसेज पब्लीक" अर्थात् 'विभिन्न राष्ट्रीय उद्योंगों के लेखे की जाँच का आयोग' तथा (2) "पब्लीक अंडरटेकिंग्ज़ आडिट बोर्ड" अर्थात् राष्ट्रीय उद्योगों के लेखा परीक्षा का बोर्ड।

कमीशन का काम इस प्रकार है :—

(1) विभिन्न राष्ट्रीय उद्योगों के लेखों तथा खातों के बारे में देखना कि वे उपयुक्त हैं और यदि न हों तो उनके बारे में सुझाव देना;
(2) विभिन्न राष्ट्रीय उद्योगों के वित्तीय परिणामों का विश्लेषण करते हुए उनकी स्थिति पर प्रकाश डालना (ऐसा करते समय यह अनिवार्य है कि वे भावी आशाओं तथा विद्यमान स्थिति को ध्यान में रखें);
(3) विभिन्न उद्योगों की व्यापारिक तथा वित्तीय कार्यक्षमता (अर्थात् उनका प्रबन्ध योग्य हाथों में है या नहीं) पर मत प्रकाशन करना तथा उस में सुधार के उपाय सुझाना;
(4) उद्योगों के संगठन तथा अधिनियमों में सुधार बतलाना; तथा
(5) उद्योगों के लेखों की जाँच करना जो वे "कोर्ट आफ़ एकाउन्ट्स" को पेश करते हों।

बोर्ड के काम इस प्रकार हैं :—

(1) यह देखना कि बोर्ड को पेश किए गए संतुलन पत्र, माल सूची और लाभ हानि लेखे आदि शुद्ध हैं;
(2) उद्योगों द्वारा प्राप्त परिणामों को स्पष्ट रूप से बतलाना तथा उनकी भावी लाभप्रदता पर अपना मत देना;
(3) उद्योगों की व्यापारिक तथा वित्तीय प्रबन्ध सामर्थ्य पर अपना मत देना; तथा
(4) उद्योगों में आवश्यक संघटनात्मक सुधार के सुझाव देना।

(3) कनाडा : कनाडा में भी राष्ट्रीय उद्योगों और व्यवसायों पर संसदीय नियन्त्रण का स्वरूप काफ़ी विकसित अवस्था में है। कनाडा में राष्ट्रीय उद्योगों को "क्राऊन कारपोरेशन" कहा जाता है जिसमें आन्तरिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से तीन भेद हैं :

(1) सरकारी विभागों द्वारा चलाए गए प्रत्यक्ष निगम जिन्हें "डिपार्ट-मेन्टल क्राउन कारपोरेशन" कहते हैं,

(2) एजेन्ट द्वारा संचालित निगम जिन्हें "एजेन्सी क्राउन कारपोरेशन" कहते हैं, तथा

(3) सरकार द्वारा मिलकियत के तौर पर चलाए गए निगम जिन्हें "प्रोप्राई-टरी क्राउन कारपोरेशन" कहते हैं।

परिभाषा के अनुसार क्राऊन कारपोरेशन वह संस्था है जो मंत्री के माध्यम से अन्ततोगत्वा संसद् के प्रति ज़िम्मेदार हो। अधिनियम में यह व्यवस्था है कि एजेन्सी तथा प्रोप्राइटरी कारपोरेशन के पूँजी आयव्ययक सदन के सम्मुख उपस्थापित करने होते हैं। निगमों को अपने लेखे व वार्षिक रिपोर्टें भी संसद् के सामने पेश करनी होती हैं। लेखे की जाँच के लिए लेखा परीक्षकों की नियुक्ति महालेखा-परीक्षक द्वारा की जाती है। साधारणतया दिन प्रतिदिन के कार्यों को छोड़कर शेष के बारे में प्रश्न पूछने के भी अधिकार संसद्-सदस्यों को है। कनाडा में राष्ट्रीय उद्योगों के लिए स्थापित कोई खास समिति नहीं, पर संसद् की जो विभिन्न स्थाई समितियाँ हैं उनमें से उपयुक्त समिति उद्योगों के वार्षिक रिपोर्टों की जाँच करती है।

(4) अमरीका : व्यावसायिक स्वातंत्र्य के देश अमेरिका में भी राज्य द्वारा शुरू किए गए उद्योगों पर वहाँ के सदन अर्थात् "काँग्रेस" को नियन्त्रण का अधिकार दिया गया है। सबसे पहले तो वहाँ यह नियम है कि जब तक कि काँग्रेस की अनुमति न हो सरकार कोई निगम प्रारम्भ नहीं कर सकती। फिर "गवर्नमेन्ट कारपोरेशन कन्ट्रोल एक्ट 1954" के अन्तर्गत काँग्रेस को उद्योगों के बारे में जाँच तथा अपनी समितियों के द्वारा परीक्षा करने का भी अधिकार प्राप्त है। एक नियम यह है कि कारपोरेशन "ब्यूरो आफ़ बजट" के माध्यम से व्यापारिक स्वरूप के अपने बजट सदन के सामने पेश करेंगे। ये बजट "प्रेसिडेन्ट्स बजट" अर्थात् राष्ट्रीय आयव्ययक के एक अंग के रूप में सभा के सम्मुख पेश होते हैं अर्थात् उन पर कांग्रेस की समितियों को भी जाँच करने का अवसर मिलता है। इसके सिवा वहाँ के नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक को भी इन उद्योगों के लेखे की परीक्षा करने का अधिकार है (केवल शर्त यह है कि यह परीक्षा ऐसी होनी चाहिए जैसी कि व्यापारिक विभागों के लिए आवश्यक हो) और वह परीक्षाफल पर अपना प्रतिवेदन भी काँग्रेस को पेश करता है। काँग्रेस की समितियों द्वारा ये प्रतिवेदन जाँचे जाते हैं। काँग्रेस को उद्योगों के पूँजी नियोजन आदि कार्यक्रम के बारे में भी आदेश देने का अधिकार होता है।

(ग) **समीक्षाः**—देखना है कि भविष्य में, भारत के राष्ट्रीय उद्योगों और व्यवसायों पर संसदीय नियंत्रण और कौन से रूप ग्रहण करता है। संसदीय काँग्रेस दल की एक उपसमिति (जिसे कृष्ण मेनन कमेटी कहते हैं) ने स्पष्टतः 1959 में सिफ़ारिश की थी कि प्राक्कलन और लोक लेखा समिति की भाँति एक तीसरी समिति यथाशीघ्र स्थापित की जाए। तदनुसार लोक सभा के सम्मुख एक सरकारी प्रस्ताव भी पिछले साल आ चुका है। पर अभी तक समिति की सदस्यता के बारे में विवाद होने के कारण समिति स्थापित नहीं हो सकी है।

राष्ट्रीय उद्योगों तथा व्यवसायों पर नियंत्रक तथा महालेखापाल की जाँच को लागू करने के बारे में भी अभी विवाद है। अधिकांश राष्ट्रीय उद्योगों के लेखे अब नियन्त्रक द्वारा जाँचे जाते हैं पर कुछ व्यवसाय (निगम) अभी ऐसे है जिन पर नियन्त्रक को जाँच करने का अधिकार नहीं जैसे "स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया" और "जीवन बीमा निगम"। जीवन बीमा निगम का निर्माण करते समय जब इस पहलू पर संसद् में बहस हो रही थी तो तत्कालीन वित्त मंत्री श्री देशमुख ने कहा था (जो बाद में बहुमत से समर्थित होने के कारण संसदीय मत सिद्ध हुआ) कि जीवन बीमा निगम और स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया जैसे राष्ट्रीय व्यवसायों में वहाँ के अधिकारियों को बड़ी मात्रा में कार्य स्वतन्त्रता देने की तब तक आवश्यकता है जब तक कि ये व्यवसाय सफल नहीं हो जाते। अतएव इस अवस्था में महानियन्त्रक की लेखा परीक्षा को, उन पर लागू करना वांछित नहीं होगा।

संसद् में जानकारी के सवाल अब भी पूछे जाते हैं और उनका उत्तर भी मिलता है पर संसद्-सदस्यों का मत है कि उन्हें उस विस्तार से जानकारी नहीं मिलती जितनी कि वे चाहते हैं। कुछ लोगों का यह भी मत है कि भारत में भी इंगलैण्ड की तरह से सलाहकार समितियाँ अथवा उपभोक्ता समितियाँ स्थापित की जानी चाहिएँ। एक विचार धारा यह भी है कि उद्योगों को चाहिए कि वे अपने व्यापारिक ढंग का आयव्ययक संसद् के सम्मुख पेश किया करे ताकि संसद् को पता रहे कि उनका कार्यक्रम क्या है। दामोदर घाटी निगम आदि के बारे में तो यह होता भी है।

3. लोक-लेखा से लेखा परीक्षा का पृथक्करण

लेखा परीक्षा की निष्पक्षता बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि लेखा निर्माण उसी अधिकारी या विभाग की ज़िम्मेदारी न हो जो लेखा की जाँच करता हो। पृथक्करण से अर्थात् लेखा निर्माण और लेखा परीक्षा अलग-अलग होने से, यह फ़ायदा है कि वित्तीय व्यवहार करने वाले शासकीय विभाग वित्त-नियन्त्रण अच्छी तरह कर सकेंगे क्योंकि उन्हें लेखा निर्माण करने के कारण अच्छी तरह मालूम होता है कि व्यय की क्या प्रगति होती रही है। आजकल जहाँ तक लेखा रखने की प्रथा है (जैसा कि पाठकों ने अध्याय 3 में पढ़ा होगा) रेल, रक्षा तथा कुछ अन्य विभागों को छोड़कर शेष में लेखा निर्माण, लेखा परीक्षा विभाग

की ही ज़िम्मेदारी है । इन दोनों ज़िम्मेदारियों के होने की वजह से लेखे की अशुद्धताओं के लिए शासकीय विभाग, लेखा परीक्षा विभाग को ही ज़िम्मेदार बतलाते हैं । दूसरी ओर विभागीय अधिकारियों को लेखा की शुद्धता के बारे में पूरा ज्ञान न होने के कारण लोक लेखा समिति के सम्मुख उन्हें अपने आपको पूरी तरह बचाने का अवसर नहीं मिलता । अतएव विद्वानों का मत है कि लोक लेखा से लेखा परीक्षा का पृथक्करण हो जाना चाहिए ।

(क) **इंग्लैण्ड का उदाहरणः**—इंग्लैण्ड में लेखा से लेखा परीक्षा के पृथक्करण का उदाहरण मिलता है । चूँकि भारत में लेखा तथा लेखा परीक्षा पद्धति काफ़ी हद तक इंग्लैण्ड की पद्धति के अनुरूप है वहाँ की व्यवस्था का नीचे परिचय दिया जाता है।

इंग्लैण्ड में प्रत्येक व्यय विभाग में एक लेखाधिकारी होता है। लेखाधिकारी का काम संसद् द्वारा विभाग के नाम मंजूर की गई राशियों पर नियंत्रण रखना है। नियंत्रण रखने के लिए आवश्यक है कि वह यह जान सके कि किस समय कोष में कितना अवशेष है। इसलिए उसे अपने विभाग की प्राप्तियों और भुगतानों का लेखा भी रखना पड़ता है। क़ायदे से विभाग का उच्चतम अधिकारी ही लेखाधिकारी होता है पर वह अपने रोज़मर्रा के दायित्व को निभाने के लिए एक अधीनस्थ अधिकारी भी नियुक्त करता है जो 'क्लर्क इनचार्ज ऑफ़ एकाउन्ट्स' कहलाता है। वहाँ सारे भुगतान "पे मास्टर जनरल" के नाम जारी किए गए "पोस्टल आर्डर्स" या 'ड्राफ्ट्स' के माध्यम से होते हैं। 'पे मास्टर जनरल' एक तरह का कोषाध्यक्ष है जिसकी आज्ञा से बैंक ऑफ़ इंग्लैण्ड से पैसे निकाले जा सकते हैं। व्यवस्था यह है कि पे मास्टर द्वारा आज्ञा देने के तुरन्त बाद नियंत्रक की उस पर जाँच हो जाती है। बिना नियंत्रक द्वारा जाँच किए बैंक ऑफ़ इंगलैण्ड से धन निकाला ही नहीं जा सकता । इस प्रकार वहाँ पृथक्करण के कारण वित्त का नियंत्रण मूल अवस्था में होता है और बाद में भी। बाद की लेखा परीक्षा की प्रणाली यह है कि जैसे-जैसे प्राप्तियाँ या भुगतान होते रहते हैं वैसे-वैसे उनकी जाँच भी कर ली जाती है।

(ख) **भारत में विगत प्रयासः**—भारत में भी विगतकाल में लेखा को लेखा परीक्षा से पृथक् करने का प्रयास किया गया था। 1924 में एक मुडीमैन कमेटी नियुक्त हुई थी जिसके सामने साक्ष्य देते हुए तत्कालीन महालेखा परीक्षक सर गान्टलेट ने कहा था कि प्रान्तों का स्वातंत्र्य तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक प्रत्येक प्रान्त सरकार अपने लेखे आप न रखे। उस समय भी आज की तरह लेखा निर्माण तथा लेखा परीक्षा एक ही विभाग की ज़िम्मेदारी थी। अतएव गान्टलेट महोदय के कहने का यह अभिप्राय था कि लेखा निर्माण तथा लेखा परीक्षा अलग-अलग कर देना चाहिए । 1923-1924 में पुनः इन्चकेप समिति ने भी सिफ़ारिश की कि संघ वित्त व्यवस्था को दृष्टि में रखते हुए लेखा से लेखा परीक्षा का पृथक्करण होना चाहिए। सरकार ने इस सिफ़ारिश को मान लिया था व तदनुसार 1924 में संयुक्त प्रान्त तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश में लेखा से लेखा परीक्षा का पृथक्करण किया गया था। ये प्रयत्न 1930-31 तक चलते रहे जब उन दिनों भीषण आर्थिक मंदी के कारण उन्हें बन्द करना पड़ा क्योंकि इसमें खर्च अधिक बैठता था। पर बंद करते समय सेक्रेटरी ऑफ़

स्टेट ने स्पष्ट कर दिया था कि सरकार ने यह उलटा कदम केवल बचत की दृष्टि से उठाया था न कि सैद्धान्तिक मतभेद के कारण। 1930 में पुन: साइमन कमीशन ने लेखा से लेखा परीक्षा पृथक्करण की सिफ़ारिश की। साइमन कमीशन के शब्दों में :—

"प्रस्तुत लेखा निर्माण तथा उसकी जाँच उसी अधिकारी द्वारा होती है। यह सिद्धान्ततः ग़लत है और लेखा चाहे प्रान्तों की ज़िम्मेदारी हो या नहीं, लेखा परीक्षा करने वाले बिल्कुल अलग होने चाहिए। विधान के अन्तर्गत महानियंत्रक को खास स्थान दिया गया है और यह वाँछित है कि संघ सरकार तथा प्रान्त सरकार दोनों के लेखे एक बिल्कुल स्वतन्त्र परीक्षक द्वारा जाँच किए जाएँ।"

और भी देखिए,

"भारतीय वित्त-व्यवस्था की विचित्रता के कारण महालेखापाल पर एक तीसरी ज़िम्मेदारी आ जाती है। प्रान्तों को छोड़कर जिनके विषय में "सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट इन काउंसिल" ने विपरीत व्यवस्था की है अन्य क्षेत्रों में लेखा तथा लेखा जाँच दोनों ही एक ही संस्था अर्थात् इन्डियन आडिट डिपार्टमेंट पर लादा गया है। अतएव नियन्त्रक न केवल लेखा परीक्षा के ही लिए ज़िम्मेदार है वरन् वह उसकी परीक्षा भी करता है। सच पूछा जाए तो वही वह अधिकारी है जो क़ायदे से सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट द्वारा संसद् के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्थापित किए जाने वाले लेखों के निर्माण के लिए ज़िम्मेदार है। कदाचित भारत की वैधानिक व्यवस्था के अस्थायित्व का यह परिणाम है कि यह विरोधी कार्य एक जगह हो जिसमें विगत की केन्द्रीभूत शासन प्रणाली की अत्यधिक छाप है। भारत सरकार तथा उत्तर प्रदेश के कई विभागों में लेखा से लेखा परीक्षक का पृथक्करण हो चुका है और जहाँ नहीं हुआ है वह मूल्य वृद्धि के डर से नहीं हुआ है।"

इसी तरह,

"लेखा प्रान्तों द्वारा ही निर्माण किया जाने से प्रान्तों में वांछित वित्तीय उत्तरदायित्व की भावना जागृत होगी, जिससे उन्हें स्थानीय स्वराज्य में भी सफलता मिलेगी। अभी तक यह सुधार पैसे की कमी के कारण स्थगित किया जाता रहा। क्योंकि यह सच है कि उससे प्रान्तों का कुछ खर्च बढ़ जाता है। लेकिन यह सुझाव विचारणीय है क्योंकि जैसे-जैसे उनके कार्यों में वृद्धि होगी वैसे-वैसे उनके लेखों का लेखा परीक्षक के साथ रखा जाना कठिन होता जाएगा। यह टीक नहीं कि सारा का सारा उत्तरोत्तर व्यय वे केन्द्र सरकार पर लादते रहें।"

दुर्भाग्य से ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की संयुक्त संसदीय समिति ने इन सुझावों का समर्थन न किया। इस प्रकार पृथक्करण के प्रयास का अन्त हो गया। इस संसदीय समिति के सुझाव के बाद जो 1935 का अधिनियम बना उसमें केवल यह बतलाया गया कि भविष्य में प्रान्त अगर चाहे तो अपने लेखे अपने आप रख सकते हैं पर ऐसा कोई आदेश न था।

(ग) आधुनिक प्रयासः—इधर लोक लेखा से लोक लेखा परीक्षा के पृथक्करण का पहला प्रयास 1952-53 की लोक लेखा समिति के तीसरे प्रतिवेदन में नज़र आता है। समिति ने उक्त रिपोर्ट में इस प्रकार सिफ़ारिश की है :

(1) यह अनुपयुक्त है कि नियंत्रक तथा महालेखापाल को केन्द्र तथा राज्य सरकारों के लेखा तथा उसकी जाँच दोनों का ही भार सौंपा जाए।

(2) यथाशीघ्र विभिन्न मंत्रालयों तथा मुख्य व्यय करने वाले विभागों के लिए पृथक् लेखा विभाग निर्माण किए जाने चाहिए।

(3) नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक की सहायता तथा अनुमति से यथाशीघ्र केन्द्र तथा राज्यों में लेखा से लेखा परीक्षा के पृथक्करण के कदम उठाए जाने चाहिए।

1954-55 के आयव्ययक बहस में भी लेखा से लेखा परीक्षा के पृथक्करण की काफ़ी चर्चा हुई। 1954 में प्राक्कलन समिति ने भी अपने नवें प्रतिवेदन में पृथक्करण के सम्बन्ध में दृढ़ सिफ़ारिश की। समिति के शब्दों में —

"निम्नलिखित दिशाओं में शीघ्र कदम उठाए जाने चाहिए :

(क) नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक का कर्तव्य सिर्फ़ लेखा परीक्षा करना हो।

(ख) लेखा तथा व्यय के कामों की ज़िम्मेदारी मंत्रालय पर होनी चाहिए।

(ग) शासकीय विभागों को चाहिए कि वे व्यय की प्रगति पर नज़र रखें व शासकीय विभागों के वित्तीय सलाहकारों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे विभाग के लेखे तथा भुगतान के मामले का दायित्व लें।"

इसी बीच महालेखा परीक्षक ने भी अपने विभिन्न भाषणों में पृथक्करण पर जोर दिया। परिणामस्वरूप सरकार ने 1955 से ही पृथक्करण व्यवस्था को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया है। 1955-56 के आयव्ययक भाषण में वित्त मंत्री ने घोषित किया कि "लोक लेखा समिति लेखा के लेखा परीक्षा से पृथक्करण की सिफ़ारिश करती रही है। सरकार का इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। पर ऐसा मौलिक परिवर्तन केवल क्रमिक ढंग से ही हो सकता है। इस नीति को प्रारंभ करने की दृष्टि से सरकार ने महालेखा परीक्षक की सलाह से खाद्य, पुनर्वास तथा निपटान विभाग में अप्रैल 1955 से पृथक् लेखाधिकारी नियुक्त करने का निश्चय किया है।" तब से अभी तक पृथक्करण निम्नलिखित विभागों* में किया जा चुका है :

(1) खाद्य विभाग, खाद्य तथा कृषि मंत्रालय, भारत सरकार (1 अप्रैल, 1955)

---

*(1) पृथक्करण का प्रयास भूतपूर्व सौराष्ट्र सरकार के पुलिस विभाग में भी किया गया था पर सौराष्ट्र के द्विभाषिक बम्बई राज्य में शामिल होने के बाद इस पृथक्लेखा विभाग का अन्त हो गया।

(2) पृथक्करण का प्रयास पश्चिमी बंगाल के शिक्षा तथा शरणार्थी विभाग में भी किया गया था पर 1 नवम्बर, 1957 से वहाँ पृथक्करण का अन्त कर दिया गया, क्योंकि जिस हेतु वह प्रारम्भ किया गया था वह पूर्ण न हुआ, उलटे कहा जाता है कि विभागीय अधिकारियों के आदेश से सम्मानित वित्त सिद्धान्तों की अवहेलना हुई।

(2) पुनर्वास विभाग, निर्माण तथा गृह निर्माण मंत्रालय, भारत सरकार,
(3) पूर्ति विभाग, रक्षा तथा आर्थिक समन्वय मंत्रालय, भारत सरकार,
(4) मुद्रण तथा लेखन सामग्री विभाग, भारत सरकार (1 अक्टूबर, 1955),
(5) राज्य सभा सचिवालय (1 अक्टूबर, 1955),
(6) लोक सभा सचिवालय (1 अक्टूबर, 1955)।

इन विभागों में अब वेतन तथा लेखा अधिकारी(Pay and Accounts Officer) हैं व केवल लेखा परीक्षा महालेखा परीक्षक के अधीन लेखा परीक्षा संचालकों (Directors of Audit) द्वारा होती है।

(घ) **पृथक्करण व्यवस्था:**—पृथक्करण व्यवस्था का अर्थ क्या है? वह संयुक्त लेखा तथा लेखा परीक्षा से किस प्रकार भिन्न है?

संक्षेप में पृथक्करण व्यवस्था को इस प्रकार बतलाया जा सकता है।

(1) मंत्रालय अथवा विभाग का सचिव अपने लेखा विभाग का प्रमुख लेखाधिकारी होता है। उसकी मदद के लिए उसके नीचे वेतन तथा लेखाधिकारी हुआ करते हैं।

(2) वेतन तथा लेखाधिकारी केवल भुगतान व लेखा रचना का काम करते हैं वित्तीय सलाह जैसा कि अगले खण्ड में बतलाया जाएगा वित्त मंत्रालय के अधीन है।

(3) जितने भुगतान होते हैं वे मंत्रालय या विभाग के मार्फ़त सारे भुगतान तथा लेखाधिकारी द्वारा किए जाते हैं न कि लेखा विभाग व खजाने से। भुगतान चेक के माध्यम से होते हैं। भुगतान के पहले उसकी पूरी जाँच कर ली जाती है। विभागों की सारी प्राप्तियाँ भी इसी तरह वेतन तथा लेखा कार्यालय में केन्द्रित होती है अर्थात् यह नहीं कि, विभाग को प्राप्त कुछ राशि किसी खज़ाने में जमा की जाए। वह चेक द्वारा वेतन तथा लेखाधिकारी के नाम ही स्वीकार की जाती है। यदि आवश्यकता पड़े तो बाहरी शहरों में भुगतान बैंक ड्राफ़्ट से भी हो सकते हैं।

(4) पृथक्करण के कारण पृथक्कृत लेखा विभागों में परस्पर लेखा समंजन नहीं होता। जो जिसका लेना देना होता है वह चेक द्वारा तुरन्त ले दे दिया जाता है।

(च) **भविष्य और अपेक्षाएँ:**—यद्यपि सरकार ने सिद्धान्ततः पृथक्करण स्वीकार कर लिया है पर कई कारणों से पृथक्करण की क्या प्रगति होगी यह एक प्रश्न है। 1958-59 के आयव्ययक पर बहस होते समय बहस के उत्तर में वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई, ने प्रसंगतः सदन को बतलाया कि नियन्त्रक * तथा महालेखा

*श्री अशोक चन्दा ने अपनी पुस्तक "इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन" में इस संबंध में अपना मत अधिक विस्तार से दिया है। श्री चन्दा के शब्दों में "शासकीय विभागों को लेखा व्यवस्था सौंपना, लेखा तथा लेखा परीक्षा पद्धति के विद्यमान विकास तथा भारत के खास शासकीय तथा वित्तीय व्यवस्था की पृष्ठभूमि में, एक क्लिष्ट व जटिल प्रश्न है। * * * * लेखा व्यवस्था को विभागों को सौंपने और संयुक्त राजस्व तथा वित्त लेखा बनाने के लिए व्यवस्था करनी होगी।

परीक्षक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पृथक्करण उपयुक्त नहीं। 1955-56 के सिविल विनियोग लेखे पर परीक्षा प्रतिवेदन 1957 में स्वयं महालेखा परीक्षक ने केन्द्रीय सरकार के विभागों में इसके प्रचलन को "एक प्रयोग" बतलाया है। कुछ लोगों ने यह मत प्रगट करना भी प्रारम्भ किया है कि यदि विद्यमान वित्तीय तथा लेखा नियम का कुशलता से उपयोग किया जाए तो पृथक्करण की कोई आवश्यकता ही नहीं। उनका कहना है कि सारी कठिनाई विद्यमान नियमों के पूरी तरह पालन न करने से ही उत्पन्न होती है।

4. वित्तीय अधिकारों का प्रत्यायोजन (Delegation of Financial Powers)

जब राज्य की धारणा एक संरक्षक संस्था (a Police State) थी तब वित्तीय अधिकारों के विस्तार का कोई प्रश्न न उठता था। उलटे, जितने कम अधिकार दिए जाते थे उतने ही शासन और दमन की दृष्टि से उचित होता था। पर कल्याणकारी राज्य की कल्पना आते ही (जिसमें प्रत्येक विभाग से यह आशा की जाती है कि वे विकासोन्मुखी कार्य में तत्परता से संलग्न होंगे) वित्तीय अधिकारों के प्रत्यायोजन का प्रश्न जागृत हो उठा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसकी आवश्यकता बतलाते हुए इस प्रकार कहा गया है :

> "किसी आर्थिक विकास की योजना में राज्य व्यय में काफी वृद्धि करनी पडती है। अतएव राष्ट्रीय योजना के संदर्भ में सरकारी खर्चे में मितव्ययता तथा नियन्त्रण (जो पहले से ही मान्य है) और भी अधिक हो जाते है। वित्तीय नियन्त्रण के उद्देश्य ये हैं: (1) अर्थोपायों का अपव्यय न होना। (2) धन का अनुचित उपयोग न होने देना। (3) व्यय से पूरे परिणाम प्राप्त कराना। शासन में इन उद्देश्यों की पूर्ति की ज़िम्मेदारी प्रत्येक विभाग पर समानता से है यद्यपि वित्त विभाग की इसमें खास ज़िम्मेदारी होती है। इस बात की आवश्यकता हमेशा होती है कि प्रत्येक स्तर पर वित्तीय अधिकारी तथा शासकीय अधिकारी किसी प्रस्ताव के बनने के पहले व उस पर धन व्यय करने के पहले सलाह व सहयोग से काम लें। प्रथम पंचवर्षीय योजना के कुशल संपादन के लिए यह आवश्यक है कि वित्तीय प्रक्रिया इस प्रकार की हो कि एक ओर तो अपव्यय पर उचित रोक हो और दूसरी ओर योजना के कार्यरूप देने में कोई रुकावट न महसूस

जहाँ संविधान ने नियंत्रक तथा महालेखापाल को लेखा परीक्षा के लिए चाहे फिर वह केन्द्रीय व्यवहारों की हो अथवा राज्यीय व्यवहारों उसने लेखा निर्माण के विषय में भी नियंत्रक के कुछ समन्वयकारी कर्तव्यों को आवश्यक समझा है। ये कार्य (लेखा तथा लेखा परीक्षा) दोनों के लिए एक ही संस्था रख कर ठीक तरह से संपादित किए जा सकते हैं या दो अलग संस्थाएँ निर्माण कर जिनमें कर्मचारियों की आपस में बदली हो—यह अच्छी तरह से विचार करने की बात है। इसी तरह लेखा निर्माण से अभिज्ञ लोग लेखा परीक्षा भी कुशल तरीक़े से कर सकेंगे या नहीं यह विचारणीय है। भाषावार राज्यों की रचना जिनमें राज्य का काम तद्‌राज्यीय भाषाओं में होगा—एक नई समस्या उपस्थित करता है। सारे पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, यह उचित प्रतीत होता है कि जब तक स्थिति स्पष्ट न हो जाए कोई परिवर्तन (विद्यमान व्यवस्था में) न किया जाना ही वांछनीय है।" **(इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, अशोक चन्दा, पृष्ठ, 250)**

हो। लेकिन इस विषय पर सावधानी से जाँच की आवश्यकता है और केवल विभिन्न परिस्थितियों में सूक्ष्म अध्ययन के बाद ही खास उपाय सुझाए जा सकते हैं। इसलिए हमारी राय है कि राज्य तथा केन्द्रीय सरकारें दोनों वहाँ के वित्तीय विभागों द्वारा योजना आयोग की सहायता से वित्तीय नियमों की परीक्षा करें।"

आज वित्तीय अधिकारों के विस्तार की आवश्यकता से तो सभी सहमत है पर विवाद इस बात पर है कि क्या प्रत्यायोजन क्रमिक होना चाहिए। उसमें बृहत् परिवर्तन की आवश्यकता है? महानियन्त्रक तथा संसद् की समितियों का एक पक्ष यह है कि प्रत्यायोजन बृहत् होना चाहिए। दूसरा पक्ष यह है कि विस्तार क्रमिक होना चाहिए।

(क) **वित्तीय अधिकारों की परिभाषा:**—वित्तीय अधिकार क्या है और क्यों दिए जाते हैं?

वित्तीय अधिकार वे हैं जो किसी अधिकारी को व्यय कराने के लिए क्षमता प्रदान करते हों। किसी कार्यालय में एक उच्च अधिकारी ने एक विशेष पत्र पर अपने अधीन अधिकारी को हस्ताक्षर करने का अधिकार दे दिया हो तो वह वित्तीय अधिकार नहीं है क्योंकि उसमें कोई वित्तीय परिणाम नही है पर यदि उसे किन्हीं व्यक्तियों को नियुक्त करने का अधिकार दे दिया जाए तो वह वित्तीय अधिकार हो जाता है क्योंकि नियुक्ति का अर्थ उस व्यक्ति की हर माह तनख्वाह देना है जिसके लिए वित्त की आवश्यकता होती है। साधारणतया प्रत्येक वित्तीय अधिकार का अधिष्ठाता वित्त मंत्रालय ही है (क्योंकि उन्हें ही अर्थोपायों का इन्तज़ाम करना पड़ता है) पर सुगमता से शासन चलाने के लिए ये अधिकार कुछ हद तक विभागों को भी प्रत्यायोजित किए जाते हैं क्योंकि यदि प्रत्येक छोटी चीज़ के लिए वित्त मंत्रालय की अनुमति लेने जाना हो तो कार्य में बाधा पड़ सकती है।

वित्तीय अधिकारों के नमूने नीचे दिए गए हैं:

(1) जगह निर्माण करने का अधिकार,

(2) विनियोग तथा पुनर्विनियोग सम्बन्धी अधिकार,

(3) फुटकर व्यय अनुमति के अधिकार,

(4) हानि को बट्टे-खाते में डालने का अधिकार,

(5) भण्डार क्रय-विक्रय के अधिकार।

भारत सरकार के वित्तीय अधिकारों का विवरण 'वित्तीय अधिकारों की पुस्तिका, (Book of Financial Powers) में दिया हुआ है। इन अधिकारों के प्रत्यायोजन के स्रोत "सामान्य वित्तीय नियमावली", "खज़ानों के नियम", "सामान्य भविष्य निधि नियम"(General Providend Fund Rules), आधारभूत नियम(Fundamental

Rules) तथा अनुपूरक नियम (Supplementary Rules) आदि हैं। यहाँ सारे अधिकार प्रत्यायोजनों को तो देना संभव नहीं पर उदाहरण* के तौर पर कुछ का उल्लेख किया जाता है :

(1) जगह निर्माण करने का अधिकार :

(अ) प्रत्येक मंत्रालय को दूसरी, तीसरी और चौई श्रेणी की स्थाई जगहों के निर्माण करने के सम्बन्ध में पूरा पूरा अधिकार है। अर्थात् इस सम्बन्ध में उन्हें वित्त मंत्रालय के पास नहीं जाना पड़ता।

(ब) अस्थाई जगहों के विषय में मंत्रालयों को इस प्रकार अधिकार हैं : प्रथम श्रेणी की जगह : 2,250 रुपए प्रतिमाह वेतन तक की जगह निर्धारित अवधि तक।

श्रेणी दो, तीन व चार की जगहें : किसी नियत अवधि तक।

(2) विनियोग तथा पुर्नविनियोग सम्बन्धी अधिकार :

सामान्य वित्तीय नियमावली के अन्तर्गत प्रत्येक मंत्रालय को विनियोग अथवा पुर्नविनियोग का पूरा अधिकार होता है। पर छोटे अधिकारियों को इस विषय में पूरे अधिकार नहीं होते। जैसे यदि कोई निर्माण कार्य एक लाख से कम का हो तो उस पर डाक तार महानिदेशक विनियोग कर सकता है लेकिन अधिक राशि के कार्य के लिए उसे अपने मंत्रालय की अनुमति लेनी पड़ेगी। मंत्रालयों के लिए भी यह आवश्यक है कि यदि वे 'अधिकारियों के वेतन' व 'सिब्बन्दीका वेतन' नामक प्राथमिक घटकों में पुर्नविनियोग द्वारा अधिक धन उपलब्ध कराना चाहते हों तो उसके लिए वित्त मंत्रालय की पूर्व सम्मति होनी चाहिए। इसी तरह यदि किसी पुर्नविनियोग की मात्रा एक लाख रुपए से अधिक हो किंतु वह मूल विनियोग की पाँच प्रतिशत से अधिक बढ़ानी हो तो उसके लिए भी वित्त मंत्रालय की पूर्व सम्मति चाहिए।

(3) विविध व्यय अनुमति के अधिकार :

(अ) मंत्रालयों को इस संबंध में पूरे अधिकार हैं। पर मंत्रालय के अधीन छोटे विभागों के प्रमुखों को इस सम्बन्ध में उतने ही अधिकार होते हैं जितने कि तत्सम्बन्धित मंत्रालय ने उन्हें प्रत्यायोजित किए हों।

(ब) मंत्रालयों को अधिकार है कि वे 5,000 रुपए तक की छोटी स्थानीय चीज़ें प्रति वर्ष खरीद सकें। इस विषय में अधीनस्थ विभागाध्यक्षों को प्रतिवर्ष केवल 2,000 रुपए तक की खरीद के अधिकार हैं।

---

*इन उदाहरणों के लिए वित्तीय अधिकारों की पुस्तिका तथा वित्त मंत्रालय का "वित्तीय नियंत्रण तथा आयव्ययक विषयक पुनरावृत्त व्यवस्था" (Revised arrangement for budgetary and financial control आदेश एक साथ पढ़ना चाहिए।

(4) **हानि को बट्टे खाते में डालने का अधिकार :**

(अ) मंत्रालयों को अधिकार है :

(क) चोरी या जालसाज़ी के कारण 10,000 रुपए तक की अप्रत्यादेय (Irrecoverable) हानि व अन्य कारणों के कारण 25,000 रुपए की अप्रत्यादेय हानि

(ख) 10,000 रुपए तक की राजस्व हानि अथवा अप्रत्यादेय पेशगी

(ग) 10,000 रुपए तक की कमी या मूल्य-ह्रास को बट्टे खातें में डालना।

(ब) अन्य अधिकारियों को इतने अधिकार नहीं हैं जैसे महानिदेशक पुरातत्त्व विभाग केवल 1,000 रु० तक की जालसाज़ी के कारण हुई अप्रत्यादेय हानि का अपलेखन कर सकता है।

(5) निर्माण-कार्य पर व्यय का अधिकार :

(अ) मौलिक निर्माण के सम्बन्ध में निर्माण तथा आवास मंत्रालय को व्यय का पूरा अधिकार है पर यातायात तथा संचार मंत्रालय को इस सम्बन्ध में सीमित अधिकार हैं।

(ब) विद्यमान सिचाई नहर व बाँध योजना के विकास के सम्बन्ध में निर्माण तथा आवास मंत्रालय को पूरे अधिकार है।

(ख) अधिकारों के बृहत् प्रत्यायोजन का पक्षः—सर्वप्रथम 1954 में लोक सभा की प्राक्कलन समिति ने वित्तीय अधिकारों के बृहत् विस्तार की सिफ़ारिश की थी। समिति के नवें प्रतिवेदन में कहा गया था कि एक बार आयव्ययक में किसी प्रस्ताव को शामिल करते समय वित्त मंत्रालय की पूरी अनुमति प्राप्त कर लेने के बाद व्यय प्रस्ताव के संपादन और तत्सम्बन्धी वित्तीय जाँच की पूरी ज़िम्मेदारी शासकीय मंत्रालय पर छोड़ देनी चाहिए अर्थात् वित्त मंत्रालय से पुनः अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसके लिए मंत्रालयों में उचित वित्तीय सलाहकार होने चाहिए जो शासकीय विभागों के व्यय प्रस्तावों की जाँच करते समय अच्छी सलाह दे सकें।

1956 में नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक ने भी केन्द्रीय सरकार के सिविल विनियोग लेखे के परीक्षा प्रतिवेदन (भाग 1) में अपना विचार प्रगट किया था कि वित्त मंत्रालय के वित्तीय अधिकारों का प्रत्यायोजन होना चाहिए और योजना अधिकारियों तथा शासकीय मंत्रालयों को व्यय की अनुमति के अधिकाधिक अधिकार दिए जाने चाहिए। प्रतिवेदन के शब्दों में :

"(1) वित्तीय जाँच दो अवस्थाओं में होनी चाहिए :

(क) स्थूल तथा सर्वांगीण जाँच जो वित्त मंत्रालय द्वारा की जाए, तथा

(ख) विस्तृत जाँच जो शासकीय विभागों में विशेषज्ञों द्वारा होनी चाहिए।

(2) शासकीय विभागों में आन्तरिक वित्त सलाहकार होने चाहिए जिन्हें वित्तीय मामलों का अनुभव हो।

(3) शासकीय तथा योजना अधिकारियों को हर एक स्तर पर अधिकाधिक अधिकार दिए जाने चाहिए ।

(4) प्रत्येक अधिकारी को चाहिए कि वह एक "अनुमति पत्रक" (अर्थात् वे अनुमतियाँ जो उसने दी हों) बनाए जिसे वह उच्चतर अधिकारी को पेश करे ताकि उच्चतर अधिकारी जान सके कि प्रत्यायोजित अधिकारों का उपयोग किस प्रकार हुआ है ।

(5) राज्यों को परियोजनाओं की विस्तृत जाँच करने की कोई आवश्यकता नहीं । केन्द्रीय सरकार को इस निरीक्षण में केवल दो बातो का ही ध्यान रखना चाहिए :

(अ) सम्बन्धित मत्रालय ने उसकी शासकीय तौर पर परीक्षा कर ली है और योजना आयोग ने यह देख लिया है कि वह परियोजना की परिधि में है ।

(ब) राज्य वित्त विभागों द्वारा दर, कार्यस्तर, आदि के बारे में दिए गए प्रमाणपत्रों के आधार पर एक स्थल निरीक्षण होना चाहिए ।"

1956 में ही अपेलबी महोदय ने सिफ़ारिश की कि अधिकारो का अधिक प्रक्रामण होना चाहिए। अपेलबी महोदय का मत था कि कई अवस्थाओं में वित्तीय जाँच करना शासकीय विभागों या योजना अधिकारियों की बढ़ाकर आँकड़े देने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना है । यह स्पष्ट है कि जाँच तभी होती है जब शासकीय विभाग या उनके अधीन अधिकारी किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सक्षम नहीं माने जाते ।

(ग) **अधिकारों के क्रमिक प्रत्यायोजन का पक्षः**—वित्तीय अधिकारों के क्रमिक विस्तार के पक्ष वालों का कहना है कि वित्तीय अधिकार तब तक बड़े पैमाने पर नहीं बढ़ाए जा सकते जब तक शासकीय मंत्रालय व विभाग जाँच की पूरी-पूरी जिम्मेदारी नहीं ले लेते । ज़िम्मेदारी लेने के लिए उस विषय की जानकारी होनी चाहिए व उसके लिए उचित सलाहकार होने चाहिए । भारत सरकार ने सलाहकारों की तो नियुक्ति की है पर आलोचकों का कहना है कि ये सलाहकार अब भी अपने को वित्त मंत्रालय का अंग मानते हैं और शासकीय विभागों को इनसे वह सलाह नही मिल पाती जो कि वांछनीय है। इंगलैण्ड में (जहाँ का उदाहरण प्रायः इस सम्बन्ध में दिया जाता है) प्रत्येक विभाग का प्रमुख एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसे वित्त मंत्रालय का अनुभव हो । दूसरे उनके यहाँ बिल्कुल स्वतन्त्र वित्तीय सलाहकार होते हैं जो शासकीय विभाग के अंग होते हुए भी वित्तीय दृष्टिकोण से परिचित होते हैं ।

दूसरा तर्क यह है कि वित्त मंत्रालय में अभी जो प्रत्यायोजित अधिकारों के बाहर के प्रस्तावों की जाँच होती है उसमें एक सामूहिक दृष्टिकोण का लाभ होता है अर्थात् जैसे नियुक्ति का मामला हो तो वित्त मंत्रालय में ऐसे प्रस्ताव भेजने का यह लाभ होता है कि अन्य तत्समान परिस्थितियों में क्या निर्णय लिया गया था या एक का तत्समान अन्य परिस्थितियों में क्या परिणाम हो सकेगा वे इस बात का ध्यान रख पाते है। इसे यदि

शासकीय विभाग को ही तय करने के लिए छोड़ दिया जाए तो प्रत्येक विभाग में अपने अलग नियम होंगे और सरकारी विभागों में जो एक आचार की समानता रहती है वह न रह पाएगी।

तीसरा तर्क यह है कि शासकीय विभाग चाहे कितनी ही जिम्मेदारी के साथ कार्य संपादन करना सीख ले चूँकि वित्त मंत्रालय को ही अर्थोपायों का इन्तजाम करना पडता है इसलिए अन्ततोगत्वा वित्त मंत्रालय के हाथ में कुछ अधिकार तो होने ही चाहिए जो अन्य मन्त्रालय को न हों। इस सम्बन्ध में इंग्लैण्ड की हैल्डेन समिति ने बड़े चित्रमय शब्दों में कहा है "यदि भण्डार को भरपूर रखने की जिम्मेदारी वित्त मंत्री की है तो उसमें से निकलने वाली राशि पर नियन्त्रण का अधिकार भी वित्त मंत्री का होना चाहिए।"

(घ) **समीक्षा** :—जहाँ तक अधिकारों के प्रत्यायोजन के विषय में वास्तविक क़दमों का सम्बन्ध है भारत सरकार ने पिछले पाँच सालों में वित्तीय अधिकारों में काफ़ी विस्तार किया है जैसा कि दस साल पहले के "वित्तीय अधिकारों की पुस्तिका" व आज के "वित्तीय अधिकारों की पुस्तिका" की तुलना से प्रगट होगा। लोक लेखा समिति के आठवें प्रतिवेदन* के परिणामस्वरूप तो सरकार को प्रत्यायोजन के प्रश्न पर

* समिति के शब्दों में—

"समिति वित्त मंत्रालय के इस डर से सहमत नही है कि अन्य मंत्रालयों द्वारा योजनाओं के प्रस्तावों की परीक्षा करने के लिए जो समय लगेगा वह योजना के कार्यान्वित करने में बाधा उत्पन्न करेगा। समिति का मत है कि योजना के शीघ्र व मितव्ययता के साथ संपादन होने के लिए वित्तीय अधिकारों का प्रक्रामण अत्यधिक आवश्यक है। उक्त परिवर्तन से योजना के संपादन में लोच व सुरूपता आएगी जो अपरिणामकारक व व्यर्थ के व्यय को बचाने के लिए अत्यधिक वांछनीय है। वित्त मंत्रालय व शासकीय मंत्रालयों के अधिकारियों में आपस में आदान प्रदान होना चाहिए ताकि ऐसे अधिकारी उपलब्ध हो सकें जो शासकीय व वित्तीय दोनों दृष्टि से योग्य हों।

वित्तीय नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है कि वित्त मंत्रालय की सलाह तुरन्त ली जाए, जैसे ही यह प्रगट हो कि धन आदि निश्चित काल में व्यय नहीं किया जा सकता। अतएव शासकीय विभागों को पुनर्विनियोग के मामले में वित्त मंत्रालय की सलाह के बिना कार्य करने का अधिकार न होना चाहिए।

समिति का मत है कि कार्यकुशलता व एकरूपता की दृष्टि से यह आवश्यक व वांछनीय है कि वेतन मान, वित्तीय तथा नौकरी की शर्तों आदि के मामलों पर वित्त मंत्रालय का अधिकार हो। यदि उपरोक्त विषयों में सम्मानित नियमों का उल्लंघन होता हो तो वित्त मंत्रालय की सलाह लेनी चाहिए।"

(**देखिए**, लोक लेखा समिति 1957-58, द्वितीय लोक सभा का "आयव्ययक प्राक्कलन तथा वित्तीय नियत्रण" विषय पर आठवाँ प्रतिवेदन, पृष्ठ 6-7)।

नए सिरे से जाँच करनी पड़ी और उन्होंने पृष्ठ 195 पर बतलाए गए वित्तीय नियंत्रण तथा आय व्यय के पुनरावृत्त व्यवस्था संबंधी वित्त मंत्रालय के आदेश के अनुसार विभागों को काफ़ी हद तक अधिकार दिए भी हैं। इन प्रत्यायोजनों के प्रति लोगों को काफ़ी संतोष भी रहा है पर अभी देखना है कि यह प्रत्यायोजना व्यवस्था कहाँ तक सफल होती है क्योंकि यह व्यवस्था अभी केवल प्रयोग के स्तर पर है। प्रत्यायोजन के बृहत्तर स्वरूप वालों का मत है कि जहाँ एक ओर व्यय के अधिकारों में काफ़ी प्रत्यायोजन हुआ है वहाँ दूसरी ओर पुनर्विनियोग के अधिकारों पर वृथा नियंत्रण का बल दिया गया है। इसी प्रकार उनकी शिकायत है कि प्रत्यायोजन की पुनर्व्यवस्था में स्वतंत्र वित्तीय सलाहकार नियुक्त किए जाने की व्यवस्था भी प्रयोग में नहीं लाई जा रही है और अब भी वित्तीय सलाहकार मंत्रालयों के अन्तर्गत न रहकर वित्त मंत्रालयों के अधीन हैं।

० ० ०

परिशिष्ट 1

सरकारी विभाग अथवा व्यवसाय जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने व्यापारिक होना स्वीकार किया है

1. डाक तार विभाग।

2. रेल विभाग।

3. सिंचाई, जलमार्ग, बाँध के काम, जिनके लिए राजस्व व पूंजी लेखे अलग-अलग रखे जाते हों।

4. इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस (जिसमें नासिक का सेन्ट्रल स्टैम्प स्टोर भी शामिल है)।

5. करेन्सी नोट प्रेस, नासिक रोड।

6. इण्डियन वेटिरिनरी इन्स्टीट्यूट, इज्ज़तनगर का बायलॉजिकल प्रोडक्ट विभाग।

7. आल इण्डिया रेडियो (मॉनेटरिंग कार्यालय को छोड़कर जिसकी गणना सेवा विभाग में की जाती है)।

8. रेडियो के प्रकाशन।

9. इण्डियन लाइटहाउस एडमिनिस्ट्रेशन।

10. गवर्नमेंट डेरी फार्म, पोर्ट ब्लेयर, अण्डमान।

11. अण्डमान का मरीन विभाग।

12. अण्डमान का शिपिंग विभाग।

13. अण्डमान का जंगल विभाग।

14. बंगाल पाइलट सर्विस, कलकत्ता।

15. उद्योग तथा व्यापार मंत्रालय के नमक-कारखाने।

16. ओवरसीज़ कम्यूनिकेशन सर्विस।

17. भोपाल एलक्ट्रिसिटी सप्लाई।

18. हिमाचल प्रदेश यातायात विभाग।

19. सिरमूर रोसीन व तारपीन फैक्टरी।

○ ○ ○

परिशिष्ट 2

भारत की आकस्मिकता निधि सम्बन्धी नियम

"भारतीय आकस्मिकता निधि अधिनियम 1950 के उपबन्ध 4 के द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित नियम विहित करती है :

भारतीय आकस्मिकता निधि नियम

1. ये नियम भारतीय "आकस्मिकता निधि सम्बन्धी नियम" कहलाएगा।

2. भारत की आकस्मिकता निधि, राष्ट्रपति की मार्फत, भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक विभाग के सचिव के अधीन होगी।

3. निधि की जमा में से रेलों के आकस्मिकता व्यय के हेतु समय-समय पर उतनी राशि रेलवे के वित्त आयुक्त को दी जाएगी जितनी कि तय की जाए।

4. निम्नलिखित नियम 6 के अधीन रहते हुए निधि से की जाने वाली प्रत्येक निकासी के लिए आवेदन भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक विभाग के सचिव को भेजे जाएँगे। आवेदन में निम्नलिखित बातें होंगी :

(1) अधिक व्यय-आवश्यकता का विवरण।

(2) परिस्थितियों का ज़िक्र, जिनकी वजह से इस अधिक व्यय आवश्यकता का आयव्ययक में अनुमान नही लगाया जा सका।

(3) इस व्यय को विलम्बित क्यों नहीं किया जा सकता।

(4) निधि से माँगी जाने वाली राशि जिसके साथ वर्ष अथवा वर्ष के भाग के लिए व्यय प्रस्ताव पर होने वाले अन्य व्यय का विवरण दिया गया हो।

(5) अनुदान अथवा विनियोजन जिसके अन्तर्गत आगे चलकर अनुपूरक माँग ली जाने वाली हो।

5. उपरोक्त नियम 4 के अनुरूप रेलवे के लिए माँगी जाने वाली राशियों के लिए, आवेदन पत्र वित्त आयुक्त के नाम भेजे जाने चाहिए।

6. निधि से राशियाँ केवल आकस्मिक व्यय के लिए, जिसमें वार्षिक वित्त विवरण में न शामिल की गई नवीन सेवाओं के व्यय भी होंगे, दी जाएँगी।

7. निधि से प्रदत्त राशियों के बारे में, उनकी मात्रा, सम्बन्धित अनुदान या विनियोग का नाम, व्यय के प्राथमिक घटक, जिन पर वह राशि उपयुक्त होने वाली

हो आदि की जानकारी वित्त विभाग अथवा वित्त आयुक्त रेलवे द्वारा लेखाधिकारी तथा लेखापरीक्षाधिकारी को प्रदाय आज्ञा, की प्रतिलिपि के रूप में दी जाएगी। इसके सिवा, इस आज्ञा की प्रतिलिपियाँ, महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व तथा निदेशक, रेल लेखा परीक्षा को भी अलग से भेजी जाएँगी।

8. इस प्रकार की अदायगी से किए हुए व्यय के लिए अनुपूरक माँग अदायगी के तुरन्त बाद होने वाले संसद् के अधिवेशन में पेश की जाएँगी और जैसे ही संसद् ने उन्हें अनुपूरक विनियोग विधेयक पास कर स्वीकृति दी हो वे अदायगियाँ निधि में वापस लौटा दी जाएँगी।

नोट 1:—आकस्मिकता निधि से किए गए व्यय के लिए संसद् के सम्मुख प्राक्कलन प्रस्तुत करते समय प्राक्कलनों के साथ निम्नलिखित आशय की एक टिप्पणी भी दी जाएगी :

" आकस्मिकत निधि से.......... रुपए की अदायगी की गई थी और उतनी ही राशि अब निधि में वापस डालने के लिए प्रार्थना है।"

नोट 2 :—यदि वार्षिक वित्त वित्तरण में अप्रस्तावित किसी नवीन सेवा पर व्यय पूर्णतः अथवा अंशतः किसी विनियोग से हुई बचत से पूरा किया जा सकता हो, तो प्राक्कलन प्रस्तुत करते समय निम्न लिखित टिप्पणी दी जानी चाहिए :

"व्यय एक नवीन सेवा के निमित्त है। आकस्मिकता निधि से ....रुपए की अदायगी की गई थी, और अब उतनी राशि निधि में वापस डालने की आवश्यकता है।"

" ....रुपए पुनर्विनियोग से प्राप्त किए जा सकते हैं और अब केवल एक प्रतीक अनुदान की आवश्यकता है।

अथवा

"उपरोक्त राशि का कुछ भाग अर्थात्......अनुदान के अन्तर्गत हुई बचतों से प्राप्त किया जा सकता है और शेष के लिए अर्थात्. . . . . . . के लिए अनुदान की आवश्यकता है।"

8-अ. यदि किसी समय उपर्यूक्त नियम 7 में विहित विधि के अनुसार निधि से अदायगी दी गई हो, पर उपर्युक्त नियम 8 में विहित कोई प्रक्रिया होने के पहले, यह अनुभव किया जा रहा हो कि अदायगी का कुछ अंश, या पूरी की पूरी राशि उपयोग में न लाई जाने वाली हो, तो अदायगी देने वाले अधिकारी को अदायगी की आज्ञा रद्द करने या उसमें हेरफेर करने के लिए निवेदन करना पड़ेगा।

8-ब. विनियोग (लेखानुदान) अधिनियम में शामिल सेवाओं पर परिनियत व्यय से अधिक व्यय होने की अवस्था में, उनके लिए निधि से ली गई

अदायगियाँ, साल भर के व्यय के लिए (जिसमें निधि से लेकर किया गया अतिरिक्त व्यय भी शामिल है) पास किए गए विनियोग अधिनियम के पास होते ही, वापस कर दी जाएँगी।

9. अदायगी की वापसी की आज्ञा की, जिसमें पूर्वोल्लिखित अदायगी की आज्ञा की तिथि तथा संख्या तथा उपरोक्त नियम 8 में बतलाए गए पूरक विनियोग अधिनियम का भी उल्लेख किया जाएगा, एक प्रतिलिपि वित्त मंत्रालय तथा रेलवे के वित्त आयुक्त द्वारा महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व तथा निदेशक रेल लेखा परीक्षा को भेजी जाएगी।

10. निधि से हुए व्यवहारों का लेखा इन नियमों में संलग्न प्रपत्र के रूप में वित्त मंत्रालय द्वारा रखा जाएगा (देखिए प्रपत्र अगले पृष्ठ पर)।

नोट :—रेलवे के वित्त आयुक्त भी उसी प्रकार उपरोक्त नियम 3 में विहित विधि के अनुरूप दी गई राशि के व्यवहारों के लिए एक लेखा रखेंगे।

11. निधि से दी राशियों के वास्तविक व्यय का लेखा निधि के लेखे में उसी विस्तार से लिखा जाएगा जैसाकि यदि वह व्यय समेकित निधि से हुआ होता तो लिखा जाता।

o o o

प्रपत्र (अ)

भारत की आकस्मिकता निधि

निधि की राशि........रुपए

रेलवे के वित्त आयुक्त को सौंपी गई राशि............रुपए

क्रम संख्या	व्यवहार की तिथि	अनुदान अथवा विनियोग का नाम व संख्या	अदायगी के लिए आवेदन की संख्या और तिथि	अदायगी मंजूर करने वाली आज्ञा की संख्या और तिथि	अदायगी की मात्रा	अधिक व्यय की व्यवस्था करने वाले अनुपूरक विनियोग अधिनियम का विवरण	वापस की गई अदायगी की मात्रा	प्रत्येक व्यवहार के बाद का अवशेष	संबंधित अधिकारी के हस्ताक्षर	टिप्पणी
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11

नोट 1—प्रत्येक व्यवहार के बाद अवशेष निकाले जाने चाहिए।

नोट 2—अदायगी देते समय संख्या काली स्याही में लिखी जानी चाहिए व वापस मिलने पर लाल स्याही में।

परिशिष्ट 3

सार्वजनिक खाते में शामिल प्रारक्षित निधियों तथा अन्य जमा व अग्रिम राशियों की सूची

1. सेवा निधियों की जमा।
2. डाकखाने की बचत बैंक की जमा।
3. रक्षा बचत बैंक की जमा।
4. राज्य भविष्य निधियाँ।
5. रेलवे बजट के अनुसार, रेल मूल्य ह्रास और राजस्व प्रारक्षित निधियाँ।
6. डाक तार विभाग की नवीकरण प्रारक्षित निधि।
7. टेलीफ़ोन विकास निधि।
8. भारतीय वित्त अधिनियम 1942 के अधीन अतिरिक्त लाभ-कर की ऐच्छिक जमा।
9. 1943 के 16वें अध्यादेश के अधीन अतिरिक्त लाभकर की अनिवार्य जमा।
10. अतिरिक्त लाभकर के अनन्तिम निर्धारण के बाद की प्रत्याशित जमा।
11. अतिरिक्त लाभकर के अदायगी में जमा।
12. आयकर अदायगी में जमा।
13. आयकर अधिनियम की धारा 18क के अधीन कर की अग्रिम अदायगी।
14. भारतीय राजाओं के निमित्त न्यासों में जमा।
15. चाँदी परिशोध के लिए प्रारक्षित निधि।
16. केन्द्रीय सड़क निधि।
17. कच्छ कल्याण निधि।
18. कपास कृषक कल्याण निधि।
19. सूती वस्त्र निधि।
20. चीनी (अस्थाई) उत्पादन कर निधि।
21. चीनी उद्योग के संरक्षण के लिए प्रारक्षित निधि।
22. मूँगफली खेतिहर सहायता निधि।
23. अलसी खतिहर सहायता निधि।

24. हाथकरघा और खादी उद्योग विकास निधि।
25. अमरीकी उधार गेंहूँ की बिक्री की रकम से स्थापित निधि।
26. कोलम्बो योजना के अधीन प्राप्त गेंहूँ की बिक्री की रक़म से स्थापित निधि।
27. कोलम्बो योजना के अधीन सहायता की दूसरी मदों से स्थापित निधि।
28. भारत-अमरीकी तकनीकी सहयोग क़रार के अधीन मिली सहायता से स्थापित निधि।
29. अमरीकी उधार वस्तुओं की बिक्री से स्थापित निधि।
30. मीन क्षेत्र के सामुदायिक विकास के लिए नारवे से प्राप्त सहायता की निधि।
31. "पब्लिक ला संख्या 480" (P. L. 480) के अधीन प्राप्त वस्तुओं की बिक्री की रकम से स्थापित निधि।
32. कोयला खानो के श्रमिको के आवास और सामान्य कल्याण के लिए निधि।
33. अवरक़ खान श्रमिक कल्याण निधि।
34. कोयला उत्पादन निधि।
35. लोहा और इस्पात समीकरण निधि।
36. एकीकृत वेतन क्रम के अधीन अस्थाई लिपिक कर्मचारियों को बोनस देने के लिए निधि।
37. कर्मकार हित निधि।
38. डाकखाना सर्टिफिकेट बोनस निधि।
39. स्वायत्त संस्था विषयक जमा।
40. असैनिक जमा।
41. 1939 के महायुद्ध सम्बन्धी लेनदेन की निधि।
42. भारतीय सैनिकों का आस्थगित वेतन जमा।
43. युद्धोत्तर पुनर्निर्माण निधि।
44. बर्मा सरकार के साथ हिसाब खाते की जमा।
45. रिज़र्व बैंक के साथ हिसाब खाते की जमा।
46. बट्टा शोधन निधि।
47. उधार ऋणों पर बोनस।
48. धनादेश (Cheques) और हुण्डियाँ।
49. एक रुपए के परिचालित नोटों का मूल्य।

परिशिष्ट 4

भारत सरकार तथा बर्मा सरकार के बीच ऋण का क़रार

"क्योंकि बर्मा संघ की सरकार ने (जिसे इसमें आगे बर्मा सरकार कहा गया है) भारत सरकार से ऋण के लिए प्रार्थना की है और क्योंकि भारत सरकार ऐसी सहायता देने की इच्छुक है जिसे देना उसकी शक्ति में हो,

इन दोनों सरकारों ने एक क़रार करने का संकल्प किया है और निम्नलिखित व्यक्तियों ने, अर्थात्,

भारत सरकार ने : वित्त मंत्री श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख को,

बर्मा सरकार ने : नई दिल्ली में बर्मा संघ के असाधारण राजदूत तथा पूर्णाधिकारी तत्र भवान् सीतु उ आंग सो को,

अपना पूर्णाधिकारी नियुक्त किया है, जिन्होंने एक दूसरे के प्रत्यय पत्रों का निरीक्षण करके और उन्हें ठीक तथा यथाविधि पाकर निम्नलिखित बातें स्वीकार कर ली हैं:

अनुच्छेद 1

भारत सरकार बर्मा सरकार को 20 करोड़ रुपए का ऋण देगी। बर्मा की सरकार को यह अधिकार होगा कि वह अपनी इच्छानुसार इस राशि का कोई भाग बर्मा अथवा किसी अन्य स्टर्लिंग क्षेत्रीय देश को हस्तान्तरित करे।

अनुच्छेद 2

बर्मा सरकार भारत के रक्षित बैंक में एक नया लेखा खोलेगी जिसे "ऋण लेखा" कहा जाएगा। भारत सरकार इस लेखे में 50 लाख रुपए के गुणितों में ऐसी राशियाँ जमा करेगी जिनकी बर्मा सरकार द्वारा समय-समय पर भारत सरकार के वित्त मंत्रालय को संबोधित माँगों द्वारा अपेक्षा की जाए। ऐसी कोई माँग 30 सितम्बर के बाद नहीं की जाएगी।

अनुच्छेद 3

(क) इस करार के अन्तर्गत ऋण के रूप में दी जाने वाली राशियों पर चार प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा। ब्याज समय-समय पर बर्मा सरकार पर शेष ऋण की कुल राशि पर देय होगा और उस तिथि से प्रारम्भ होगा जिसकी कि कोई राशि बर्मा सरकार के ऋण लेखे में जमा की जाए।

(ख) ब्याज का शोधन 1 मार्च 1956 से प्रारम्भ होकर आधे-आधे वर्ष बाद प्रत्येक वर्ष की 1 मार्च और 1 सितम्बर को दिया जाएगा।

अनुच्छेद 4

(क) ऋण की मूलधन की राशि का प्रतिशोधन, वर्ष 1959 से आरम्भ होकर 211 करोड़ रुपए की अर्ध वार्षिक किस्तों में प्रत्येक वर्ष 1 मार्च और 1 सितम्बर को उस समय तक किया जाता रहेगा जब तक कि निकाले गए सारे मूलधन का प्रतिशोधन न हो जाए। यदि ऋण की सम्पूर्ण राशि न निकाली जाए तो आवश्यक समायोजन, प्रतिशोधन की अन्तिम किस्त में किया जाएगा।

(ख) बर्मा सरकार को भारत सरकार के साथ परामर्श से इस करार के अन्तर्गत निकाली गई राशि का प्रतिशोधन अधिक गति से करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 5

इस क़रार का अनुसमर्थन किया जाना है और यह उस तारीख से लागू होगा जिस दिन अनुसमर्थन पत्रों का विनिमय किया गया हो। अनुसमर्थन पत्रों का विनिमय यथाशीघ्र रंगून में किया जाएगा।

इसके साक्ष्य में उक्त पूर्णाधिकारियों ने हिन्दी, बर्मी और अंग्रेजी भाषा में लिखे गए इस करार पर हस्ताक्षर किए हैं। ये सभी पाठान्तर समान रूप से प्रामाणिक होंगे सिवां किसी शंका होने की दिशा में जब कि अंग्रेजी पाठान्तर ही ठीक माना जाएगा।

आज, अक्टूबर 1959 के सत्रहवें दिन, नई दिल्ली में, दो प्रतियों में, निष्पादित हुआ।

भारत सरकार की ओर से
(हस्ताक्षर) **चि० द्वा० देशमुख**
वित्त मंत्री

बर्मा सरकार की ओर से
(हस्ताक्षर) **आंग सो**
नई दिल्ली में
बर्मा संघ के
असाधारण राजदूत तथा पूर्णाधिकारी

o o o

परिशिष्ट 5

केंद्रीय सरकार का 1963-64 का आयव्ययक

—केंद्रीय सरकार के राजस्व और राजस्व से किए जाने वाले व्यय का सामान्य विवरण

(हज़ार रुपयों में)

	वास्तविक राजस्व 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
I—भारत की समेकित निधि—				
राजस्व प्राप्तियाँ—				
कर, शुल्क और राजस्व के अन्य मुख्य शीर्षक—				
सीमा-शुल्क	2,12,24,70	2,07,82,00	2,31,65,00	{ 2,21,20,00 +87,39,00*
केन्द्रीय उत्पादन-शुल्क . .	4,89,3133	5,22,02,00	5,53,68,86	{ 5,83,95,90 +1,06,61,00*†
निगम-कर	1,56,46,30	1,78,45,00	1,87,50,00	{ 1,96,00,00 +31,00,00*
निगम-कर से भिन्न आय सम्बन्धी कर . .	71,54,52	68,65,00	77,23,00	{ 81,05,00 +39,00,00*
मृतसम्पत्ति-शुल्क . . .	33,00	12,04	11,91	11,96
सम्पत्ति-कर	8,25,80	9,00,00	9,00,00	{ 9,00,00 +40,00*

व्यय कर	83,74	10,00	20,00	9,50
दान कर	1,00,66	85,00	95,00	95,0
अन्य शीर्षक . . .	16,01,89	15,83,06	17,75,15	18,36,60 +1,50,060
जोड़—कर, शुल्क और राजस्व के अन्य मुख्य शीर्षक	9,56,01,94	10,02,84,10	10,78,08,92	11,10,74,02 +2,65,90,00*
ऋण-व्यवस्था . . .	12,22,37	1,67,51,23	1,76,49,20	2,17,05,05
प्रशासनिक सेवाएँ . . .	83,74	6,10,88	6,75,35	6,76,41
सामाजिक और विकास-सम्बन्धी सेवाएँ	46,49,72	35,29,24	43,36,92	31,60,55
बहुप्रयोजनीय नदी योजनाएँ, सिंचाई और बिजली योजनाएँ . .	56	36,09	38,89	45,03
सरकारी निर्माण-कार्य (सड़कों सहित) और सरकारी निर्माण सम्बन्धी विविध सुधारों की योजनाएँ . .	3,86,56	4,02,10	4,11,29	4,38,10
परिवहन और संचार (सड़कों से भिन्न)	2,58,54,	6,29,62	6,66,70	7,46,32
मुद्रा और टकसाल . . .	54,43,58	69,53,07	70,56,21	73,67,71
विविध	24,99,41	24,55,85	25,61,89	24,93,05
अंशदान और विविध समायोजन (रेलों तथा डाक और तार के अंशदानों से भिन्न)	−12,22	2,58,39	3,73,84	2,40,45

—केन्द्रीय सरकार के राजस्व और राजस्व स किए जाने वाले व्यय का सामान्य विवरण

क्रमशः

(हज़ार रुपयों में)

	वास्तविक राजस्व 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
राजस्व प्राप्तियाँ—(जारी)				
रेलों का अंशदान . . .	20,66,12	21,03,60	20,70,63	24,15,33
डाक और तार का अंशदान . .	77,27	78,66	75,51	1,10,70
असाधारण मदें . . .	13,95,89	40,00,00	63,00,00	81,00,00
जोड़	11,36,73,48	13,80,92,83	15,00,25,35	15,85,72,72 +2,65,90,00*
राजस्व से व्यय की अधिकता	..	72,08	22,05,73	77,41
जोड़	11,36,73,48	13,81,64,91	15,22,31,08	18,52,40,13

टिप्पणी.—1961-62 का खाता अन्तिम रूप स बन्द नहीं किया गया है और यहाँ जो वास्तविक अंक दिए गए है वे केवल अस्थायी है।

* बजट प्रस्तावों का प्रभाव, डाकदरों और संकटकालीन खतरों (माल और कारखानों) की बीमा योजनाओं के अन्तर्गत प्रीमियम की दरों के प्रभाव को नहीं दिखाया गया है।

† इस में 9·60 करोड़ रुपए की वह रक़म शामिल नहीं है जो केन्द्रीय-शुल्कों में से राज्यों को उनके हिस्से के रूप में दी जाती है और उसे राजस्व में से घटा कर दिखाया गया है।

I—केन्द्रीय सरकार के राजस्व और राजस्व से किए जाने वाले व्यय का सामान्य विवरण

(हज़ार रुपयों में)

	वास्तविक व्यय 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
1—भारत की समेकित निधि				
राजस्व से किया जाने वाला व्यय—				
करों, शुल्कों और अन्य मुख्य राजस्वों का संग्रह	21,16,31	22,58,39	23,06,98	23,83,00
ऋण व्यवस्था . . .	82,85,05	2,47,90,13	2,46,02,93	2,80,24,05
प्रशासनिक सेवाएँ . . .	59,17,42	70,30,87	76,39,02	88,28,22
सामाजिक और विकास-सम्बन्धी सेवाएँ	1,49,89,36	1,63,24,59	1,57,26,42	1,55,39,86
बहुप्रयोजनीय नदी योजनाएँ, सिंचाई और बिजली योजनाएँ . . .	1,10,10	1,56,93	77,75	1,95,57
सरकारी निर्माण-कार्य (सड़कों सहित) और सरकारी निर्माण सम्बन्धी विविध सुधारों की योजनाएँ . . .	19,25,90	21,87,75	23,70,67	20,93,99

क्रमशः

केन्द्रीय सरकार के राजस्व और राजस्व से किए जाने वाले व्यय का सामान्य विवरण

(हज़ार रुपयों में)

	वास्तविक व्यय 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
राजस्व से किया जाने वाला व्यय—(जारी)				
परिवहन और संचार (सड़कों से भिन्न)	6,03,83	8,74,80	8,75,32	9,78,69
मुद्रा और टकसाल . . .	11,68,91	20,22,96	22,95,51	17,24,50
विविध	78,73,16	1,09,44,72	1,08,44,12	1,10,98,56
अंशदान और विविध समायोजन .	2,78,65,56	3,30,96,82	3,38,50,26	3,49,03,96
असाधारण मदें . . .	13,78,62	41,40,28	64,60,66	86,18,73
रक्षा सेवाएँ (क) . . .	2,89,53,90	3,43,36,67	4,51,81,44	7,08,51,00
जोड़	10,11,88,12	13,81,64,91	15,22,31,08	18,52,40,13
व्यय से राजस्व की अधिकता अर्थात् अधिशेष . . .	1,24,85,36	..	..	..
जोड़ . . .	11,36,73,48	13,81,64,91	15,22,31,08	18,52,40,13

(क) वास्तविक व्यय-सूचक अंक; विवरण क में दिखायी गयी प्राप्तियाँ विवरण ख में दिखाए गए व्यय में से घटा दी गयी है।

II—केन्द्रीय सरकार की प्राप्तियों और भुगतानों का सामान्य विवरण

(हज़ार रुपयों में)

	वास्तविक प्राप्तियाँ 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
I—भारत की समेकित निधि—				
राजस्व का अधिशेष (जो भाग I में दिखाया गया है) . . .	1,24,85,36	..	..	..
राजस्व से न किया जाने वाला पूंजीगत व्यय	−2	..	..	..
स्थायी ऋण (वास्तविक) . .	3,67,34,83	4,88,07,41	4,88,15,77	6,31,36,3
अस्थायी ऋण (वास्तविक) . .	72,13,50	89,02,14	2,43,45,00	1,51,02,14
केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाने वाले ऋण और अग्रिम (वास्तविक) . .	..	..	..	..
अन्तर्राज्यीय निपटारा (वास्तविक) .	..	..	1,75,79	..
जोड़	5,64,33,67	5,77,09,55	7,33,36,56	7,82,38,47
II—भारत की आकस्मिकता निधि	75	..	..	..

II—केन्द्रीय सरकार की प्राप्तिओं और भुगतानों का सामान्य विवरण

क्रमशः (हज़ार रुपयों में)

प्राप्तियाँ	वास्तविक प्राप्तियाँ 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
III—सार्वजनिक खाता—				
अनिधिबद्ध ऋण (वास्तविक) .	1,81,78,24	2,33,15,52	1,89,44,55	2,41,71,67 + 40,00,00*
मूल्य-ह्रास और अन्य प्रारक्षित निधियाँ (वास्तविक) . . .	..	16,27,42	10,16,50	36,37,80
ऋण में कमी करने या ऋण से बचने के लिए विनियोग . . .	5,00,00	5,00,00	5,00,00	5,00,00
अन्य जमा रकमें और अग्रिम (वास्तविक) . . .	1,05,49,39	1,63,74,76	1,67,32,04	2,25,63,52 (−)3,00,00*
प्रेषणाएँ (वास्तविक) . .	..	95,00	9,49,62	9,37,21
इंगलेण्ड और भारत के बीच नक़दी का अन्तरण (वास्तविक) . .	..	..	..	..
जोड़	2,92,27,63	4,19,12,70	3,81,42,71	5,18,10,20 + 37,00,00*

जोड़—प्राप्तियाँ . .	8,56,62,05	9,96,22,25	11,14,79,27	13,37,48,67
पूर्व शेष . . .	45,21,54	49,92,34	49,39,87	50,62,05
जोड़ . .	9,01,83,59	10,46,14,59	11,64,19,14	13,88,10,72

*बजट प्रस्तावों का प्रभाव ।

II—केन्द्रीय सरकार की प्राप्तियों और भुगतानों का सामान्य विवरण

(हज़ार रुपयों में)

भुगतान	वास्तविक भुगतान 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
I—भारत की समेकित निधि				
राजस्व में कमी (जो भाग I में दिखाई गई है) . .	..	72,08	22,05,73	77,41
राजस्व से न किया जाने वाला पूंजीगत व्यय	4,36,33,26	6,52,45,19	6,72,84,62	8,87,37,03
स्थाई ऋण (वास्तविक) . .	..	..	..	..
अस्थाई ऋण (वास्तविक) . .	..	..	..	..
केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाने वाले ऋण और अग्रिम (वास्तविक) .	3,87,37,79	3,43,62,94	4,18,66,74	4,48,48,96
अन्तर्राज्यीय निपटारा (वास्तविक) .	1,79,13	12	..	90,41
जोड़	8,25,50,18	9,96,80,33	11,13,57,09	13,37,53,81
II—भारत की आकस्मिकता निधि	4	..	..	..

III—सार्वजनिक खाता				
अनिधिबद्ध ऋण (वास्तविक) .	..	..	..	..
मूल्य-ह्रास और अन्य प्रारक्षित निधियाँ (वास्तविक) . . .	1,84,32	..	..	..
अन्य जमा रकमें और अग्रिम (वास्तविक)	..	..	..	..
प्रेषणाएँ (वास्तविक) . .	25,07,21	..	..	..
इंग्लैण्ड और भारत के बीच नक़दी का अन्तरण (वास्तविक) . .	1,97	..	..	..
रिज़र्व बैंक की जमा (वास्तविक) .	..	..	..	..
जोड़	26,93,50	..	..	..
जोड़—भुगतान . . .	8,52,43,72	9,96,80,33	11,13,57,09	13,37,53,81
इति शेष . . .	49,39,87	49,34,26	50,62,05	50,56,91
जोड़ . .	9,01,83,59	10,46,14,59	11,64,19,14	13,88,10,72

परिशिष्ट 6

रेल वित्त से साधारण वित्त के पृथक्करण का 1924 का संकल्प

"रेलवे के अनुमान को सामान्य बजट में शामिल करने से जो भारी घटाबढ़ी होती है, उससे सामान्य बजट को मुक्त करने और रेलवे को यह अवसर देने के लिए कि वह ऐसी नीति अपनाए, जिससे सरकार द्वारा लगाई पूँजी के बदले में सामान्य राजस्व को कुछ मिल सके, विधान सभा 'गवर्नर जनरल इन काउन्सिल' से यह सिफ़ारिश करती है कि:

(1) रेलवे वित्त को देश के सामान्य वित्त से अलग कर दिया जाए और रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व को हर वर्ष एक निश्चित रक़म दी जाए। यह रक़म रेलवे की शुद्ध आमदनी पर पहला प्रभार होगी।

(2) इस रकम का निर्णय वाणिज्य लाइनों पर लगी हुई पूँजी और उसके संचालन के परिणामों को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा और यह रकम पिछले वित्तीय वर्ष के अन्त में वाणिज्य लाइनों पर लगी हुई पूँजी (इसमें कम्पनियों और रियासतों द्वारा लगाई गई पूँजी शामिल नहीं है) के प्रतिशत और उनके बाद बचत के पाँचवें भाग के जोड़ के बराबर होगी। लेकिन शर्त यह है कि यदि किसी वर्ष रेलवे राजस्व से पूँजीगत लागत पर प्रतिशत की निर्धारित रकम अदा की जा सके तो अगले वर्ष या वर्षों में जो लाभ होगा, उसे पिछली कमी पूरी न होने तक बाँटा नहीं जा सकेगा।

सामरिक महत्त्व की लाइनों पर पूँजीगत लागत और उनके संचालन व्यय का भार सामान्य राजस्व पर होगा और हर वर्ष रेलवे की ओर से सामान्य राजस्व को जो अंशदान दिया जाएगा, उससे वह काट लिया जाएगा।

(3) यदि सामान्य राजस्व का भुगतान करने के बाद कुछ रकम बचे तो उसे रेलवे की प्रारक्षित निधि में डाला जाए। लेकिन यदि यह रक़म तीन करोड़ रुपए से अधिक हो तो तीन करोड़ रुपए से अधिक रकम का केवल दो/तृतीयांश भाग रेलवे आरक्षित निधि में डाला जाए। बाक़ी धन सामान्य राजस्व को दे दिया जाए।

(4) सामान्य राजस्व को वार्षिक अंशदान देने, आवश्यकता पड़ने पर मूल्य-ह्रास का पिछला बकाया पूरा करने, पूँजी में जमा करने, या पूँजी घटाने और जनता को अधिक सुविधा पहुँचाने के साथ-साथ किराए और भाड़े आदि में कमी करने के उद्देश्य से रेलों की वित्तीय हालत मज़बूत करने के लिए इस प्रारक्षित निधि का उपयोग किया जाए।

(5) रेलवे को अधिकार होगा कि वह भारत सरकार की शर्तों के अनुसार ऐसे खर्च को पूरा करने के लिए पूँजी से या प्रारक्षित निधि से कर्ज़ ले जिनके लिए राजस्व बजट में व्यवस्था नहीं की गई या कम व्यवस्था की गई है। लेकिन इस कर्ज़ का अगले वर्ष में भुगतान करना होगा।

(6) रेलवे की एक "स्थाई वित्त समिति" बनाई जाएगी जिसका अध्यक्ष विधान सभा का कोई मनोनीत सरकारी सदस्य होगा। बाक़ी सदस्य विधान सभा

के चुने हुए सदस्य होंगे। स्थाई वित्त समिति के सदस्य केन्द्रीय सलाहकार परिषद् के पदेन सदस्य होंगे। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् में अधिक से अधिक एक और मनोनीत सदस्य होगा। छह ऐसे ग़ैर सरकारी सदस्य होंगे जिन्हें राज्य परिषद् के सदस्यों द्वारा राज्य परिषद् के आठ सदस्यों के पेनल से चुना जाएगा और छह ऐसे गैर सरकारी सदस्य होंगे जिन्हें विधान सभा में से चुने गए आठ सदस्यों के पेनल में से चुना जाएगा।

रेलवे के अनुदान की माँग पर बहस होने के पहले किसी दिन रेलवे अपने खर्च का अनुमान स्थाई वित्त समिति के सामने रखे। यह अनुमान जहाँ तक हो सके खर्च कार्यक्रम राजस्व में दिखाने की बजाए पूँजी और राजस्व पर प्रभार सम्बन्धी नियमावली के अनुसार बनाई गई मूल्य-ह्रास निधि में दिखाया जाए।

(7) यदि हो सके, तो रेलवे बजट विधान सभा में पहले पेश किया जाए और इस पर बहस करने के लिए दिन अलग रखे जाएँ। तब रेलवे के कार्यभारी सदस्य रेलवे के लेखा और संचालन पर एक सामान्य व्याख्यान देंगे। रेलवे बजट में प्रस्तावित खर्च अनुदान की माँगों के रूप में विधान सभा के सामने पेश किया जाएगा। इसमें मूल्य-ह्रास निधि और रेलवे आरक्षित निधि से किए जाने वाले खर्च भी शामिल होंगे। सामान्य बजट से अलग होने पर रेलवे बजट का क्या रूप होगा, इसमें कौन से ब्योरे दिए जाएँगे और कौन सी माँगें होंगी जिनकी स्वीकृति लेनी है, इन सब बातों पर रेलवे बोर्ड प्रस्तावित "स्थाई वित्त समिति" की सलाह से विचार करेगा, ताकि यदि हो सके तो आगामी बजट में समय पर सुधार किया जा सके।

(8) इन नियमों का समय-समय पर संशोधन किया जा सकता है लेकिन कम से कम तीन वर्ष तक परीक्षण के रूप में इन पर अमल किया जाए।

(9) चूँकि भारतीय रेलों के सरकारी प्रबन्ध के बारे में फरवरी 1923 में जो प्रस्ताव पास किया गया था, उसे विधान सभा स्वीकृत करती है इसलिए ये नियम तब तक लागू रहें, जब तक ईस्ट इण्डियन और ग्रेट इण्डियन पेनिन्सुला रेलवे और सरकार द्वारा संचालित दूसरी रेलें सरकारी प्रबंध में रहें। विधान सभा के इस निश्चय के होते हुए भी सरकार इनमें से किसी रेलवे का प्रबन्ध कम्पनी को सौंपने के बारे में बातचीत कर सकती है, लेकिन इस तरह का कोई समझौता तब तक पूरा न समझा जाएगा जब तक विधान सभा इस पर विचार न कर ले। यदि विधान सभा की सलाह के खिलाफ इन रेलों में से किसी रेल के प्रबंध का ठेका किसी कम्पनी को दिया जाए तो विधान सभा को अधिकार होगा कि वह इस तरह का प्रबंध रद्द कर दे।

उपरोक्त अभिसमय के अलावा विधान सभा यह भी सिफ़ारिश करती है कि :

(क) अधिक से अधिक भारतीयों को रेलवे में नियुक्त किया जाए और जितनी जल्द हो सके रेलवे बोर्ड में भी भारतीय सदस्य रखे जाएँ।

(ख) सरकारी रेलों का सामान भारत सरकार के क्रय विभाग द्वारा खरीदा जाए।"

० ० ०

परिशिष्ट 7

केन्द्रीय सरकार के रेल राजस्व व खर्च का बजट (1963-64)

I—केन्द्रीय सरकार के रेलवे राजस्व का विवरण

(हज़ार रुपयों में)

राजस्व के शीर्षक	लेखा 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	1962–63 के बजट की तुलना में बढ़ती (+) कमी (—)	बजट अनुमान 1963-64
एम—रेलवे—राजस्व					
LXIV-ए और LXV-ए—भारतीय रेलें					
राजस्व से प्राप्ति—					
यात्री-यातायात से आमदनी—					
ऊँचे दर्जे	17,54,56	19,00,30	19,30,00	+29,70	20,04,00
तीसरा दर्जा	133,33,29	147,45,70	147,95,00	+49,30	152,46,00
सवारी, पार्सल आदि दूसरे यातायात से आमदनी	29,10,47	29,00,00	31,50,00	+2,50,00	34,80,00
माल-यातायात से आमदानी . .	306,89,67	337,55,00	337,55,00	..	379,00,00
अन्य फटकर आमदानी . . .	13,60,66	13,50,00	14,50,00	+1,00,00	14,50,00
कुल आमदनी . .	500,48,85	546,51,00	550,80,00	+4,29,00	600,80,00
अवर्गित . . .	1,40	—1,15,00	—1,18,00	—3,00	—1,11,00

—केन्द्रीय सरकार के रेलवे राजस्व का विवरण

(हज़ार रुपयों में)

राजस्व के शीर्षक	लेखा 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	1962-63 के बजट की तुलना में बढ़ती (+) कमी (—)	बजट अनुमान 1963-64
†भारतीय रेलों से कुल प्राप्ति	500,50,25	545,36,00	549,62,00	+4,26,00	599,69,00
*घटाइए—					
‡83-ए और 84-ए—संचालन-व्यय	390,33,30	..	..	..	..
83-सी—चालित लाइनों का भुगतान—					
(i) शुद्ध आमदनी	17,47	..	..	..	..
(ii) छूट आदि	14	..	..	..	..
शुद्ध प्राप्तियाँ	109,99,34	545,36,00	549,62,00	+4,26,00	599,69,00
LXIV-बी—दूसरी विविध प्राप्तियाँ—					
विविध प्राप्तियाँ	2,60,88	16,98	74,56	+57,48	23.71

I—केंद्रीय सरकार के रेलवे राजस्व का विवरण

(हज़ार रुपयों में)

राजस्व के शीर्षक	लेखा 1966-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमाम 1962-63	1962-63 के बजट की तुलना में बढ़ती (+) कमी (—)	बजट अनुमान 1963-64
LXVI—सहायता-प्राप्त कम्पनियाँ—					
बचत, लाभ आदि में सरकार का हिस्सा .	2,88	2,28	2,67	+39	2,36
LXVII—रेलवे राजस्व आरक्षित निधि से बदली					
कुल प्राप्ति . .	112,63,10	545,55,26	550,39,23	+4,83,97	599,95,07
†इसमें चालित लाइनों की आमदनी शामिल है	57,95	55,69	53,50	−2,19	51,58
‡इसमें राजस्व से मूल्यह्रास आरक्षित निधि के विनियोग भी शामिल हैं।	65,00,00	..	..	..	..

*1-4-62 से लेखे का युक्तियुक्त वर्गीकरण लागू हो जाने के कारण रेलवे का 'संचालन-व्यय' के अन्तर्गत किया गया खर्च, प्राप्तियों के रूप में घटाने की बजाए, 'खर्च' के रूप में समंजित कर लिया जाता है और इसलिए उसको 1962-63 और 1963-64 के अनमान 'खर्च' के अन्तर्गत दिखाया गया है।

2—केन्द्रीय सरकार के राजस्व से रेलवे पर किए गए खर्च का विवरण

(हज़ार रुपयों में)

खर्च के मद	लेखा 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	1962-63 के बजट की तुलना में बढती(+) कमी(—)	बजट अनुमान 1963-64
एम—रेलवे—खर्च					
*83-ए और 84-ए—संचालन-व्यय	..	423,79,52	430,13,61	+6,34,09	459,03,93
83-सी—चालित लाइनों को भुगतान—					
(i) शुद्ध आमदनी	..	14,14	13,42	−72	13,68
(ii) छूट आदि	..	29	1,01	+72	59
83-बी और 84-बी—दूसरे विविध खर्च	3,16,04	3,90,35	3,76,71	—13,64	3,98,85
85—सामान्य राजस्व को भुगतान—					
(क)—सामान्य राजस्व को लाभांश	62,84,83	69,35,34	68,73,29	—62,05	80,60,86
(ख)—रेल-यात्री किराया-कर के बदले सामान्य राजस्व को भुगतान	12,50,00	12,50,00	12,50,00	..	12,50,00

क्रमशः

2—केन्द्रीय सरकार के राजस्व से रेलवे पर किए गए खर्च का विवरण

(हज़ार रुपयों मे)

खर्च के मद	लेखा 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	1962-63 के बजट की तुलना में बढ़ती (+) कमी (—)	बजट अनुमान 1963-64
86—रेलवे बचत से विनियोग—					
(i) रेलवे राजस्व आरक्षित निधि में विनियोग	..	..	..	..	..
(ii) रेलवे विकास निधि में विनियोग .	24,39,92	23,21,97	23,20,26	—1,71	31,00,42
(iii) रेलवे मूल्य-ह्रास आरक्षित निधि में विनियोग	..	..	..	..	..
87—सहायता प्राप्त कम्पनियाँ—					
भूमि	..	..	..	..	..
आर्थिक सहायता . . .	11,87	13,65	13,65	..	16,74
88—चालू लाइन निर्माण—राजस्व	9,60,44	12,50,00	11,77,28	—72,72	12,50,00
कुल खर्च . .	112,63,10	545,55,26	550,39,23	+4,83,97	599,95,07
*इसमें राजस्व से मूल्य-ह्रास आरक्षित निधि का विनियोग भी शामिल है	..	67,00,00	67,00,00	..	80,00,00

3—रलवे बचत का विभाजन 1962-63 और 1963-64

(हज़ार रुपयों में)

	लेखा 1961-62	बजट अनुमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	बजट अनुमान 1963-64
बचत	24,39,92	23,21,97	23,20,26	31,00,42
रेलवे विकास निधि	24,39,92	23,21,97	23,20,26	31,00,42
रेलवे राजस्व आरक्षित निधि	..	..	..	..
रेलवे मूल्य-ह्रास आरक्षित निधि	..	..	..	..

4—रेलवे पर केन्द्रीय सरकार के पूंजी-व्यय का विवरण

(हज़ार रुपयों में)

खर्च के मद	लेखा 1961-62	बजट अनमान 1962-63	संशोधित अनुमान 1962-63	1962-63 के बजट की तुलना में बढ़ती (+) कमी (—)	बजट अनुमान 1963-64
एम एम—पूंजी					
रेलवे पूंजी जिसकी पूर्ति राजस्व से नहीं की जाती—					
131 और 132—रेलों का निर्माण—					
चालू लाइन निर्माण—					
चल-स्टाक	66,06,60	99,19,49	88,52,53	—10,66,96	93,05,09
दूसर निर्माण-कार्य	36,85,22	62,18,66	55,17,99	—7,00,67	70,19,86
नये निर्माण	41,05,92	56,04,61	51,42,67	—4,61,94	68,94,83
अवर्गित	—94,53	—5,46,04	6,84,60	+12,30,64	6,18,67
विविध	1,87,13	2,17,79	1,02,21	—1,15,58	2,47,82
सम्भावित बचत	..	—17,64,51	..	+17,64,51	—22,36,27
जोड़ .	144,90,34	196,50,00	203,00,00	+6,50,00	218,50,00

परिशिष्ट 8*

निगम स्थापक विभिन्न अधिनियमों में निगमों पर संसदीय तथा सरकारी नियंत्रण के अनुच्छेद

1. दामोदर घाटी निगम अधिनियम, 1948

48. **केन्द्रीय सरकार द्वारा आदेशः**—(1) अपने दायित्वों के पालन में निगम को ऐसे आदेशों से चलना होगा (नीति के मामलों में) जो केन्द्रीय सरकार ने दिए हों।

(2) यदि ऐसा प्रश्न उठे कि आदेश नीति का प्रश्न है या नहीं तो उसमें केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।

49. **सरकारों तथा निगम के बीच संघर्षः**—(1) इस अधिनियम में जहाँ विपरीत व्यवस्था की गई हो उन्हें छोड़कर अन्य अवस्थाओं में यदि निगम तथा भाग लेने वाली सरकारों के बीच कोई संघर्ष हो (अधिनियम में व्यवस्थित किसी विषय पर या उससे निकलने वाले किसी विषय पर) तो मामला ऐसे मध्यस्थ को सौपा जाएगा जो भारत के प्रधान न्यायाधीश द्वारा नियुक्त किया गया हो।

(2) मध्यस्थ का निर्णय अन्तिम होगा व विभिन्न पक्षों पर लागू होगा।

51. **केन्द्रीय सरकार का नियंत्रणः**—(1) केन्द्रीय सरकार निगम से किसी सदस्य को पदच्युत कर सकेगी यदि उसके मत में (अ) उसने काम करने से इंकार किया हो; (ब) कार्य करने में अक्षम हो गया हो; (स) अपने पद का इस प्रकार दुरुपयोग किया हो कि जनता के हित में उसका सदस्य रहने दिया जाना हानिप्रद हो; और (द) अन्य कारणों से अनुपयुक्त हो।

(2) केन्द्रीय सरकार किसी सदस्य को, उसके विरुद्ध जाँच चालू रहते हुए स्थगित कर सकती है।

(3) यदि निगम अपने दायित्व न निभा पाए अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए आदेशों का अनुसरण न करे तो केन्द्रीय सरकार को अधिकार रहेगा कि वह निगम के सभापति तथा अन्य सदस्यों को पदच्युत कर दे और उनके स्थान पर अन्य नियुक्तियाँ करे।

60. **नियम बनाने की शक्तिः**—निगम केन्द्रीय सरकार की अनुमति से अधिनियम के अन्तर्गत अपने कार्य करने के लिए नियम बना सकती है जिसे सरकारी गज़ट में प्रकाशित करना होगा।

---

*इस परिशिष्ट में उदाहरणस्वरूप केवल चार निगमों के परिनियमों के उद्धरण दिए गए हैं जिनके नाम हैं: (1) दामोदर घाटी नियम अधिनियम 1948; (2) उद्योग वित्त निगम अधिनियम 1948; (3) पुनर्वास वित्त शासन अधिनियम 1948; (4) वायु निगम अधिनियम 1953। इसी प्रकार की व्यवस्था अन्य निगम अधिनियमों में है।

(इसके अतिरिक्त निगम के सदस्यों व अध्यक्ष की नियुक्ति में सरकार का हाथ रहता है। निगम के सदस्य तथा अध्यक्ष राज्य सरकारों की सलाह के बाद केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। निगम का सचिव तथा वित्तीय सलाहकार भी केन्द्रीय सरकार की सलाह पर ही नियुक्त होता है। केन्दीय सरकार ही दामोदर घाटी के क्षेत्र की सीमा का निर्धारण करती है जिसके अन्दर निगम को अधिकार रहते हैं। सिंचाई तथा जल वितरण में निगम को प्रांतीय सरकार की सलाह लेनी पड़ती है। निगम बाज़ार से ऋण ले सकता है पर इसमें केन्द्रीय सरकार की अनुमति आवश्यक होती है। निगम का आयव्ययक प्रतिवर्ष राज्य सरकारों तथा संसद् व योग्य सरकारों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। इसी प्रकार निगम की वार्षिक रिपोर्ट भी उन संस्थाओं को पेश किया जाना अनिवार्य है। निगम के लेखे के विषय में भी महालेखापरीक्षक की सहमति आवश्यक होती है।)

2. उद्योग वित्त निगम अधिनियम 1948

6. **व्यवस्थाः**—(3) अपने दायित्वों के पालन में बोर्ड ऐसे आदेशों के अनुसार चलेगा जैसे केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए हों।

(4) यदि केन्द्रीय सरकार व बोर्ड में कोई ऐसा विवाद उठे कि आदेश का विषय नीति का विषय था या नहीं तो उसमें केन्द्रीय सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।

(5) यदि बोर्ड, केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए आदेश का पालन न कर सके तो केन्द्रीय सरकार को अधिकार रहेगा कि वह बोर्ड का अवक्रमण करे व एक नवीन बोर्ड स्थानापन्न करे। इस निर्णय पर न्यायालयों में भी विचार न हो सकेगा।

13. **अध्यक्ष तथा निदेशकों की पदच्युतिः**—केन्द्रीय सरकार किसी समय अध्यक्ष को पदच्युत कर सकेगी।

34. **लेखा परीक्षाः**—(1) निगम के व्यवहार सक्षम लेखा परीक्षकों द्वारा जाँच किए जाएँगे जिन में से एक नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक की सलाह से नियुक्त किया जाएगा।

(4) केन्द्रीय सरकार नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक की सलाह से परीक्षकों को आदेश दे सकेगी कि वे निगम द्वारा उनके अंशधारियों तथा उधार देने वालों के हित के संरक्षणार्थ प्रयुक्त उपायों की पर्याप्तता पर सरकार को सूचना दे। सरकार को परीक्षकों के परीक्षा क्षेत्र में विस्तार कराने के आदेश देने का भी अधिकार रहेगा।

(5) अंशधारियों को भेजने के कम से कम एक महीने पहले परीक्षकों की रिपोर्टें निगम नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को भेजने की व्यवस्था करेगा।

(6) उपरोक्त उपबन्धों के रहते हुए नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक को यह अधिकार रहेगा कि वह अपने बल पर अथवा केन्द्रीय सरकार से प्रार्थना किए जाने पर किसी समय निगम के लेखे की उपयुक्त जाँच करे। परन्तु जहाँ तक सरकार को निगम के मार्फ़त प्रतिभू होने के कारण शोधन करना पड़ रहा हो वहाँ उन शोधनों के लेखे की परीक्षा नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक द्वारा ही की जाएगी।

(7) प्रत्येक लेखा परीक्षा प्रतिवेदन केन्द्रीय सरकार को भेजे जाएँगे जो उन्हें संसद् के दोनों सदनों के सम्मुख उपस्थित करेगी।

(इसके अतिरिक्त भावी अंश लागू करने के पूर्व भी केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी पड़ती है। निदेशक बोर्ड के अध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है, इसके अतिरिक्त बोर्ड के चार सदस्य भी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही नियुक्त किए जाते हैं। अध्यक्ष का स्थान अस्थाई रूप से रिक्त होने पर उसकी पूर्ति भी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही की जाती है। निगम अपने वित्त का विनियोग केवल केन्द्रीय अथवा राज्यीय सरकारों की प्रतिभूतियों में ही कर सकती है। यह भी व्यवस्था है कि निगम वित्तीय वर्ष की समाप्ति के तीन महीने के अन्दर अपने दायित्व तथा परि-सम्पत्तियों तथा लाभ हानि के लेखे व कार्य के वित्तीय फलों पर प्रतिवेदन केन्द्रीय सरकार को तथा रिज़र्व बैंक को दे। केन्द्रीय सरकार को अधिनियम के अधीन ऐसे विषय, जिनकी अधिनियम में चर्चा नहीं है, पर नियम बनाने का भी अधिकार है।)

3. पुनर्वास वित्त शासन अधिनियम* 1948

4. **शासन का संगठन:** — शासन निम्नलिखित सदस्यों का बना होगा :

(अ) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक अध्यक्ष जो प्रमुख शासक कहलाएगा।

(ब) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त तीन सरकारी अधिकारी।

(स) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त तीन ग़ैर-सरकारी अधिकारी।

5. **सलाहकार बोर्ड:**—केन्द्रीय सरकार शासन को सलाह देने के लिए (नीति सम्बन्धी) एक सलाहकार बोर्ड स्थापित करेगी।

13. **ऋण:**—शासन द्वारा दिए गए ऋणों पर केन्द्रीय सरकार सीमा निर्धारण कर सकती है।

19. **केन्द्रीय सरकार को आदेश देने का अधिकार:**—इस अधिनियम के अधीन रहते हुए केन्द्रीय सरकार समय-समय पर शासन को योग्य, साधारण तथा विशेष अधिकार दे सकेगी। शासन को ऐसे आदेश परिचालित करने होंगे।

23. **नियम बनाने का अधिकार:**—सरकारी गज़ट में घोषित कर, केन्द्रीय सरकार अधिनियम के लिए नियम निर्माण कर सकती है।

16. **लेखा परीक्षा:**—(1) शासन उचित लेखे निर्मित करेगा और लेखे का एक वार्षिक विवरण बनाएगा जिसमें लाभ हानि का लेखा तथा संतुलन पत्र रहेंगे जिनका स्वरूप केन्द्रीय सरकार द्वारा नियन्त्रक तथा महालेखापाल की मदद से निर्धारित किया जाएगा।

(2) शासन के लेखे प्रतिवर्ष नियन्त्रक तथा महालेखापाल द्वारा परीक्षा किए जाएँगे और इस सम्बन्ध में उससे जो व्यय किया जाएगा वह शासन उसे देगा।

*यह केवल उदाहरण स्वरूप दिया गया है। वैसे 1947 में शासन का अन्त कर दिया गया है।

(3) लेखा परीक्षा के सम्बन्ध में महालेखापरीक्षक को अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य अधिकारी को वही सुविधाएँ तथा अधिकार होंगे जो नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक को सरकारी लेखे की परीक्षा के सम्बन्ध में होते हैं।

(4) नियन्त्रक द्वारा अथवा उसके द्वारा नियुक्त अन्य किसी अधिकारी द्वारा प्रमाणित लेखे, लेखा परीक्षा प्रतिवेदन के साथ प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार को दिए जाएँगे, जो उसे संसद् के दोनों सदनों के सम्मुख उपस्थित करेगी।

(पुनर्वास शासन वास्तव में केवल सुविधा के लिए अलग स्थापित किया गया था अन्यथा केन्द्रीय सरकार का इस पर पूर्ण नियंत्रण था। शासन के अधिकारियों की तनख्वाह तथा नियुक्ति की अवधि भी केन्द्रीय सरकार द्वारा निश्चित की जाती थी। केन्द्र सरकार ही शासन की व्यवस्था के लिए उपयुक्त धन का प्रबन्ध कराती थी। चूँकि शासन का निर्माण व्यावसायिक तरीक़े से चलाने के लिए हुआ था केन्द्रीय सरकार उससे दिए हुए वित्त पर तीन प्रतिशत ब्याज भी लेती थी। शासन को केन्द्रीय सरकार को प्रति छह महीने में लेखे के साथ एक प्रतिवेदन जमा कराना पड़ता था जो केन्द्रीय विधि सभा को उपस्थापित किया जाता था। शासन को केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना ऋण भुगतान का अधिकार नहीं था। प्रतिशोधन के बाद जो संपत्ति बच रहती है उन पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार रहता था।)

4. वायु निगम अधिनियम 1953

34. **केन्द्रीय सरकार को आदेश देने का अधिकार:**—(1) केन्द्रीय सरकार दोनों निगमों को उनमें दायित्वों के सम्पादन के विषय में आदेश दे सकेगी, और निगमों को उन आदेशों का पालन करना पड़ेगा। (2) यदि केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय हित में ठीक समझे तो दोनों निगमों की सलाह से उन्हें आदेश दे सकती है कि (अ) वे कोई विशिष्ट वायु यातायात का संवहन करें जो निगम के कार्याधीन हों (ब) निगम द्वारा परिवहित किसी अनुसूचित सेवा को स्तब्ध करे अथवा (स) किसी प्रस्तावित सेवा को बंद कर दें।

35. **केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति:**—केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना कोई निगम निम्नलिखित बातें न कर सकेगा :

(क) अचल सम्पत्ति अथवा वायुयान जिसकी क़ीमत 15 लाख से अधिक हो, की खरीद।

(ख) अचल सम्पत्ति को पाँच साल से अधिक समय के लिए पट्टे पर देना।

(ग) दस लाख से अधिक की पुस्तकीय मूल्य की किसी सम्पत्ति या हक़ को बेचना।

36. **प्रतिवर्ष के लिए कार्य का प्रोग्राम प्रस्तुत करना:**—(1) प्रत्येक निगम, निगम के वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ से कम से कम तीन महीने पहले केन्द्रीय सरकार को अगले वर्ष के प्रस्तावित अपने कार्यों का एक विवरण उपस्थित करेंगे। इन विवरणों के साथ व्यय के वित्तीय प्राक्कलन भी रहेंगे; कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि तथा प्रस्तावित पूँजी वृद्धि भी दिए जाएँगे।

(2) यदि किसी वित्तीय वर्ष में कोई निगम ऐसी कोई वायु उड्डयन क्रिया अथव तत्सम्बन्धी कार्य स्वीकार करना चाहते हैं जो उपरोक्त उपबन्ध से अलग हों तो निगम उनकी अनुमति के लिए केन्द्रीय सरकार के लिए अलग से एक अनुपूरक प्राक्कलन उपस्थित करेंगे।

लेकिन यदि कोई अनपेक्षित यातायात की आवश्यकता आ पड़े तो (1) और (2) के अतिरिक्त अन्य कार्य भी निगम कर सकेंगे और वे बाद में दी हुई प्रक्रिया के अनुसार उन पर केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करेंगे।

7. **संसद् को वार्षिक प्रतिवेदनः**—(1) प्रत्येक वार्षिक वर्ष में यथाशीघ्र प्रत्येक निगम केन्द्रीय सरकार को विहित रूप में प्रतिवेदन प्रस्तुत करेंगे जिसमें गत वित्तीय वर्ष का विवरण दिया जाएगा और अगले वर्ष में प्रस्तावित क्रियाओं का भी वणन होगा।

(2) केन्द्रीय सरकार ऐसे प्रत्येक प्रतिवेदन को यथा-सम्भव दोनों सदनों के सम्मुख उपस्थापित करने की व्यवस्था करेगी।

15. **लेखा तथा लेखा परीक्षा** :—(1) निगम योग्य लेखे निर्माण करेगा और अन्य ऐसे अभिलेख भी रखेगा। नियन्त्रक तथा महालेखापाल की सलाह से केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत स्वरूप में वार्षिक लेखे, लाभहानि के लेखे तथा संतुलन पत्र भी बनाने होंगे।

(2) नियन्त्रक द्वारा निगम के लेखों की प्रतिवर्ष जाँच की जाएगी और इस परीक्षा में जो व्यय हुआ हो वह निगम द्वारा नियन्त्रक को चुकाया जाएगा।

(3) नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक को व उसके द्वारा निगम के लेखों की जाँच के लिए नियुक्त अन्य किसी व्यक्ति को निगम की लेखा परीक्षा के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो महालेखापरीक्षक के सरकारी लेखे के सम्बन्ध में होते हैं।

(4) नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक द्वारा अथवा उसके द्वारा नियुक्त अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित निगम के लेखे व उसके साथ लेखा परीक्षा प्रतिवेदन प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार को दिए जाएँगे जो उन्हें संसद् के दोनों सदनों के सम्मुख उपस्थापित करेगा।

(निगमों के सदस्यों तथा उनमें से एक की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। यदि सदस्य कोई ऐसा कार्य कर रहा हो जो निगम के अहित में हो तो उसे पदच्युत करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को होता है। केन्द्रीय सरकार को निगम के कार्यों के विषय में भी नियम बनाने का अधिकार होता है। कितने ही कार्यों को कार्यरूप देने से पहले केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी होती है।)

○ ○ ○

परिशिष्ट 9

भारत सरकार द्वारा स्थापित उद्योग, व्यवसाय व अन्य स्वायत्त निकायों की सूची

(1) निगम

1. एयर इण्डिया इण्टरनेशनल कारपोरेशन, बम्बई
2. सेन्ट्रल वेयरहाउसिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली
3. दामोदर वैली कारपोरेशन, कलकत्ता
4. इम्लाईज़ स्टेट इन्श्योरेन्स कारपोरेशन, बम्बई
5. इण्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन, नई दिल्ली
6. इण्डस्ट्रियल फाइनेन्स कारपोरेशन, नई दिल्ली
7. लाइफ इंश्योरेन्स कारपोरेशन, बम्बई
8. पोर्ट ट्रस्ट, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास
9. रिहैबिलिटेशन फाइनैन्स एडमिनिस्ट्रेशन
10. रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया, बम्बई
11. स्टेट बैंक आफ़ इण्डिया, बम्बई

(2) सरकारी कम्पनियाँ

1. राज्य व्यापार निगम लिमिटेड
2. राष्ट्रीय लघु उद्योग लिमिटेड
3. राष्ट्रीय उद्योग विकास लिमिटेड
4. इण्डियन एक्स्प्लोसिव लिमिटेड
5. हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स लिमिटेड
6. हिन्दुस्तान एन्टीसेक्टीसाइड्स लिमिटेड
7. हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड
8. नेशनल इंस्ट्रूमेण्ट लिमिटेड
9. नंगल फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड
10. हिन्दुस्तान साल्ट कम्पनी लिमिटेड

11. सिन्दरी फर्टिलाइज़र्स एण्ड केमिकल्स लिमिटेड
12. नाहन फाउण्ड्री लिमिटेड
13. हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड
14. हिन्दुस्तान हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन लिमिटेड
15. निर्यात जोखिम बीमा लिमिटेड
16. हस्तशिल्प निगम लिमिटेड
17. हिन्दुस्तान एयरक्राफ़्ट लिमिटेड
18. भारत एलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड
19. राष्ट्रीय गवेषणा विकास निगम लिमिटेड
20. राष्ट्रीय प्रयोजना निर्माण निगम लिमिटेड
21. रिहैबिलिटेशन हाउसिंग कारपोरेशन लिमिटेड
22. हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड
23. नेशनल कोल डेवलपमेन्ट कारपोरेशन लिमिटेड
24. नेवेली लिग्नाइट कारपोरेशन लिमिटेड
25. बोलानी ओर्स लिमिटेड
26. सिंगरेनी कोलरीज़ लिमिटेड
27. मैसूर आयरन एण्ड स्टील कारपोरेशन लिमिटेड
28. उड़ीसा खनन लिमिटेड
29. ईस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन लिमिटेड
30. वेस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन लिमिटेड
31. भारतीय टेलीफ़ोन उद्योग लिमिटेड
32. हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड
33. हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी लिमिटेड
34. अशोका होटल्स लिमिटेड
35. मेसर्स रेयर अर्थ लिमिटेड
36. ट्रावनकोर मिनरल्स लिमिटेड
37. आयल इण्डिया लिमिटेड
38. हैवी एलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड

पुस्तक सूची

(क) पुस्तकें

1. इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन—अशोक चन्दा
2. इण्डियन फाइनेन्शियल सिस्टेम—ओ० के० घोष
3. ए हैण्डबुक आफ रेलवे एकाउन्ट—एल० बी० गोपालन
4. दि ए० बी० सी० आफ इण्डियन गवर्नमेन्ट फाईनेन्स—पी० के० वाटल
5. पार्लियामेन्टरी फाइनैन्शियल कन्ट्रोल इन इण्डिया—पी० के० वाटल
6. फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन आफ इण्डिया—पी० के० वाटल
7. फाइनेन्शियल सिस्टेम आफ इण्डिया—डा० ज्ञानचन्द
8. फाइनैन्शियल पालिसी आफ इण्डियन यूनियन—एम० एच० गोपाल
9. फाइनैन्शियल हैण्डबुक आफ़ दि कान्स्टीट्यूशन—एस० डी० दुबे
10. बजेटरी सिस्टेम इन वेरियस कन्ट्रीज़—एस० एल० शकधर
11. रेलवे फाइनेन्स—आर० सी० सक्सेना

(ख) पुस्तिकाएं

1. इण्डियन रेलवेज़–ऐन हन्ड्रेड इयर्स
2. इन्ट्रोडेक्शन टू इण्डियन गवर्नमेन्ट आडिट एण्ड एकाउण्ट
3. एक्सटर्नल एसिस्टेन्स ड्यूरिंग 1950—58
4. एपिटोम आफ दि रिपोर्ट्स आफ इण्डियन पी० ए० सी०
5. फाइनेन्शियल एन्ड काग्नेट पावर्स डेलिगेटेड ट् मिनिस्ट्रीज़ एन्ड हेड्स ऑफ डिमार्टमेन्ट्स
6. फंक्शन्स एण्ड वर्किंग आफ दि रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया

(ग) निर्देश ग्रन्थ

1. भारतीय संविधान
2. प्रथम पंचवर्षीय योजना
3. द्वितीय पंचवर्षीय योजना
4. तृतीय पंचवर्षीय योजना
5. भारत सरकार के रेलवे राजस्व व खर्च का बजट
6. भारत सरकार के सामान्य राजस्व व खर्च का बजट
7. संसदीय वाद-विवाद

(घ) अधिनियम तथा नियम

1. गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया एक्ट, 1935 तथा उसके अन्तर्गत के नियम
2. पोस्ट आफिस नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट रूल्स, 1944
3. पब्लिक डेट एक्ट, 1946
4. पब्लिक डेट रूल्स, 1946
5. दामोदर वैली कारपोरेशन एक्ट, 1948
6. एयर कारपोरेशन एक्ट, 1953
7. इण्डियन कम्पनीज़ एक्ट, 1956 ...
8. डेलिगेशन आफ़ फाइनैन्शियल पावर्स रूल्स, 1958

(च) रिपोर्टें

1. ऑडिट रिपोर्ट, सिविल, पोस्ट एन्ड टेलिग्राफ, रेलवे तथा रक्षा, गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया
2. इण्डियन फाइनेन्स कमीशन रिपोर्ट 1952
3. एनुवल रिपोर्ट इण्डियन रेलवे
4. एनुवल रिपोर्ट मिनिस्ट्रीज़ आफ दि गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया
5. एनुवल रिपोर्टस् आफ़ दि ओ० एन्ड एम० डिवीज़न, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया
6. एप्रोप्रिएशन एकाउण्टस, रेलवेज़, सिविल, पोस्ट एन्ड टेलिग्राफ, रक्षा गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया
7. फाइनेन्स एकाउण्ट, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया
8. टैक्सेशन इंक्वायरी कमीशन रिपोर्ट 1954
9. कम्बाइण्ड फाइनेन्स एण्ड रेवेन्यू एकाउण्ट
10. रिपोर्ट आन करेन्सी एन्ड फाइनेन्स—रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया
11. रेलवे कन्वेंशन कमेटी रिपोर्ट 1949
12. रेलवे कन्वेंशन कमेटी रिपोर्ट 1954
13. लोक सभा के लोक लेखा समिति की रिपोर्टें
14. लोक सभा के प्राक्कलन समिति की रिपोर्टें
15. सेकन्ड फाइनेन्स कमीशन रिपोर्ट 1957
16. थर्ड फाइनेन्स कमीशन रिपोर्ट 1962

(छ) लेख

1. एक्सपेन्डिचर कन्ट्रोल रिआर्गेनाइज़ेशन (हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड, 26 जनवरी 1957)
2. कीपिंग पार्लियामेन्ट इंफार्मेड एबाउट स्टेट अंडरटेकिंग्ज़ (दि टाइम्स, लन्डन, 12 जनवरी 1956)।
3. गवर्नमेन्ट बारोइंग एण्ड पब्लिक फाइनेन्स (कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री, 6 फेब्रुअरी, 1953)
4. डेवलपमेन्ट आफ पब्लिक डेट पैटर्न (रिज़र्व बैंक आफ इन्डिया बुलेटिन, जनवरी 1955)
5. दि सेलेक्ट कमेटी आन नैशनलाइज्ड इन्डस्ट्रीज़ (पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन स्प्रिंग, 1956)
6. पार्लियामेन्टस कन्ट्रोल आफ फाइनैन्स (ईकनोमिक वीकली, जनवरी 1954)
7. स्ट्रक्चर आफ इंडियन बजट आउट मोडेड (कामर्स एनुवल नम्बर, 1955)

० ० ०

पारिभाषिक शब्द-सूची

अग्रिम राशि	Advance
अतिरिक्तानुदान	Excess grant
अतिरेक	Excess
अतिरेक प्राप्तियाँ	Excess receipts
अर्थोपाय अग्रिम	Ways and means advances
अदायगी आदेश	Pay order
अधिभार	Surcharge
अधिकारियों का वेतन	Pay of officers
अध्यक्ष	Chairman
अध्यक्ष (लोक सभा)	Speaker
अनिधिक ऋण	Unfunded debt
अनुदान	Grant
अनुदानों की माँगें	Demands for grants
अनुपाती प्रतिनिधित्व	Proportional representation
अनुभाग	Section
अनुमति की लेखा परीक्षा	Consent Audit
अनुमोदित	Voted
अनुसूचित बैंक	Scheduled Bank
अपरिवर्तनीय ब्याज रहित प्रतिभूतियाँ	Unconvertible interest free Securities
अपवादानुदान	Exceptional Grant
अप्रत्यक्ष कर	Indirect Tax
अप्रत्यादेय	Irrecoverable
अभिक्रम	Initiative
अभिदाता	Subscriber
अल्प बचत योजना	Small Savings Scheme
अवशिष्ट-निर्धारण	Assessment of balances
अस्थायी कर संग्रह अधिनियम	Provisional collection of Taxes Act
आकस्मिकता निधि	Contingency Fund
आदेश	Warrant
आधारभूत नियम	Fundamental Rules
आनुषंगिक	Contingent
आपातिक धन अधियाचन	Emergency Cash Requisition
आमदनी	Earning
आयकर विभाग	Income Tax Department
आयव्ययक टिप्पणियाँ	Budget notes

आयव्ययक प्रभाग	Budget Division
आरक्षित निधि	Reserve Fund
आर्थिक मंदी	Economic depression
आर्थिक विषयों का विभाग	Department of Economic Affairs
आर्थिक प्रभाग	Economic Division
आर्थिक सर्वेक्षण	Economic Survey
आरंभिक तथा अंतिम शेष	Opening and closing balance
इंग्लैण्ड में व्यय	Charges in England
उचंत	Suspense
उच्चतर लेखा परीक्षा	Higher audit
उत्पादन शुल्क विभाग	Excise Department
उत्पादनकारी	Productive
उत्सर्जन	Surrender
उद्यम	Enterprise
उपबंध	Provision, Schedule
उपभोक्ता समिति	Consumers' Council
उपस्थिति नामावली	Muster Roll
उपाय और साधन आयव्ययक	Ways and Means Budget
ऋण निक्षेप	Debt, Deposit
ऋण निक्षेप राशियों तथा विप्रेषणों की लेखा परीक्षा	Audit of Debt Deposits and Remittances
ऋण पत्र	Debenture, Securities
ऋण परिवर्तन	Conversion of debt
ऋण प्रतिदान	Redemption of debt
ऋण सम्बन्धी भुगतान	Debt Services
ऋण ह्रास अथवा परिहार	Reduction or avoidance of debt
एकक	Units
एक प्रविष्टि	Single Entry
एकमुश्त	Lump sum
एकल संक्रमणीय मत	Single Transferable Vote
औद्योगिक वित्त विभाग	Industrial Financial Corporation
औसत उधारी दर	Average borrowing rate
अंतरण	Devolution
अंतर राज्य उचंती खाता	Inter-State Suspense Account
अंतर राज्यीय निपटारा	Inter state settlement
अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि	International Monetary Fund
अंतर सेवा संगठन	Inter Services Organization
अपरक्राम्य ब्याज रहित आस्तियाँ	Unconvertible Interest free Securities
अंश	re

अंशों का हस्तांतरण	Transfer of shares
आंतरिक योजना प्रभाग	Internal Planning Division
आंतरिक वित्त व्यवस्था प्रभाग	Internal Finance Division
आंशिक लेखा परीक्षा	Test audit
इंग्लैण्ड और भारत के बीच नक़दी का अंतरण	Transfer of cash between England and India
कटौती	Cuts
कटौती सूचक प्रस्ताव	Cut Motions
कर जाँच समिति	Taxation Enquiry Committee
कार्य अध्ययन	Work studies
कार्यक्रम मूल्यांकन संस्था	Programme Evaluation Organisation
कार्यकारिणी, कार्यपालिका	Executive
कार्यफल आयव्ययक	Performance Budget
कार्य मंत्रणा समिति	Business Advisory Committee
कार्य-विवरण, कार्य-वृत्त	Minutes
कृषि ऋण विभाग	Agricultural Credit Department
केन्द्रीय ऋण अनुभाग	Central Loan Section
केन्द्रीय तथा राज्यों की प्राप्तियों तथा राशि वितरण के मुख्य तथा गौण लेखा शीर्षकों की सूची	List of Major and Minor Heads of Accounts of Central and States Receipts and Disbursements
केन्द्रीय राजस्व	Central Revenue
केन्द्रीय राजस्व बोर्ड	Central Board of Revenue
केन्द्रीय सड़क निधि	Central Road Fund
खज़ाना	Treasury
खज़ाना अधिकारी	Treasury Officer
खजाना नियमावली	Treasury Rules
खरीददार (ऋण के)	Subscriber
खाता	Ledger
गवेषणा तथा सांख्यिकी विभाग	Research and Statistics Department
गारंटी	Guarantee
गुप्त सेवा व्यय	Secret Service Expenditure
गर बैंकिंग खज़ाना	Non-Banking Treasury
गैर भुगतानी दायित्व	Unpaid Liabilities
गौण लेखा	Subsidiary Account
घटते बढ़ते व्यय	Fluctuating charges
घाट का बजट	Deficit Budget
घाट की वित्त व्यवस्था	Deficit Financing
चल ऋण	Floating Debt

चल स्टाक	Rolling Stock
चिट्ठा	Muster Roll
छँटनी	Retrenchment
जमा	Deposits
जारी मूल्य	Issue Value
टकसाल	Mint
टिप्पणियाँ	Notes
ठेकेदारों का खाता	Contractors' ledger
डाक और तार विकास निधि	Post and Telegraph Development Fund
तकनीकी कार्मिक	Technical Personnel
तकनीकी सहायता	Technical Assistance
तदर्थ कटौती	Ad hoc cuts
दामोदर घाटी निगम	Damodar Valley Corporation
दायित्व पंजी	Liability register
देशी राज्यों का वित्तीय एकीकरण	Financial Integration of Indian States
दैनिकी	Journal
धन परिचालन	Resource operation
नक़दी तिजोरी	Currency chest
नाप जोख पुस्तिका	Measurement Book
निदेशक	Director
निदेशक, निपटान	Director of Disposals
निधि का नियतन और क्षति पूर्ति	Assignments and Compensation
निधि पत्र	Stock certificate
नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक	Comptroller and Auditor-General
निर्माण कार्यों के ब्योरे का रजिस्टर	Register of works
निर्माण, मशीन और चल-स्टाक का कार्यक्रम	Programme of Works, Machinery and Rolling Stock
निर्माण व्यापार तथा लाभ हानि लेखा	Manufacturing, Trading and Profit and Loss Account
निर्माण सारपत्र	Works Abstract
निरावधि ऋण	Interminable loan
निरीक्षण निदेशालय	Directorate of Inspect i
निवल	Net
निविदा	Tender
निवेश	Investment
निक्षेप	Deposits
निक्षेप लेखा विभाग	Deposit Account Department
पथ कर	Toll Tax

परिचालक-कर्मचारी	Operational Staff
परिचालन अनुपात	Operation Ratio
परिचालन क़रार	Operation agreement
परिवर्तन शुल्क	Conversion fees
परंतुकों	Provisos
पारित	Voted
पुनर्नवन आरक्षण निधि; पुनर्नवन आरक्षित निधि	Renewals Reserve Fund
पुनर्विनियोग	Reappropriation
पूरक अनुदान	Supplementary Grants
प्रचलन	Issue
प्रचालन विभाग	Issue Department
प्रतिपत्र	Proxy
प्रतिभूति	Guarantee
प्रतिभूति विभाग	Securities Department
प्रतीकानुदान	Token Grant
प्रत्यक्ष कर	Direct Tax
प्रत्ययानुदान	Vote of Credit
प्रधान वाणिज्यिक अधीक्षक	Chief Commercial Superintendent
प्रपत्र	Proforma
प्रभाग	Division
प्रभार	Charge
प्रभारित	Charged
प्रमाण पत्रधारी	Certificate holder
प्रवर समिति	Select Committee
प्रशासनिक विभाग	Administrative Department
प्रसाधन आयव्ययक	Rources Budge
प्राक्कलन अधिकारी	Estimating Officer
प्राक्कलन समिति	Estimates Committee
प्राथमिक इकाई	Primary Unit
प्राप्ति	Receipt
प्रारंभिक लेखा	Initial Account
पृष्ठांकन	Endorsement
प्रेषण सुविधाएँ	Remittance Facilities
पंचाट	Award
पूँजी खाते में प्राप्ति	Receipt on Capital Accounts
पूँजी तथा राजस्व का वर्तमान खाता	Account, Current Capital and Revenue
पूँजी तथा राजस्व लेखा	Capital and Revenue Account
पूँजी निवेश	Capital Investment
पूँजी बजट	Capital Budget

पूँजी लेखा	Capital Account
पूँजी व्यय	Capital Expenditure
पौंड पावना	Sterling Debt
फुटकर	Sundry
बचत	Saving
बजट प्रभाग	Budget Division
बट्टे खाते डालना	Write off
बहुप्रयोजन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण	Multipurpose National Sample Survey
बाज़ारू ऋण	Market Loan
बाह्य वित्त व्यवस्था प्रभाग	External Finance Division
बीमा कराने वाला	Underwriter
बीमा प्रभाग	Insurance Division
बैंक अदायगी आदेश	Bank Pay order
बैंक जमा चालान	Bank credit chalan
बैंकिंग खजाना	Banking Treasury
बैंकिंग विकास विभाग	Banking Development Department
बैंकिंग विभाग	Banking Department
ब्याजी देनदारी	Interest bearing obligation
ब्याजोत्पादक संपत्ति	Interest yielding assets
ब्योरा पुस्तक	Detail Book
भारत सरकार अधिनियम	Government of India Act
भारत सरकार की टकसाल	Government of India Mint
भारतीय विधान आयोग	Indian Statutory Commission
भारतीय स्वतंत्रता (अधिकार, संपत्ति तथा दायित्व) आज्ञा	Indian Independence (Rights, Property and Liabilities) Order
भारित	Charged
भुगतान-शेष	Balance of Payment
भुगतान स्थगन	Moratorium
भुगतानों की सूची	List of Payments
भौतिक साधन	Physical Resources
भंडार	Store
भंडारों तथा स्टाकों की लेखा परीक्षा	Audit of stores and stocks
मतापेक्ष	Votable
मतापेक्ष धन से की जाने वाली सेवाएँ	Supply Services
मध्यवर्ती सूचना	Intermediate tap
महानिदेशक, पूर्ति तथा निपटान	Director General, Supplies and Disposals (D.G.S.& D.)
महालेखा परीक्षक	Auditor General
महालेखा परीक्षक नियमावली	Auditor General Rules

महालेखापाल	Accountant General
माल गुजारी	Land Revenue
माल यातायात से आमदनी	Goods earnings
मुद्रा	Currency
मुद्रा दृढ़ता	Monetary Stability
मुद्रा व वित्त रिपोर्ट	Currency and Finance Report
मुद्रा स्फीति	Inflation
मुद्रांक शुल्क	Stamp Duty
मूल्य ह्रास	Depreciation
मंत्रिमंडल वित्त समिति	Cabinet Finance Committee
माँग-पुस्तक	Book of demands, Demand Book
युद्धोत्तर विकास निधि	Post-war Development Fund
योजना आयोग	Planning Commission
योजना आयोग के विशेषज्ञों का समूह	Panel of Planning Commission
योजना प्रभाग	Planning Division
योजना-प्रायोजना की समिति	Committee on Plan-Projects
योजना व्यय	Plan Expenditure
रक्षा व्यय विभाग	Defence Expenditure Department
रसीद	Voucher
राजकीय उपक्रम	State Undertakings
राजस्व अवशेष	Revenue Balances
राजस्व आसूचना	Revenue Intelligence
राजस्व की लेखा परीक्षा	Revenue Audit
राजस्व की वापसी	Refund of Revenue
राजस्व विभाग	Department of Revenue
राज्य ऋण कार्यालय	Public Debt office
राज्य ऋण नियम	Public Debt Rule
राज्य ऋण विभाग	Public Debt Department
राष्ट्रीय विकास परिषद्	National Development Council
राशि वितरण	Disbursements
राशि वितरण लेखों का विवरण	Statement of disbursements accounts
राष्ट्रीय वित्त लेखा	National Account
रिज़र्व बैंक के निक्षेप	Deposits of the Reserve Bank
रुक्का	Promissory Note
रेल मूल्य ह्रास और आरक्षित निधि	Railway Depreciation and Reserve Fund
रेल स्थाई वित्त समिति	Railway Standing Finance Committee

रेलवे अभिसमय समिति	Railway Convention Committee
रेल ऋण पत्र	Railway Debenture Stock
रोकड़ खाता	Cash Account
रोकड़ जमा	Cash Balance
रोकड़ बही	Cash Book
लगाई गई पूँजी	Capital at charge
लदान पत्र	Bill of lading
लाभ कर	Profit Tax
लाभ हानि लेखा	Profit and Loss Account
लाभांश	Dividend
लेखा अनुदान	Vote on account
लेखा परीक्षा अधिकारी	Audit Officer
लेखा परीक्षा और लेखा विभाग	Audit and Accounts Department
लेखा परीक्षा प्रतिवेदन	Audit Report
लेखा परीक्षा संहिता	Audit Code
लेखापाल	Accountant
लेखाशीर्षक	Head of Account
लेखा-संहिता	Account Code
लोकनिधि	Public Fund
लोक लेखा समिति	Public Accounts Committee
वर्गीकृत सारपत्र	Classified Abstracts
वर्तमान प्राप्ति की दर	Rate of present yield
वसूलियाँ	Recoveries
वाणिज्यिक व्यवसायों के गौण लेखों की परीक्षा	Audit of subsidiary accounts of commercial enterprises
वादा बाज़ार	Future market
वापसी	Surrender
वार्षिक वित्त विवरण	Annual Financial Statement
वार्षिकी	Annuity
वास्तविक जाँच	Physical Verification
वास्तविक व्यय	Actual Expenditure
वाहक बांड	Bearer Bond
वितरक	Disburser
वितरण अधिकारी	Disbursing Officer
वित्त लेखा	Finance Account
वित्त विधेयक	Finance Bill
वित्तीय अधिकारों का प्रत्यायोजन	Delegation of financial powers
वित्तीय अधिकारों की पुस्तिका	Book of Financial Powers
विदेशी निवेश	Foreign Investment
विदेशी मुद्रा	Foreign Exchange

विदेशी मुद्रा नियंत्रण विभाग	Exchange Control Department
विधिवतता	Regularity
विधेयक	Bill
विनिमय-लेखा	Exchange Account
विनियोग अधिनियम	Appropriation Act
विनियोग के प्राथमिक एकक	Primary units of Appropriation
विनियोग लेखा	Appropriation Account
विनियोग लेखा परीक्षा	Appropriation Audit
विनियोग विधेयक	Appropriation Bill
विनियोग तथा पुर्नविनियोग सम्बन्धी आदेश	Appropriation and Reappropriation Orders
विप्रेषण पत्र	Remittance Draft
विभागीय शुल्क	Departmental charges
विभागीय वर्गीकृत सारपत्र	Departmental Classified Abstract
विभागीय वित्त समिति	Departmental Finance Committee
विलेख	Deed
विवाद-बन्ध	Guillotine
विशेष पुनर्गठन एकक	Special Reorganisation Unit
विशेषाधिकार का प्रश्न	Privilege Issue
वेतन तथा लेखा अधिकारी	Pay and Accounts Officer
वेतन मान	Scale of pay
व्यक्ति कर	Capitation tax
व्यय अनुमति	Expenditure sanction
व्यय लेखा परीक्षा	Expenditure audit
व्यय वित्त समिति	Expenditure Finance Committee
व्यय विभाग	Department of Expenditure
व्यवहार	Transaction
व्याख्यात्मक ज्ञापन	Explanatory Memorandum
श्वेत पत्र	White paper
शुद्ध	Net
शेयर	Share
शेष (रकम) का पुनरीक्षण	Review of Balance
शोधन गृह	Clearing house
शोधन निधि	Sinking Fund
सकल	Gross
सट्टा बाज़ार	Stock Exchange
सभापति	Chairman
समायोजन	Settlement
समायोजन लेखा	Settlement Account

समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम	Sea Customs Act
समेकित निधि	Consolidated Fund
समेकीकरण	Consolidation
समंजन	Adjustment
सरकारी ऋण प्रबन्ध	Management of public debt
सरकारी प्रतिभूतियाँ	Governmental Securities
सरकारी हुंडी	Treasury Bill
सहायक महालेखापाल	Assistant Accountant General
सहायक लेखा	Ancilliary Account
सहायता अनुदान	Grant-in-aid
सहायता अनुदानों की लेखा परीक्षा	Audit of Grants-in-aid
साख पत्र	Letter of credit
साधन	Resources
साधारण संचालन व्यय	Ordinary working expenses
सामरिक महत्व की लाइनें	Strategic Lines
सामान्य भविष्य निधि	General Provident Fund
सामान्य राजस्व के लाभांश	Dividend to General Revenues
सामान्य वित्त नियमावली	General Financial Rules
सामान्य वित्तीय विवरण	General Financial Statement
सार्वजनिक निर्माण विभाग	Public Works Department
सिब्बंदी का वेतन	Pay of Establishment
सिब्बन्दी प्रभाग	Establishment Division
सिविल और रक्षा सेवाएँ	Civil and Defence Services
सिविल प्रशासन	Civil Administration
सिविल व्यय विभाग	Civil Expenditure Department
सीमा शुल्क	Customs
सीमा शुल्क विभाग	Customs Department
सीमोपरि अनुदान	Excess grant
सीमोपरि व्यय	Excess Expenditure
सैन्य नक़दी तिजोरी	Military Treasury Chest
सैन्य लेखा समिति	Military Accounts Committee
सैन्य लेखों के नियंत्रक	Controller of Defence Account (C.D.A.)
स्टाक लेखा	Stock Account
स्थानीय कर	Local Tax
स्थानीय लोक लेखा परीक्षा	Local Audit
स्थापना	Establishment
स्थायी व घटते-बढ़ते व्यय	Standing and Fluctuating Charges
स्थायी वित्त-समिति	Standing Finance Committee
स्वायत्त संस्थाएँ	Autonomous Bodies
स्वीकृत	Voted

संवर्ग	Cadre
संकल्प	Resolution
संघीय राज्यक्षेत्र	Union territory
संघीय संरचना समिति	Federal Structure Committee
संतुलन-पत्र	Balance-Sheet
संधारण	Maintenance
संपत्ति तथा देयताओं का अवशेष	Balances of assets and liabilities
सम्पत्तियाँ	Assets
सम्पत्ति शुल्क	Estate Duty
संयुक्त वित्त तथा राजस्व लेखा	Combined Finance and Revenue Accounts
संवहित	Carried over
संविधान (कर वितरण) आदेश	Constitution (Distribution of Taxes) Order
संशोधित प्राक्कलन	Revised estimates
हस्तांतरण पुस्तिका	Transfer Entry Book
हस्तांतरण विलेख	Transfer deed
हुंडी	Bill of exchange

o o o

अनुक्रमणिका